श्रीश्रीसनकसम्प्रदायाचार्यपरम्परा ।

१ श्रीहंसावतारनारायण
२ श्रीसनन्दादिब्रह्मपुत्र
३ देवर्षिश्रीनारदजी
४ श्रीभगवन्निम्बार्कमुनीन्द्र
५ भाष्यकार श्रीश्रीनिवासाचार्य
६ श्रीविश्वाचार्य
७ विवरणकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्य
८ श्रीश्रीविलासाचार्य
९ श्रीश्रीस्वरूपाचार्य
१० श्रीमाधवाचार्य
११ श्रीबलभद्राचार्य
१२ श्रीपद्माचार्य
१३ श्रीश्यामलाचार्य
१४ श्रीगोपालाचार्य
१५ श्रीकृपाचार्य
१६ जाह्नवीकार श्रीदेवाचार्य
१७ सेतुकार श्रीसुन्दरभट्टाचार्य
१८ श्रीपद्मनाभभट्टाचार्य
१९ श्रीउपेन्द्रभट्टाचार्य
२० श्रीरामचंद्रभट्टाचार्य
२१ श्रीवामनभट्टाचार्य
२२ श्रीकृष्णभट्टाचार्य
२३ श्रीपद्माकरभट्टाचार्य
२४ श्रीश्रवणभट्टाचार्य
२५ श्रीभूरिभट्टाचार्य
२६ श्रीमाधवभट्टाचार्य
२७ श्रीश्यामभट्टाचार्य
२८ श्रीगोपालभट्टाचार्य
२९ श्रीबलभद्रभट्टाचार्य
३० श्रीगोपीनाथभट्टाचार्य
३१ श्रीकेशवभट्टाचार्य
३२ श्रीगांगलभट्टाचार्य
३३ जगद्विजयी श्रीकेशवभट्टाचार्य
३४ श्रीश्रीभट्टदेवाचार्य
३५ श्रीहरिव्यासदेवाचार्य
३६ श्रीगोपालदेवाचार्य
३७ श्रीदेवदेवाचार्य
३८ श्रीभगवद्देवाचार्य
३९ श्रीपरमानन्ददेवाचार्य
४० श्रीसुन्दरदेवाचार्य
४१ श्रीसुदामदेवाचार्य
४२ श्रीरामकृष्णदेवाचार्य
४३ श्रीहरिदेवाचार्य
४४ श्रीश्यामदेवाचार्य
४५ श्रीगोवर्द्धनशरणदेवाचार्य
४६ श्रीरेवतीरमणशरणदेवाचार्य
४७ श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य
४८ श्रीबलदेवशरणदेवाचार्य
४९ तपोनिधि-ब्रह्मचारीश्री**गिरिधारिशरणदेवाचार्य**
५० श्रीगोपालशरणदेवाचार्यजी-तथा वर्तमान श्री**बिहारीशरणदेवाचार्य**

समर्पण

श्रीराधागोपालचरणारविन्दमकरन्दभृङ्ग-श्रीसनत्कुमारसन्ततिप्रवर्तक-श्रुति-
स्मृतिधर्मपथप्रवर्तक-भेदाभेदत्रय्यंत प्रतिष्ठापनदेशिक-श्रीभगवन्निम्बा-
र्कमुनीन्द्रवीथीपथिक-ग्वालियर-जयपुरादि-राजगुरु-परम-
पूज्यतपोनिधि श्री १०८ ब्रह्मचारिश्रीगिरिधारिशरणदे-
वाचार्य्यजी महाराज !

भगवान् श्रीवासुदेवके स्वरूपगुणादिप्रतिपादक-श्रीनिम्बार्क
सिद्धान्तकों सरलतासों प्रकाशक-मुमुक्षुजनजीवातु-नन्दनन्दन-
श्रीगोपाललालपरतत्त्वोद्बोधक-

यह

"श्रुतिसिद्धान्तरत्नाकर"

आपका निर्मल यशोविस्तारक स्मारक समझकर मुद्रित तथा
प्रकाशितकराकर आपकी सेवामें समर्पण करता हूं,
कृपयाअङ्गीकार कीजिये।

आपका विनीत चरणसेवक—
ब्रह्मचारी श्रीबिहारीशरणदेव

वृन्दावन.



श्रीश्रीराधागोपालचरणाब्जभृङ्ग, श्रीभगवन्निम्बार्कमुनिमताब्जभा-
स्कर, पूज्यपाद, महामहिमशाली, तपोनिधि, ग्वालियर-जयपुरादि-
राजगुरु, श्री १०८ श्रीब्रह्मचारिश्रीगिरिधारिशरणदेवाचार्यजी।

श्रीहरिः शरणम् ।

श्रीमते भगवन्निम्बार्काय नमः

भूमिका ।

सर्वसज्जनोंको विदित हो कि, निखिलभुवनपरिपालनबद्धकक्ष, जगदुदयविभवलयलीलापटु, परस्मात्परतर, वासुदेव, श्रीपुरुषोत्तमने "एवं संसृतिचक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः ॥ जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा काऽप्युपजायते ॥" इति शास्त्रोक्त स्वीयासाधारण निर्हेतुक कृपाकटाक्षसे संसारी चेतनोंको दुःखमय अपार संसार समुद्रसे समुद्धार करनेको तथा निरतिशयसुख (मोक्ष) देनेकी इच्छासे सोपबृंहणवेदद्वारा स्वचरणशरणप्राप्तिके पथको दिखाया । तहां कर्म तथा ब्रह्मरूप प्रतिपाद्यार्थभेदसे वेदके भी दो भाग हैं । तिसमें लोकतन्त्रप्रवाहार्थ सोपबृंहणवेदपूर्वभागने प्रवृत्तिमार्गकी शिक्षा दी है । "प्रायेण पूर्वभागार्थपूरणं धर्मशास्त्रतः" इस वचनानुसार वेदके पूर्वभागका उपबृंहण आचार तथा व्यवहार प्रतिपादक धर्मशास्त्र है। "श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः" इस मनुवचनसे वह धर्मशास्त्र मन्वादिस्मृति हैं, अन्य नहीं । एवं स्मृतिकदम्बसहित सोकर्षजैमिनीयषोडशलक्षणोपेत वेदपूर्वभाग श्रीभगवदाराधनरूप कर्मका प्रतिपादन करता है । तथा उत्तरभागभी सोपबृंहण पूर्वभागो-

दित कर्माराध्य परं ब्रह्मका प्रतिपादन करता है।"इतिहासपुराणाभ्यां वेदान्तार्थः प्रकाश्यते" इस वचनानुसार उत्तरभागका उपबृंहण इतिहासपुराणादि हैं। एवं इतिहासपुराणसहित उपनिषत्कदम्बरूप वेदोत्तरभाग स्वरूप, गुण, शक्ति, लीला, ऐश्वर्यसहित परब्रह्म वासुदेव श्रीपुरुषोत्तमको तथा उसकी प्राप्तिके साधनोंको प्रतिपादन करता है। किन्तु उस उत्तर भागमें भी "प्राणाकाशादिकोंसे" जगत्की उत्पत्ति सुनते हैं, और "कारणन्तु ध्येयः" इस श्रुतिने कारणको ही ध्येय कहा है। अतः ध्येयवस्तुमें बुधजनभी मोहित होते हैं, तब अन्य अज्ञोंका तो कहनाही क्या है ? यद्यपि वेदोपबृंहणरूप इतिहासपुराणोंके पर्यालोचनसेभी तद्विषयकसंशयका अपाकरण होसकता है, किन्तु उस अतिविस्तृत इतिहासपुराणरूप समुद्रतलको स्पर्शकरना महामहिमशाली बुद्धिमान् ऋषिकल्पोंकी ही सामर्थ्य है, अन्यकी नहीं। अतः वेदोत्तरभागनिर्णयकाम, भगवदवतार, परमकारुणिक, श्रीभगवान् कृष्णद्वैपायनने केवल उत्तरभागके निर्णयकी इच्छासे "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्रसे आरम्भकर "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्" यहां पर्य्यन्त शारीरकमीमांसा चतुरध्यायी निर्माण की। इस चतुरध्यायीके ऊपरभी श्रीसनकादिकोंके संशयको अपनोदार्थ गृहीतहंसवपु श्रीपुरुषोत्तमप्रवर्त्तित श्रीसनकसम्प्रदायके कूटस्थ, श्रीहरिकरकमलकलित सुदर्शनावतार, श्रीनियमानन्द, श्रीसुदर्शन, श्रीहरिप्रियाचार्य, इत्यादि नामोंसे प्रथित, परमकारुण्यगुणपूर्ण श्रीभगवन्निम्बार्कमुनीन्द्रने मुमुक्षुजनोंके उपकारार्थ तथा स्वशिष्यपरम्पराके अनुग्रहार्थ एवं उत्तरभागसिद्धान्तार्थकी स्थिरास्थितिके लिये सल-

लितपदवितितियुक्त, अतिगम्भीराशय "वेदान्तपारिजातसौरभ" नामक सूत्रवाक्यार्थको सर्वप्रथम निर्माण किया । यद्यपि वर्त्तमान समयमें इस शास्त्रपर स्वस्वमतानुसार अनेकाचार्यकृत अनेक सविस्तर व्याख्यान दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु उन आचार्योंको सर्वज्ञ न होनेसे उनके व्याख्यान शास्त्रविरुद्धांशसे युक्त हैं, अतः वे व्याख्यान सर्व-मुमुक्षुओंको उपादेय नहीं होसकते हैं। किन्तु "उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे। निम्बार्को भगवान्येषां वांछितार्थप्रदायकः॥" इस भविष्यके वचनमें स्वयं सूत्रकार श्रीवेदव्यासजीने सर्वज्ञताव्यंजक "भगवान्" शब्दसे, तथा "कपालवेधमित्याहुराचार्या ये हरि-प्रियाः" इस ब्रह्मवैवर्त्तके वचनमें श्रीशौनकऋषिनेभी "हरिप्रियाः, आचार्याः" ये परमादरणीय, पूज्य, तथा बहुवचनविशिष्टपदसे श्रीनिम्बार्काचार्यका नाम ग्रहण किया है. इससे यह सिद्ध है कि, श्रीनिम्बार्काचार्यही सर्वज्ञ, तथा सर्वप्राचीनाचार्य एवं श्रीसूत्रकार वेदव्यासादिकोंके मान्य हैं।अतः उनका व्याख्यानही सूत्रकारादिसम्मत तथा शास्त्राविरुद्धहोनेसे सर्वमुमुक्षुओंको उपादेय है। उन सर्वपूज्य, परमकारुणिक श्रीनिम्बार्काचार्यने श्रीबादरायणप्रणीतसूत्रोंका याथात्म्यप्रतिपादक, सर्वश्रेष्ठ उस सूत्रवाक्यार्थका अधिकारी सर्व-साधारणको न समझकर शास्त्रविचारासमर्थ मुमुक्षुओंके लिये संक्षेपसे सर्ववेदान्तशास्त्रार्थको संग्रहकर "दशश्लोकी" कोभी निर्माण किया। यद्यपि इस दशश्लोकीपरभी शास्त्राशयगर्भित "वेदान्तरत्न-मंजूषादि" अनेक बृहद्व्याख्यान विद्यमान हैं, तथापि वे सब व्याख्यान क्लिष्ट संस्कृतमें हैं। और वर्त्तमानसमयमें इस "अनादि

"वैदिकसत्सम्प्रदाय" में कालप्रभावसे संस्कृतज्ञ विद्वान् बहुत कम रह गये हैं, अतः वे व्याख्यानभी सर्वसाधारणकी समझमें नहीं आसकते हैं । और सम्प्रदायसिद्धान्तका यथार्थ ज्ञान न होनेसे इस सम्प्रदायके लोगभी अन्यमतके तर्कवितर्कोंमें निमग्न हो संशयावर्त्तमें पड़ जाते हैं, इससे बहुजनसंख्यक तथा अनेक राजा महाराजा एवं श्रीमानोंको इस सम्प्रदायके अनुयायी होनेपरभी प्रतिदिन इस सम्प्रदायकी अवनतिही दृष्टिगोचर होती है, इसका मूल कारण विद्याकी न्यूनता तथा सम्प्रदायीग्रन्थोंका देशभाषामें न होना ही है इस अभावको दूर करनेको मैंने "वेदान्तरत्नमंजूषा" की भाषा करना आरम्भ किया था, किन्तु "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" के अनुसार शरीर-को रोगाक्रान्त एवं निस्सहाय तथा अनेक आवश्यकीय कार्यमें व्यतिव्यस्त रहनेसे इस महद्ग्रन्थकी भाषा पूर्ण नहीं हो सकी थी, और प्रतिसमय इस कार्यकी पूर्त्तिकी चिन्ता बनी रहती थी कि, जग-दीश्वर वह दिन कब दिखावेगा कि, जिसदिन यह ग्रन्थरत्न देशभाषामें पूर्ण हो, समस्तजनोंका हस्तभूषण हो, अपनी कांतिसे पाठकोंको आह्लादित करेगा ॥

इसी बीचमें किसी आवश्यक कार्यके लिये मेरेको वर्द्धमान जाना पड़ा, और वहांपर परमपूज्य, श्री ६ मधुसूदनशरणदेवगोस्वामी-जीसे इस विषयमें वार्त्तालाप हो रहा था, कि उन्होंने मेरे उत्साहसे प्रसन्न हो यह "श्रुतिसिद्धान्त" नामक व्रजभाषाका ग्रन्थ मेरेको दिया । मैंने श्रीवृन्दावन आकर उसका अवलोकन किया तो परम

हर्ष हुआ, और करुणावरुणालय, जगन्नियन्ता, सर्वकी चेष्टाके ज्ञाता, स्वजनाभीष्टप्रद, श्रीकृष्णकी अपारकरुणाका स्मरणकर अनेक धन्यवाद दिया, कि हे जगदीश्वर ! आपके विना कौन ऐसा है कि, वर्षोंसे संकल्पकर जिस कार्यको मैंने आरंभ किया था, किन्तु आजतक पूर्ण न होनेसे मैं हताश होगया था, उस महत्कार्यको आज आपने अपनी असीमकृपालुतासे अनायास पूर्ण किया । दिनरात अन्वेषण करनेपर भी मैंने जिस पुस्तकका नाम: तक कहीं नहीं सुनाथा, ऐसी पुस्तकका अचानक प्राप्त होना सोभी मेरी इच्छानुसार भाषामें मिलना यह आपकी पूर्ण कृपाका फल है, इसमें संदेह नहीं । हे श्रीकृष्ण ! आज उस बातका स्मरण होता है कि, जैसे हंसही क्षीरनीरविवेचनमें कुशल होता है इस प्रसिद्ध्यनुसार श्रीसनकादिकोंके प्रश्नसे हुए श्रीचतुर्मुखके मोहको दूरकर अनादिवैदिकसत्सम्प्रदायके प्रवर्त्तनार्थ श्रीहंसावतारधारणकर आपने श्रीसनकादिकोंको उपदेश किया । और श्रीहंसवपुसे स्वप्रवर्त्तित इस श्रीसनकसम्प्रदायमें तत्त्वातत्त्वविवेचनकी परमकुशलता दिखाई । क्या आश्चर्य है कि, आज आपने वही स्वसंस्थापितधर्मकी अवनति देख स्वकारुण्यादिगुणगणविवशतासे उसी तत्त्वाशयकी प्रतिपादक पुस्तक प्रदान की हो ? जो कुछ हो, हे अनन्त ! सर्वगत ! आपकी तर्कागोचर विचित्र महिमा आपही जानें ! यह अधम संसारी जीव क्या जान सकता है, अर्थात् कुछ नहीं । इस पुस्तककी भाषा व्रजभाषा है और यह संवत् १८६५ के ज्येष्ठवदी ४ की लिखी हुई है। ग्रन्थकर्त्ताने कहीं भी अपना नाम इसमें

लिखा नहीं है, इससे यह निश्चय करना अतिदुस्तर है कि, यह पुस्तक किस समय किस विद्वान्ने विरचित किया, किन्तु इस पुस्तकसे यह सिद्ध होता है कि, ग्रन्थकार आजकलके पंडितोंकी तरह केवल कीर्त्तिलोलुप नहीं थे, किन्तु वेदान्तशास्त्रके अद्वितीयविद्वान् और परमकारुणिक अर्थात् लोकोपकारी थे। सहस्रों धन्यवाद है उस ग्रन्थकार महाशयको कि, जिसने असीम परिश्रमसे इस परमोत्तम ग्रन्थको बनाकर कहींभी अपना नाम तक नहीं रखा. तथापि इस ग्रन्थरत्नकी लेखन शैलीसे यह स्पष्ट विदित होता है कि, इस ग्रन्थके कर्त्ता विपश्चिद्वर श्रीमदनन्तरामजी हों तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि उनकी लेखप्रणालीभी वैसी है। यह श्रीमदनन्तरामजीका जन्म 'जगाधरी' नामक गाममें भारद्वाजगोत्रोत्पन्न गौडद्विज श्रीनारायणप्रसादके यहां सत्तरहवीं शताब्दीमें हुआथा। इन्होंने "द्वैताद्वैत" सिद्धान्तके अनेक ग्रन्थ गद्य तथा पद्यमें बनाये, और उस देशमें श्रीनिम्बार्क-(द्वैताद्वैत) का प्रचार भी किया।

विशेषतः यह ग्रन्थ श्री ६ निम्बार्कसम्प्रदायी मुमुक्षुओंका तो प्राणधनही होगा, किन्तु अन्य वेदान्तशास्त्रजिज्ञासुओंको भी परमोपकारी होगा। क्योंकि आजतक भाषामें कोईभी ऐसा वेदान्त ग्रन्थ नहीं छपा है कि, जिसमें वेदान्तशास्त्रके सर्वविषय सरलतासे हों।

इस ग्रन्थकी भाषा प्रायः सर्वत्र गड़बड़ थी और कहीं २ अनुचितभी मालूम होती थी। अतः जहांतक बनपडा वहांतक मैंने यथा-

मति सुधारकर और इस ग्रन्थको श्रुत्यादिटिप्पणीरूप रत्नसे भूषितकर गुणानुसार नाम भी "श्रुतिसिद्धान्तरत्नाकर" रख दिया है। तथापि अनेक कार्योंमें व्यस्त होनेसे तथा बम्बईके जल वायुकी प्रतिकूलताके कारण स्वास्थ्यके ठीक न रहनेसे इस पुस्तकको अपनी इच्छानुसार नहीं सुधार सका हूं। यदि हमारे प्रिय पाठक तथा सम्प्रदायी बन्धुवर्गोंको इससे कुछभी लाभ होगा तो अवश्य ही द्वितीय संस्करणमें इस न्यूनताको भी दूर करदूंगा। अब मैं समस्त गुणग्राही सज्जन विद्वानोंसे विनीतभावसे प्रार्थना करता हूं कि, मेरी मानुषीबुद्धिके दोषसे अथवा सीसकाक्षरयोजकोंके दोषसे इस ग्रन्थमें जो कुछ अशुद्धियां रही हों वे क्षमाकर पत्रद्वारा सूचित करेंगे तो मैं उनका आजन्म उपकार मानूंगा और द्वितीयसंस्करणमें सुधारदूंगा। इस परमोत्तम ग्रन्थको हिन्दीभाषाके साहित्यमें अपने ढंगका यह प्रथम तथा अपूर्व ग्रन्थ समझ मैंने ग्वालियर-जयपुरराजगुरु, श्रीकृष्णचरणारविन्दमकरंदभृंग, परमपूज्य-महामहितमहिम श्री १०८ श्रीब्रह्मचारिश्रीगिरिधारिशरणदेवाचार्यपादपीठाधिकृत, ब्रह्मचारि-श्रीबिहारिशरणदेवाचार्यसे इसके मुद्रितकरानेकी प्रार्थना की, और उन्होंने सहर्ष इस कार्यको स्वीकारकर सेठ श्रीखेमराजजीके वहां मुद्रितकराकर सर्वसाधारणके उपकारार्थ प्रकाशित किया। इससे उनके यह स्तुत्य कर्त्तव्यको सहस्रों धन्यवाद हैं। उक्त "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसके मालिक सेठ श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीकोभी अनेक धन्यवाद देता हूं कि, जिन्होंने अपने कार्यकी अधिकता

होनेपरभी इस पुस्तकको बहुत शीघ्र मुद्रित करदिया। एवं सेठ श्रीनिवासदास नन्दरामजीने भी हर तरहसे बम्बईमें रहनेतक मेरा सर्वप्रकार साहाय्य किया, अतः उनकोभी हृदयसे धन्यवाद प्रदान करता हूं।

ता० २२।४।११
खेतवाडी "श्रीवेङ्कटेश्वर"
स्टीम् प्रेस बम्बई.

विनीत-निवेदक—
श्रीवृन्दावननिवासी,
श्रीनिम्बार्काचार्य चरणकंजमधुप,
पं० किशोरदास.



श्रीकृष्णाय नमः।

श्रीमते भगवन्निम्बार्कमुनीन्द्राय नमः।

अथ श्रुतिसिद्धान्तरत्नाकरप्रारंभः।

कवित्त।

ब्रह्मा शिव देव ऋषि वन्दित पदारविन्द, भक्तनके दुःखहर्णहार गुरु गाइये। वेदवेद्य पुनि श्रीश्रीनिवास है नाम जाको, जासु गुण अंत शेष शारदा न पाइये॥ कौस्तुभवेदान्ततत्त्व कण्ठमें विराजमान, भक्तिरूपा श्रीजु जाके हृदेमें सुहाइये। करुणाको सिन्धु अरु अगतिन गतिदाता, हरि मनवचनसों ताको सीस नाइये॥ १॥

इस लोकमें ब्रह्मरुद्रादिकिरीटकोटिवन्दितपादपीठ, अचिन्त्य, अनन्त, स्वाभाविक, स्वरूपशक्तिवैभव, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, कारुण्य, वात्सल्य, दया, तितिक्षादि अनन्त कल्याणगुणसागर, जगज्जन्मादिकारण, सर्वश्रुतिशिरोरत्न, वेदांतवेद्यचरण, रमानिवास भगवान् श्रीवासुदेव विष्णुने स्वसंस्थापित वेदमार्गसंरक्षणार्थ नियुक्त किये, निरतिशयस्वप्रिय, स्वशक्तिवर्द्धितानन्तशक्ति, स्वहस्ताधेय, कोटिसूर्यसमप्रभ, भगवान् श्रीसुदर्शन अवनितलमें तैलंगद्विजवररूपसे प्रगट हो उस देशमें श्रीनियमानन्द नामसे प्रसिद्ध हुए और भगवदीय सनातनी

कलिमें नष्ट हुई वेदान्तसम्प्रदाय प्रवृत्त करते हुए उन्हीं श्रीनियमानन्दाचार्यने शारीरकमीमांसावाक्यार्थ "वेदान्तपारिजात" नामक ग्रन्थरचनव्याजसे सर्ववेदान्तशास्त्रार्थको संक्षेपसे दिखाया। उस शास्त्रका अधिकारी विधिपूर्वक उपनयनादिसंस्कृत, षडंगश्रुतिसहितधर्ममीमांसाकी जिज्ञासासे कर्मफलादिविषयमें नष्टसंशय, कर्मफलमें विरक्त, भगवद्दर्शनलम्पट, गुरुभक्तिसम्पन्न, मुमुक्षु है। और अनन्ताचिन्त्यापरिमितस्वरूपगुणशक्तिऐश्वर्य परब्रह्म श्रीवासुदेव विषय है। तथा श्रीभगवद्भावापत्तिमोक्ष प्रयोजन है। एवं वाच्यवाचक सम्बन्ध है। ये अनुबन्धचतुष्टय हैं। इस वेदान्तशास्त्रको अचिन्त्य अपार अतिगंभीर आशय होनेसे मन्दगति, सर्वशास्त्रजिज्ञासु, शिथिलप्रयत्न, एवं शास्त्रार्थविचारमें असमर्थ जनोंका प्रवेश दुष्कर निश्चयकर श्रीआचार्यने तिनके उपकारार्थ वेदान्तरत्नरूप शास्त्रार्थ कामधेनु "दशश्लोकी" भी निर्माण की। यह बात श्रीआचार्यने आपही "वेदान्तपारिजात" के आरम्भ वाक्यमें कही है तथा अनुबन्धचतुष्टयभी जिज्ञासासूत्रके वाक्यार्थमें कहे हैं। वे अनुबन्धचतुष्टयप्रतिपादकवाक्य दिखाते हैं "स्वाध्याय अध्ययन करना[१]। शिष्य समित्पाणि[२] होकर वेद-

---

निम्बार्काचार्यचरणकरुणालब्धबुद्धिना।
मया किशोरदासेन टिप्पण्यत्र विरच्यते॥ १॥

१ स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। २ स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

पारंगामी और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जावे। जैसे यहां कर्मसंचितफल नाश[1] होते हैं वैसेही परलोकमें भी कर्मसञ्चित फल नाश होते हैं। कर्मरचित लोकनकी परीक्षाकर ब्राह्मण वैराग्यको प्राप्त होवे। कृतकर्मोंसे अकृत मोक्षकी[2] प्राप्ति नहीं होती है।

ब्रह्मादिकोंके सेव्य[3] परमेश्वरको जब अपनेसे अन्य (उत्कृष्ट) देखै, जब द्रष्टा ब्रह्मा और वेदादिकोंका कारण रुक्म[4]सवर्ण परमेश्वरको देखै, जिसकी देवमें[5] परा भक्ति है वैसीही गुरुमें भी हो उसी महात्माको वेदान्तमें कहे पदार्थ प्रकाश होते हैं, अन्यको नहीं। धाताके प्रसादसे कर्मरहित पुरुष वीतशोक होकर क्रतुजन्य ज्ञानाविषय परमात्माको तथा आत्माकी महिमाको[6] देखता है। परमात्मा जिसको अपनावे[7] वही पुरुष परमात्माको पावे है। समस्त वेद[8] जिस पदको प्रतिपादन करते हैं, उस उपनिषत्प्रतिपाद्य[9] पुरुषको हम पूछते हैं। वाचकता करके

---

१ यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते, परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्। २ नास्त्यकृतः कृतेन। ३ जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम्। ४ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। ५ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ ६ तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः। ७ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। ८ सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति। ९ तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि।

सर्व नाम जिसमें प्रवेश[1] करते हैं। शास्त्रयोनि[2] है। सर्ववेदोंसे[3] वेद्य मैंही हूं। निरञ्जन हो परम[4] समताको प्राप्त होता है। वीतशोक पुरुष परमेश्वरकी[5] महिमाको पावे है। ज्ञानरूपतपसे पवित्र बहुत मेरे भावको प्राप्त हुए[6]। मेरे साधर्म्यको[7] प्राप्त हुए। ब्रह्मनिष्ठ[8] पुरुषको श्रुति मोक्षफल कहती है। सर्वशास्त्रोंका ब्रह्ममें समन्वय[9] है। जिसमें सबवाणीकी शाश्वती[10] प्रतिष्ठा है उस परमात्माको हम नमस्कार करते हैं। इत्यादि इन वाक्योंकी व्याख्या शंखावतार श्रीश्रीनिवासाचार्यने भाष्यमें की है। श्रीविश्वाचार्यचरणने भी कहा है कि, श्रीपुरुषोत्तमके शंखावतार जिनकी ध्वनि अचिन्त्यशक्ति शास्त्र है, जिसके स्पर्शमात्रसे ध्रुव आप्तकाम हुए उन श्रीश्रीनिवासाचार्यकी शरणमें मैं प्राप्त होता हूं। इति। इस (पूर्वोक्त) 'दशश्लोकी' की टीका "वेदान्तरत्नमञ्जूषा" नामक ग्रन्थ श्रीपुरुषोत्तमाचार्यने किया है, उस (वेदान्तरत्नमंजूषाको)को प्राकृतभाषामें यथामति वर्णन करता हूं।

---

१ नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति। २ शास्त्रयोनित्वात् ॥१।१।३॥ ३ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। ४ निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति। ५ तन्महिमानमिति वीतशोकः। ६ बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः। ७ मम साधर्म्यमागताः। ८ तन्निष्टस्य मोक्षव्यपदेशात् १।१।७। ९ तत्तु समन्वयात् १।१।४। १० नमामः सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती।

सोरठा।

कहूं यथामति सार, मञ्जूषामें जो कह्यो॥
बुधजन लेहु सुधार, चूक लिखन मतिमंदकी॥ १॥

अब आरंभमें प्रथमपरिच्छेदमें "ज्ञानस्वरूप" इत्यादि दो श्लोकार्थकी भाषा करके त्वम्पपदार्थका निरूपण करते हैं।

श्लोक–ज्ञानस्वरूपञ्च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्॥ अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः॥ १॥ अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्। मुक्तञ्च भक्तं किल बद्धमुक्तं प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम्॥ २॥

जीवतत्त्ववर्णन करूं, सम्प्रदाय अनुसार॥
मञ्जूषा अरु सेतुका, ज्यों भाख्यो श्रुतिसार॥ १॥

कोई देहको ही आत्मा कहते हैं, सो असत् है, क्योंकि मृतकशरीरमें चैतन्य दिखाता नहीं है। अनुमान–देह आत्मा[1] नहीं, क्योंकि भौतिक हैं, जो भौतिक है, वह आत्मा नहीं जैसे घटादिक। कोई इन्द्रियोंको आत्मा कहते हैं, सो भी नहीं, क्योंकि स्वप्नावस्थामें इन्द्रियोंका लय होता है, और इन्द्रियें करण हैं, जिसका लय हो और जो करण हो वह आत्मा नहीं, जैसे दीप तथा

---

१ इस अनुमानमें देह पक्ष है, अनात्मत्व साध्य है, और भौतिकत्व हेतु है, तथा घटादिक दृष्टान्त है। ऐसेही सर्वत्र अनुमानमें घटा लेना।

कुठार। मनभी आत्मा नहीं इसकाभी सुषुप्तिमें लय होता है और अन्तःकरण है, वैसेही बुद्धिभी आत्मा नहीं। पूर्वोक्त अनुमान इसमें भी समझना। कोई प्राणको आत्मा मानते हैं, यह मतभी असत् है, क्योंकि प्राण वायु है, जो वायु सो आत्मा नहीं जैसे व्यजनजन्य वायु। यदि कहो सुषुप्त्यादिमें प्राण अनुगत है इससे प्राण आत्मा है, यह तुच्छ है, क्योंकि सुषुप्तिमें प्राणके विद्यमान रहनेपरभी चौर पट भूषणादि हरता है, किन्तु प्राण जानता नहीं है, अतः आत्मा नहीं। इससे देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणादिकोंसे पर चेतन आत्मा भिन्न है। देहेन्द्रियादिसे पर ज्ञानेच्छादिगुणक विभु अचेतन आत्मा तार्किक मानते हैं सो नहीं। किन्तु आत्मा "ज्ञानस्वरूप[1]" है। तथा श्रुति जैसे लवणका पिण्ड अन्तर वाहर रसरूप है वैसेही आत्माभी वाहर भीतर सम्पूर्ण विज्ञानघन[2] है। यह आत्मा स्वयंज्योति[3] है। देहादिकसे भिन्न ज्ञानमात्र मायावादी भी मानते हैं, उसमें अतिप्रसंग वारणकरते हैं—"आत्मा ज्ञानाश्रय[4] भी है" श्रुतिभी कहती है कि जो गन्धज्ञानका[5] ज्ञाता है, वह आत्मा कौन है, इस

१ 'ज्ञानस्वरूपम्' इस पदकी व्याख्या करते हैं। २ यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एव, एवं वारेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव। ३ अत्रायं पुरुषः स्वयञ्ज्योतिर्भवतीति श्रुतिः। ४ 'ज्ञातृत्ववन्तम्' की व्याख्या करते हैं। ५ योऽयं वेद जिघ्राणीति स आत्मा कतम इत्युपक्रम्य पुरुष एव द्रष्टा श्रोता रसयिता घ्राता मन्ता बोद्धा विज्ञानात्मा पुरुषः, विज्ञातारमरे केन विजानीयात्, जानात्येवायं पुरुषः न पश्यो मृत्युं पश्यति, न रोगं नोत दुःखताम्।

प्रश्नका उत्तर है कि, पुरुषही श्रवण दर्शन रसन आघ्राण मनन बोधनरूप ज्ञानका आश्रय (ज्ञाता) है। उस विज्ञाता पुरुषको कैसे जानें। ज्ञाताही पुरुष है जो ऐसे आत्माको देखता है, वह मृत्यु और रोग तथा दुःखको नहीं देखता है।[1] सुषुप्त्यादिकविषयमें देखते हुए भी नहीं देखता है, क्योंकि उस अवस्थामें विशेष विषयका अभाव है। द्रष्टाकी दर्शनशक्तिका[2] लोप नहीं होता है, क्योंकि दर्शनशक्ति अविनाशी है, घ्राताकी घ्राणशक्ति, रसयिताकी रसनशक्ति, श्रोताकी श्रवणशक्ति, मन्ताकी मननशक्ति, स्पर्शज्ञानाश्रयकी स्पर्शनशक्ति, विज्ञाताकी विज्ञानशक्तिका कभी लोप नहीं होता है, क्योंकि अविनाशी है। अरे मैत्रेय! यह आत्मा अविनाशी[3] है, इसके धर्मका उच्छेद नहीं इत्यादिश्रुति प्रमाण होनेसे ज्ञाताही[4] जीव है। और कर्त्ताही जीव है। जाते "कर्तृत्वप्रतिपादकशास्त्र अर्थवान्[5] है" इत्यादिक ब्रह्मसूत्र प्रमाण है। "यां[6] क्षेत्रको जो जाणै सो क्षेत्रज्ञ कहिये है" ऐसैं श्रीमुखते गायो है। तहां

---

१ यद्वै पश्यन्न पश्यति। २ न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्, न हि घ्रातुर्घ्रातेर्न हि रसयितू रसयतेर्न हि वक्तुर्वक्तेर्न हि श्रोतुः श्रुतेर्न हि मन्तुर्मतेर्न हि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्। ३ अविनाशी वा अरेऽयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मेत्यादिश्रुतयः। ४ ज्ञोऽत एव।२।३।१८। ५ कर्त्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्।२।३।३२। ६ एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः।

वादी कहते हैं ज्ञानरूप आत्मा ज्ञानको आधार कैसैं हो सके? ज्ञानाधार ज्ञानाधेय भिन्न बनै नहीं; जैसैं जलमैं जल तेजमें तेज, तातें बुद्धिवृत्तिप्रतिबिंबित जो चेतन-स्वरूप सो ज्ञान कहिये है न्यारो धर्म ज्ञान कोई है नहीं, इति। सो तुच्छ है। धर्म धर्मीकी अत्यंत सजातीयता भेदा-भावमें नियामक नहीं, किन्तु भेदके न होणेमें नियामक है। तातें धर्मता धर्मिता भेदक करकै ज्ञानसामान्य होतें संतें हूं धर्म धर्मीकी विजातीयता है। यातें दृष्टांत बणता नहीं। जैसे सूर्य अरु प्रभाको तैजस सामान्य हू है, परंतु सूर्यत्व प्रभात्व भेदक करकै भेद प्रत्यक्ष है। तातैं सिद्धांत अयुक्त नहीं। वास्तव तो तेजमैं तेजको जलमैं जलको अत्यंत सजातीयतातें भेद प्रत्यक्ष नहीं, परंतु भेद है ही, सावयव द्रव्य करकै। अनुमानतें जैसें घटादिकें द्व्यणुकादिको प्रत्यक्ष नहीं अरु भेद है, अन्यथा घटादि-कमें पृथ्वीके अवयवनके अभेदकी क्यों न शंका करो। तहां अनुमान है।[1] जलमैं डारयो जल भिन्न रहत है, जातें सावयव द्रव्य है, और तिलराशिमें डारयो जैसै तिल, तैसे हीं दार्ष्टांत जानना। और जो कहो बुद्धिवृत्तिमें चेतनप्रति-बिंबितको ज्ञानको उपचार करते हैं, सो तुच्छ है, सूर्यके प्रतिबिंबसे देशवृत्तितम, अरु शीतकी जैसैं निवृत्ति नहीं

---

१ अत्र प्रयोगः, जले निक्षिप्तं जलं भिन्नत्वेनावस्थातुमर्हति, सावयवद्रव्य-त्वात्। पार्थिवरजसि निक्षिप्तपार्थिवरजोवत्। तिलराशौ निक्षिप्ततिलवच्च।

होती है, तैसें वृत्तिप्रतिबिंबित चेतनसे ज्ञानको कार्य अज्ञानकी निवृत्ति न होइगी, बुद्धिवृत्तिप्रतिबिंबित चेतन अज्ञान निवर्त्तक नहीं यह तो रहा वास्तवमें तो प्रतिबिंबही बने नहीं क्योंकि चेतन अरु वृत्ति दोनों बिंब अरु उपाधि ये निरवयव और नीरूप हैं, यदि नीरूप और निरवयवका भी प्रतिबिंब मानो तो रसादिकको शब्दादिकमें और शब्दादिकको कालादिकमें कालादिकको रसादिकमें प्रतिबिंब होना चाहिये सो देख्यो सुन्यो नहीं याही करकै ब्रह्मको प्रतिबिंब जीव है यह पक्ष हू निरस्त भयो। जातैं तुल्य युक्ति है। बिंबरूप चेतन अरु अविद्यारूप उपाधि दोऊ निरवयव नीरूप हैं, जो कहौ नीरूप निरवयवरूपको अरु आकाशको प्रतिबिंब देखा जाता है, सो तुच्छ है, सावयव-द्रव्यविशिष्टरूपको अरु सूर्यचंद्रादिप्रभाविशिष्टआकाशको प्रतिबिंब होवे है केवलको नहीं। अन्यथा अत्यंत अंधकारमें आकाशको प्रतिबिंब दिखाई देना चाहिए, सो दीखता नहीं, सिद्धांतमें तो बिंबरूप आकाश रूपवान् और सावयव है क्योंकि पंचीकृत द्रव्य है, पृथिव्यादिवत्। केवलको प्रतिबिंब नहीं अतः प्रतिबिंब जीववाद मुमुक्षुको युक्तिहीन जानना। अरु यहां जो कहौ उपमा सूर्यजलादिककी

१. अतएव उपमा सूर्यकादिवत् ३।२।१८। यतः सर्वान्तर्यामितयाऽवस्थितस्यापि परस्योभयलिङ्गवत्तया निर्लेपत्वान्न तत्तत्स्थानप्रयुक्तदोषसम्बन्धित्वमत एव शास्त्रे सूर्यकादिवत् सूर्यस्य प्रतिकृतयः सूर्यकास्तद्वत् जलसूर्यादिवदित्युपमोपादीयते, इति सूत्रार्थः।

यह सूत्र, अरु एकएवही भूतात्मा इत्यादि श्रुति[1] प्रतिबिंबमें प्रमाण है सो तुच्छ है। क्योंकि श्रुतिसूत्रको अर्थ सुनो जैसें सूर्य अपणी प्रभाकी व्याप्तिकरकैं जलमें रहै है किन्तु जलके शीतादिकधर्मसों लिप्त नहीं होता है किन्तु जलको अपनी उष्मा अरु प्रकाश करकैं उष्ण, तथा प्रकाश करै है। चंद्र जैसें अपणी प्रभाव्याप्तिकरकैं अरु शीतकों बढावै है आप जलकै द्रवादिक गुण करकैं क्लेदनादिक गुण करके लिप्त नहीं होता है, तैसें परमात्मा स्वरूपकरकैं सर्वांतर रहता है। किन्तु ताके धर्मसों लिप्त नहीं होकर विश्वको प्रकाशै है, एक प्रकार समष्टीको अंतर्यामी वहुप्रकार व्यष्टीको अंतर्यामी यह श्रुति-

---

१ एक एव ही भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा वहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ श्रुत्यर्थस्तु भूतात्मा भगवान् वासुदेवः एक एव भूते भूते चेतनाचेतनवर्गे, यद्वाऽभूत इति छेदः, भूते कार्यवर्गे, अभूते कारणवर्गे, यद्वा भूते सृष्टिगते वद्धचेतनवर्गे अभूते सृष्ट्यनन्तर्गते नित्यमुक्तचेतनवर्गे तदन्तर्यामितया व्यवस्थितः, विशेषेण सदैकरसानन्दरूपेणावस्थितोऽपि तद्गतदोषासंस्पृष्टमाहात्म्य एव दृश्यते महात्मभिस्तदनुग्रहभाजनैरुपनिषच्चक्षुष्कैरित्यन्वयः। ननु गुणदोषसम्पृक्ते वस्तुनि वर्त्तमानस्य कथमिव तन्निर्लेपत्वमित्याशङ्क्यां दृष्टान्तेन निराकरोति—चन्द्रवदिति। यथा चन्द्रः श्रीगङ्गादिपुण्यजलेषु शूकरादिविलोडितदुर्गन्धिगर्त्तादिजलेषु च स्वकरनिकरव्याप्त्या वर्त्तमानोऽपि तद्गतगुणदोषैर्न युज्यते, एवं ब्रह्मादिश्वपाकान्तेषु चेतनाचेतनेषु साम्येन स्वरूपव्याप्त्या तिष्ठन्नपि परमेश्वरो न तद्गतगुणदोषैर्युज्यतेऽस्पृष्टस्वभावत्वात्। "सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः" इत्यग्रिम वाक्यात्। तत्रैकधा समष्ट्यन्तर्यामितया, वहुधा व्यष्ट्यन्तरात्मतया इति संक्षेपः।

सूत्रको अर्थ है। याही उपमानसे ब्रह्मकी स्वतंत्रप्रकाशकता जगत्को तदधीनप्रकाशकता हूं सिद्ध भई। किंच अग्नि जैसे भुवनमें प्रविष्ट काष्ठ काष्ठमें तदाकार होइ है तैसें एक सर्वांतर्यामी देवतिर्यगादिमें तदाकार होयके निर्लेप है. वायु जैसै भुवनमें प्रविष्ट सर्वको प्राण होयके निर्लेप रहै है तैसें ही सर्वांतर्यामी॰ सूर्य जैसें विश्वके चक्षुमें रहै है किन्तु चक्षुदोषसों लिपै नहीं तैसें सर्वांतर्यामी॰ एक परमेश्वर ब्रह्म रुद्रादि जगद्वशीकर्त्ता एकही अनेकको अंतर्यामी बहुरूप तदाकार होने परभी निर्लेप है ताहि सर्वात्मस्थ भगवान्को जे धीर पुरुष देखते हैं तिनकों शाश्वती मोक्ष होती है औरनकों नहीं; इत्यादिक निर्लेपताके वाक्य सहित एक वाक्यता है कठवल्लीमें। तहां सिद्धान्ती पूछते हैं कि उपाधि सत्य है वा मिथ्याहै? सत्य तो तुम्हारे अंगीकार नहीं अन्यथा द्वैतापत्ति, अरु अद्वैतसिद्धांत भंग, अरु निर्मोक्षप्रसंग, अरु अपसिद्धांत, ये दोषसमुदाय भयो। मिथ्याहू बनै नहीं मृगमरीचिकाके

---

१ अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च, वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव, एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च. सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः, एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः, एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती, नेतरेषामिति कठवल्लीश्रुतिभ्य एकार्थत्वात् ।

जलमें सूर्यको प्रतिबिंब भयो चाहिए सो देख्यो सुन्यो नहीं, तातें प्रतिबिंबवाद भ्रांति है ऐसे प्रतिबिंबवादकों खंडन सुनकर अवच्छेदवादी बोलते है, प्रतिबिंबवाद भ्रांतिमूलक है सो सत्य है, हमारे हू अंगीकार नहीं किंतु अविद्यावच्छिन्न अथवा अंतःकरणावच्छिन्न शुद्धचेतन ब्रह्म ही जीव है जैसें घटावच्छिन्नाकाशको मठावच्छिन्नाकाशतें, ताकों अनवच्छिन्न महाकाशतें अभेद है तैसें अंतःकरणावच्छिन्न व्यष्टिजीवको अविद्यावच्छिन्नसमष्टितें अभेद है ताकों शुद्धनिरवयव विभु चेतन ब्रह्म नित्यमुक्ततें अभेद है अरु कल्पित उपाधिकरकें भेद भासत है उपाधि नाशहुए भेद नहीं इति । सो तुच्छ है जातें विकल्पकों नहीं सह सकता है सो विकल्प कहते हैं, उपाधि जो अविद्या अथवा अंतःकरण सो जैसे काष्ठकों कुठार तैसें चेतनको छेदन करके घेरै है? अथवा एक देशमें रहके घट जैसे आकाशकों घेरै है तैसे घेरै हैं प्रथमपक्ष कह सकोगे नहीं जातें निरवयवको छेदन बनै नहीं, अन्यथा निरवयवताकी हानिप्रसंग, जीवकों अनादित्व, अजत्व प्रतिपादकशास्त्रव्याकोप होताहै। द्वितीय विकल्पहू बनै नहीं तहां उपाधि विभु है अथवा परिच्छिन्न है यह विचार करणा विभु तो बनै नहीं जातें उत्क्रमणगत्यादिक बनै नहीं, दोऊ (ब्रह्म और उपाधि) विभु हैं। तातें संपूर्णब्रह्मके आवृत होनेसे जगदांध्यप्रसंग०, मुक्त-

प्राप्यशुद्धको अभावादिदोष आते हैं, परिछिन्नउपाधि हू बनै नहीं, उपाधिके गमनादिसमैं विभु ब्रह्मकों गमनादिक बनै नहीं; जैसैं घटावच्छिन्नकाशको घटके गमनमें गमन नहीं पदपदमें बंधमोक्ष प्रसंग पूर्वदेशावच्छिन्न क्षेत्रज्ञ संज्ञा चेतनको अनायास मुक्ति प्रसंग, उत्तरदेशावच्छिन्न नित्यमुक्त शुद्ध चेतनको कारण विना बंधन प्रसंग, कृतनाशाकृताभ्यागम प्रसंग होता है ताते भ्रममूलक अवच्छेदवाद है, अरु बूझत है ब्रह्मावच्छेदक उपाधि सत्य है वा मिथ्या है सत्य तो नहीं पूर्वोक्त अनिर्मोक्षादिदोषके प्रसंगते, मिथ्याहू नहीं बनै स्वप्नके रज्जुकरकै जाग्रतमें राजगृहवर्त्ती हस्ती अश्व चोरादिको बंधन देख्यो सुन्यो नहीं, तातें श्रेयस्काम मुमुक्षु या पक्षकी उपेक्षा करै शास्त्रविरोधतैं। वह ज्ञाता (जीव) अहमर्थतैं अभिन्न है, मैं जानता हूं करत हूं इत्यादि प्रत्यक्ष प्रतीति यामैं प्रमाण है। तहां शंका करत है अहमर्थ आत्मा नहीं यातें सुषुप्तिमूर्च्छादि अवस्थामें अनुगत नहीं, प्रकृतिको कार्य अहंकार ही प्रतीतिको विषयहै इति। सो तुच्छ है क्योंकि तुम्हारा हेतु स्वरूपासिद्ध है सुषुप्ति मूर्च्छा समय अहमर्थकी अनुगति प्रमाण सिद्ध है, इतने[1] काल पर्यंत मैं सुखसों सोयो कछु न जानत भयो यह स्मरण, अरु जो मैं सोवत भयो सो मैं जागत हूं यह

---

१ एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिद्वेदिषम्।

प्रत्यभिज्ञा, यामें प्रमाण है। अनुभवकर्त्ता ही स्मरण-कर्त्ता होत है। अन्यके अनुभवको अन्यको स्मरण बने नहीं, तातें सुषुप्ति समयमें अज्ञान अरु सुखको ज्ञाता अहमर्थ विद्यमान है ता समैं शब्दादिक विशेष विषयका अभाव होनेसे विशेष प्रतीति होत नहीं। वादी पुनः शंका करत है इतने काल पर्यंत मैं आपहूकों न जानत भयो इत्यादिक स्मरणहू तो छिपै नहीं या प्रतीतिको अहमर्थाभाव विषय देखते हैं तातें अहमर्थ अनुगत नहीं और हमारो हेतु सत्य है। सो तुच्छ है, जातें तुम्हारी कही प्रतीति मैं हूं अहमर्थ अनुगत है मैं आपकों न जानत भयो यामैं मैंको अर्थ देहेंद्रियादिभिन्न ब्रह्मात्मक शुद्ध जीवात्मा ज्ञाता अहमर्थ है, सोको अर्थ देहादियुक्त आत्मा करके मान्यो सो जाग्रतमें अनुभूत है देहादियुक्त को निषेध हमारे हू संमत है यातें देहादि युक्तके अभावको ज्ञाता अहमर्थ सर्वावस्थामें अनुगत हैं तातें तेरो हेतु स्वरूपासिद्ध ही बन्यो रह्यो, अन्यथा इतने कालपर्यंत मैं न होत भयो यह प्रतीति होनी चाहिए। सो तो काहूकों होत नहीं तातें ज्ञातातें अभिन्न अहमर्थ ही आत्मस्वरूप है सुषुप्त्यादिकमैं अहमर्थके व्यभिचारकी कथा तो रही किन्तु मुक्ति अवस्था हू मैं अहमर्थ अनुगत है सो सुनों "महाप्रलय समैं एकाद्वितीय ब्रह्म जो अवशेष रहै

१ अनुभवस्मृत्योरेकाधिकरण्यनियमात्।

सो नित्यमुक्त अहमर्थ है ताके साम्यकों प्राप्तभये जे मुक्त तेहू अहमर्थही हैं ऐसें श्रुति कहत है ब्रह्मही आगें होत भयो सो जानत भयो मैं ब्रह्म हूं मैं बहुप्रकार होहूं मैं त्रिवृत त्रिवृत करों मैं नाम रूप प्रगट करौं इत्यादिक। वामदेवादिमुक्तोंको अनुभवहू यामें प्रमाण है "मैं मनुहोतभयो मैं सूर्य होत भयो इत्यादिक। अरु सर्वशास्त्रशिरोमणि श्रीभगवद्गीताशास्त्रहूंमें यही सिद्धांत है। "हे अर्जुन! भूत भविष्यत वर्त्तमान सर्वभूतनको मैं जानत हूं" या करकै अहमर्थकों सर्वज्ञता, "सर्वजगत्की उत्पत्त्यादिकारण मैं हूं" इससे अहमर्थको कारणता, "ऐसें जानकैं विवेकी मोहीकों भजत है," या करकै भजनविषयता, "तिनकों संसारतें उद्धर्त्ता मैं हूं" इति संसारनिवारकता, "तिनकी अनुकंपाके अर्थ मैंही ज्ञानदीपकरकै अज्ञानांधकारका नाश करता हूं" इति अनुकंपादि गुणाश्रयता अरु ज्ञानदातृत्व अरु अज्ञाननाशकत्व यज्ञतपको

---

१ ब्रह्मैवेदमग्र आसीत्, तदात्मानं वेदाहं ब्रह्मास्मीति। २ बहु स्यां प्रजायेय, २ त्रिवृतं त्रिवृतं करवाणि, नामरूपे व्याकरवाणि, ४ तद्धै पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवं सूर्यश्च। ५ वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि—इत्यस्मदर्थस्यैव सर्वज्ञत्वम्। ६ अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते इत्यस्मदर्थस्यैव विश्वोत्पत्तिस्थितिप्रवृत्तिसंहारकारणत्वम्। ७ इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः, इत्यस्मदर्थस्य भजनीयविषयत्वम्, तद्भजताञ्च ज्ञानित्वम्। ८ तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरादिति संसारनिवारकत्वम्। ९ तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वतेति अनुकम्पादिगुणाश्रयत्वम्, ज्ञानदातृत्वम्, अज्ञाननाशकत्वं, सर्वशेषित्वञ्च।

भोक्ता अरु लोकमहेश्वर सबको सुहृद मैंहीं हूं ऐसैं मोंकों जानकें मोक्षकों पावै है" इति मोक्षदान "हे अर्जुन! मोकों प्राप्त होकर फेर जन्मकों नहीं पावै है" इति मुक्तप्राप्यता "हे अर्जुन! मोकों नहीं प्राप्त होइकै अधम-गतिकों जाते है" इति ताकी प्राप्तिविना अधमगति। "यातें वेदपुराणमें मैं ही पुरुषोत्तम विख्यात हूं" इति पुरुषोत्तमता, "हे अर्जुन! सबको आत्मा मैं ही हूं" इति सर्वात्मता। "एक अंशकरकै सर्व जगत्में थाम्यो है" इति सर्वाधारता। "मो विना कोई चराचर वस्तु नहीं" इति सर्वव्यापकता। "सर्वके हृदेमैं मैं हीं संनिविष्ट हूं; ज्ञान स्मरण अपोहन मोहीतें होत है" इति सर्वबुद्धि-प्रवर्त्तकता। "सबवेदकरकै मैंहीं वेद्य हूं" इति सर्वशा-

---

१ भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्ति-मृच्छतीति ॥ तद्विषयकज्ञानस्यैव मोक्षान्तरङ्गहेतुत्वम्। २ मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः परां सिद्धिमितोगताः। इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः। बहवो ज्ञानत-पसा पूता मद्भावमागताः इति। मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्। तन्निष्ठस्य मोक्षव्यपदे-शादिति सूत्रोक्तमुक्तोपसृप्यत्वम्। ३ मामप्राप्यैव कौन्तेय! ततो यान्त्यधमां गति-मिति तदप्राप्तेः संसृतिहेतुत्वम्। ४ अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः इति पुरुषोत्तमत्वम्। ५ अहमात्मा गुडाकेश! क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि इति विश्वा-न्तरात्मत्वम्। ६ विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमिति विश्वाधारत्वम्। ७ न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरमिति विश्वव्यापकत्वम्। ८ सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः, मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्चेति सर्वधीप्रवर्त्तकत्वम्। ९ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य इति सर्वशास्त्रयोनित्वम्।

त्रविषयता। "अष्टप्रकार मेरी अपरा प्रकृति है जीव[1]-भूत मेरी परा प्रकृति तू जान" इति चेतनाचेतनप्रकृति-नियमन, "मूढ मोकों मानुष्य जानिकें[2] मेरी अवज्ञा करते हैं मेरे महेश्वरभावकों जानत नहीं, तिनकी आशा तिन-को कर्म तिनको ज्ञान संपूर्ण साधन मोघ है, ते राक्षसी आसुरी मोहनी प्रकृतिके आश्रित हैं" इति अवज्ञाको फल। "मोतें परैं अर्जुन[3] और कोऊ परतत्त्व नहीं मोहीमें सब जगत् पोयो है" इति सबतें पर, तातें परको निषेध, "सर्वधर्मनको छोडकै मेरी शरण आव सब पापनतें तोकों मैं छुडांऊगो तू शोक मतकरै" इति सबको शरण्य, सब पापतें मोचक, अहमर्थकों गीताशास्त्रमें निर्णय श्रीमुखसों

---

१ अपरेयमितस्त्वन्यां जीवभूतां महाबाहो। ययेति चेतनाचेतनप्रकृत्यधिष्ठा-तृत्वम्। २ अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम। परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्। मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहनीं श्रिताः। इति तदवज्ञाया मूढत्वराक्षसत्वासुरत्वमोहत्वभावाप-त्तिकारणत्वम्। ३ मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। ४ मामेकं शरणं व्रजेति सर्वशरण्यत्वम्। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मां शुच इति निःशेषपापनिवारकत्वम्। न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे इति कालत्रयाबाध्यत्वम्। मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय। इति साम्यातिशयशून्यतया ईश्वरकल्पाना-मपि नियंतृत्वरूपं निरतिशयैश्वर्यं च स्वयमेव श्रीमुखेन गानात्, सर्वस्यापि गीता-शास्त्रस्यास्मदर्थाभिन्नसर्वज्ञानन्ताचिन्त्यशक्त्याश्रयपुरुषोत्तमविषयकत्वमवगम्यते उदा-हृतेभ्यो हेतुगर्भितश्लोकेभ्यः। तस्मादहमर्थ एव परब्रह्मभूतो विश्वात्मा भगवान् श्रीवासुदेव इति सिद्धम्।

कहो है। तातें अहमर्थाभिन्न सर्वज्ञ अचिन्त्यानंतशक्ति
श्रीपुरुषोत्तम परब्रह्म वासुदेव विश्वात्मा गीताशास्त्रको
विषय है। अरु वेदमाता गायत्रीमंत्रमें भी क्षेत्रज्ञ स्थानमें
अस्मत्‌शब्दको प्रयोग है, अतः वेदमाताका भी यही अर्थ
है कि, ज्ञात्रभिन्नास्मदर्थ ही आत्मा है। तहां वादीका
कथन है कि, आत्माकों बुद्धिके अध्यासतें अस्मत्‌शब्दको
प्रयोग है, शुद्ध विषय नहीं इति। सो तुच्छ है बुद्धि
शब्द भिन्न तामें प्रत्यक्ष है अरु विकल्पकों नहीं सहत
है सो विकल्प कहत हैं वेदमाता देवता सर्वज्ञ है वा
नहीं? जो सर्वज्ञ है तो अध्यस्त आत्माको प्रयोग बनै नहीं
क्योंकि मिथ्यात्मप्रयोगतें परताडन प्रसंग भयो, आप्त-
वाक्य न भयो। अज्ञपक्ष विषयमें अप्रमाणिक भयो
तन्मूलक सकल वेद ताकी शाखारूप है सो संपूर्ण अप्र-
माण भयो,अरु बाह्यको मत सिद्ध भयो,तातें वादीकी शंका
तुच्छ है, पूर्वोक्तसिद्धांत ही श्रेष्ठ है। तैसें कर्तृत्व भी
आत्माको स्वरूप धर्म है। "सो मनकों करत भयो" इस
श्रुतिमें मनकों कर्म कह्यो। "विद्वान् श्रोत्रद्वारा मनकरकै
सुनै हैं" इस श्रुतिमें मनकों करण कह्यो। "मनके उत्क्र-
मणमें उन्मत्तकी नाईं भोजन पान करत है" इस श्रुतिमें
मनके निकसें हू भोजनादि कर्त्ता आत्मा कह्यो। "परं

१ तन्मनोऽकुरुत। २ शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वांसो मनसा। ३ मन उत्क्रामन्मीलित इवाश्नन् पिबन्नास्ते।

ज्योतिकों प्राप्त होइकें स्वरूपसे स्थितहोता है, क्रीडा-करत रमणकरत ब्रह्मके सहित" इस श्रुतिमें परमुक्ति-हूमें आत्माकों कर्त्ता कह्यो, तातें सब अवस्थामें कर्त्तृत्व धर्म अनुगत है। अन्यथा मनहीं कर्त्ता अरु कर्म अरु करण बनै नहीं, अरु सुषुप्त्यादि अवस्था हू मैं अहम-र्थके ज्ञाताके ज्ञानकी नाईं कर्तृत्व अनुगत है। अरु बद्ध अवस्थामें ज्ञानका संकोच है, यातें विशेषकर्त्तृत्व करणा-धीन है, सुषुप्तिमें करणको लय है तातें विशेषकर्त्तृ-त्वको भान नहीं होता है। तहां वादीकी शंका जाग्र-तमें करण विद्यमान हैं कर्त्तृत्वको सदा भान होना चाहिये इति। सो तुच्छ है विशेषकर्ममें क्रियाहू निमित्त है क्रियाके होते कर्त्तृत्व भान होत है, अन्यथा नहीं। तहां वादीकी शंका है कि करणक्रियाको निमित्त मानकें आत्माकों कर्त्ता माननो यह बडो गौरव दोष है तातें उपाधिमें कर्त्तृत्व माननो लाघव है, इति। सो नहीं। जड उपाधिकों कर्त्ता माननेसे घटादिमें अतिप्रसंग निवारण करसकोगे नहीं। तहां शंका केवल उपाधि कर्त्ता मत हो किंतु उपाधिके संबंधतें अकर्त्ता आत्मा कर्त्ता प्रतीत होत है इति। सो नहीं, ऐसा माननेसे नपुंसकको स्त्रीसम्ब-न्धसे प्रजाकी उत्पत्ति होना चाहिए सो देखी सुनी नहीं

---

१ परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते, जक्षन् क्रीडन् रममाणः सह ब्रह्मणा विपश्चिता।

और बनै नहीं तातें जैसैं स्वतः दाहकर्त्ता अग्निको काष्ठ-सम्बन्धते दाह आविर्भाव होत है, तैसैं स्वतः कर्त्ता आत्माके कर्तृत्वको आविर्भाव अविरुद्ध है। तहां शंका आत्माकों कर्त्ता माननेसे अकर्तृत्व प्रतिपादकशास्त्र व्याकोप होयगो, सो नहीं ताकों स्वतंत्र कर्त्ताको निषेध विषय है अन्यथा कर्तृत्वप्रतिपादक शास्त्रको व्याकोप तुम्हारे मतहूमें समान है। तहाँ शंका कर्त्ता शास्त्रको बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन विषय है, केवल आत्मा नहीं इति। सो नहीं सांख्यमतमें प्रवेश भयो अरु श्रुतिहीन है, तात वास्तव कर्त्ता आत्मा है शास्त्रप्रमाण करकै। ऐसैं ही आत्मा भोक्ताहू वास्तवमें है, सब अवस्थामें ताको भोक्तृत्व अनुगत है। सुषुप्तिमें सुखको भोक्ता है, मैं सुखसों सोयो यह प्रतीति यामें प्रमाण है, मोक्षमें ब्रह्मस्वरूपगुणादिके आनंदको भोक्ता है।"[1]क्रीडा करत है रमण करत है ब्रह्मके सहितही" यह श्रुतिप्रमाण है। इतने ग्रंथकरकै आत्माको ब्रह्मसाधारणलक्षण कह्यो,आगे असाधारण लक्षण कहते हैं। हरिके अधीन[2]। सब अवस्थामैं स्वरूपतें स्थितिमें प्रवृत्तिमैं परमेश्वर अधीन जीव है, देहादि जडवर्गतें भिन्न,ज्ञानरूप,ज्ञाता, परमेश्वराधीन यह जीवको असाधारण लक्षण है। "ताके प्र[3]काशकरकै सब

---

१ जक्षन् क्रीडन् रममाणः सह ब्रह्मणा   २ 'हरेरधीनम्' इसकी व्याख्या।
३ तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्।

जगत्प्रकाश होत है" "ईश्वर[1] ही भलो कर्म करावत है जाको ऊपर लेजानो है, ईश्वरही नीचो कर्म करावत है जाको नीचे लेजानो है । ईश्वर स्वतंत्र है सब गुण-शक्तिकरकै अधिक है, जीव अल्पशक्ति है, सोई पुण्य पाप करावत है किन्तु दोषकरकै लिपै नहीं जातें समर्थ है" इत्यादि श्रुति यामैं प्रमाण है।"बुद्धि[2] ज्ञान असंमोह क्षमा सत्य दम शम सुख दुःख भव भाव भय अभय अहिंसा समता तोष तप दान यश अयश मोतें भूतनको नानाप्रकारके भाव होतेहैं, हे अर्जुन! ईश्वर सर्वभूतनके हृदयमें विराजै है सबको मायायंत्रपैं चढाइके नचावत है, अर्जुन! सबके हृदयमें मैंही विराजत हूं, मोहीतें स्मरण अरु ज्ञान अरु अपोहन होत है" यह श्रीमुखोक्ति है।"हे युधिष्ठिर ! चराचर सब जगत् कृष्णके वशमें[3] रहत है" यह भीष्मजीको वचन प्रमाण है । तहां वादीकी शंका ईश्व-

---

१ एप एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते, एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषते । आत्मा हि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः, जीवोऽल्पशक्तिरस्वतन्त्रोऽवरः । स कारयेत् पुण्यमथापि पापं न तावता दोषवानीशिताऽपि । २ बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः । सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च । अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः । भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः । ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन! तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया । सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च । ३ जगद्वशे वर्त्ततेऽदः कृष्णस्य सचराचरम् ।

रहीको पुण्यपापको करावनहार माननेमें वैषम्यनैर्घृण्य दोष आयो इति । सो नहीं यातें पुण्य,पाप,करावनो कर्मके अनुसार है, सूत्रकारको यही निर्णय है । तहां वादीकी शंका कर्महीको प्रयोजक मानो तो ईश्वरको माननो व्यर्थ है, क्योंकि पुण्य पापके अनुसार फल सिद्ध होयगो इति । सो नहीं जडरूप कर्मको नियंतृत्व अरु फलदातृत्व वनै नहीं ऐसा माननेसे घटादिकमें अतिप्रसंग भयो । तहां शंका "[1]प्रलयमें कर्म नहीं रहत हैं कैसें ईश्वर कर्मके सापेक्ष फलदाता है इति । सो नहीं कर्म अनादि सिद्ध है" अन्यथा सृष्टि वनै नहीं, अरु कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसंग भयो यह सूत्रकारनै कह्यो है । यातें कर्मानुकूल पुण्यपापको फल ईश्वर देता है अरु ताहीके अनुकूल पुण्यपाप करावत है, तातें ईश्वरमें वैषम्यादिक दोष नहीं । जैसें आंव अरु कंटकादिके विषम फलमें वर्षाका जल कारण है, परंतु जलमें विषमता नहीं, विषमता तिस तिसके वीजमें है, तैसें ईश्वर विषमसृष्टिको कारण है, परंतु तामें विषमता नहीं जातें विषमता जीवनके कर्मसें है । "[2]पुण्य पुण्यकरकै होत है पापी पापकरके होत है" यह श्रुतिमें कह्यो है । तहां वादीकी शंका मुक्तावस्थामें कर्म न होनेसे

१ न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ।२।१।३४॥ २ पुण्यौ वै पुण्येन कर्मणा पापः पापेन ।

नियंतृत्व हू नहीं बनैगो इति। सो नहीं क्योंकि नियंतृत्व, नियम्यत्व, तत्त्वम्पदार्थको स्वरूप है। स्वरूपको नाश मुक्ति नहीं, किन्तु स्वरूपकी प्राप्ति मुक्ति है। अरु हमनें ब्रह्मके नियंतृत्व धर्मको कर्मसापेक्ष नहीं कह्यो है। किन्तु पुण्यपापके करावनेमें अरु कर्मके फल देनेमें कर्मसापेक्ष कह्यो है। मुक्तिमें कर्मका अभाव होनेपर भी स्वरूप स्थितिप्रवृत्तिमें ईश्वर नियंता है यामैं संदेह नहीं। तहां वादीकी शंका ईश्वरकों सर्वप्रयोजक जो मानो तो शास्त्राऽऽचार्यको उपदेश व्यर्थ भयो इति। सो नहीं ईश्वराऽधीन सब अवस्थामें जीव है इस ज्ञानसे हीन मुमुक्षु शास्त्राचार्यके उपदेशको विषय है, अतः विरोध नहीं जीवात्मा सदा परमेश्वराधीन है यह सिद्धांत है। अथ जीवात्माको परिमाण निर्णय करत है। अणुपरिमाण है। मध्यम परिमाण बनै नहीं जातें सावयव है जैसैं घटादि। अरु जीवका मध्यम परिमाण जो मानो तो हस्ति परि-

---

१ अत्र प्रयोगः। प्रत्यगात्मानः, परमात्मायत्तस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकाः। तदात्मकत्वात्। यो यदात्मकः स तदायत्तस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकः। मृदात्मकघटादिवत्। घटादीनां मृदात्मकत्वेन मृदायत्तस्वरूपस्थित्यादेर्दृष्टचरत्वादुक्तसिद्धान्तानुमानस्यापि प्रमाणत्वम्। न चाचेतने व्यभिचारत्वेन हेतोरनैकान्त्यमिति वाच्यम्। तस्यापि साध्यत्वसाम्यात्। नन्वेवं तर्हि दृष्टान्तासिद्धिरिति चेन्न। व्यतिरेकि दृष्टान्तस्य खपुष्पादेः सत्त्वात्। चेतनाचेतनवस्तुजातम् ब्रह्मायत्तस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकम्। तदात्मकत्वात्। यन्नैवं तन्नैवम्। खपुष्पनरविषाणाद्यवस्तुवत्।

२ 'अणुं हि' इस पदकी व्याख्या।

माण जो हस्तिको चेतन सो कर्मवशतैं चींटीके देहमें जावे तो संपूर्णको तामें प्रवेश न भयो अरु बहिलटकत चाल्यो चाहै, अरु चींटीको चेतन कर्मवशतैं हाथीके देहमें जावे तो ताके अतिअल्पदेशमें पड्यो रह्यो, सर्वदेहके अवयवनके सुखदुःखको अनुभव करसके नहीं, तातें मध्यमपरिमाणवाद भ्रांति है, अतः मुमुक्षुओंको हेय है। अरु विभुपरिमाण हू बनैं नहीं, यातें तुच्छ है तहां विभुपरिमाणपक्षमें नैयायिक मीमांसक सांख्यादिकवादी विभुपरिमाण प्रतिदेहभिन्न बहुत जीवात्मा मानते हैं ताहूमें कोई न्यायमतवादी मन उपाधिकों अण मानते हैं, अरु मीमांसक मनकों विभु कहते हैं, अरु मायावादी आत्माको एक, विभ अरु उपाधिको अणु अथवा मध्यमपरिमाण मानते हैं। तहां जे आत्माको बृहत् विभु मानते हैं उनके मतमें उपाधि अणु हो वा विभु हो किन्तु सब जीवनको सब मनके साहित संबंध भयो इससे सबको सबके बाह्याभ्यंतर सुखदुःखको अनुभव नित्य प्राप्त भयो, और सर्वज्ञ ब्रह्ममें अतिव्याप्ति प्रसंग भयो अरु यह मैं यह तूं यह देवदत्त या प्रतीतिको नाश भयो जातें तिन प्रतीतिके विभागको कोऊ नियामक नहीं रहो क्योंकि सर्वके कर्मको सबसों सम्बन्ध प्राप्त भयो। अरु एक विभु आत्मवादी के पक्षमेंभी एकही चेतनको सब उपाधिको संबंध भयो

इससे सर्वको ज्ञान सबकों प्राप्त भयो, अन्यथा अपनें शरीरहूंके देशांतर करचरणादिके दुःखादिको अनुभव नहीं होइगो जातें उपाधि अणु मानत है । अणुमात्र शरीरके देशको सुखदुःख अनुभव करैगो अधिक देशको नहीं । उपाधिकों जो मध्यम परिमाण मानै तो सूत्रसों विरुद्ध भयो सूत्रमें मनको अणु कह्यो है अरु अणु उपाधिसे जीवको अणु श्रुति कहती है यह तुम्हारी व्याख्यासों विरोध भयो तातें बडो पापी यह पक्ष है । पूर्व कह्यो सिद्धांतही श्रेष्ठ है।[1]"यह आत्मा अणु है चित्तकरकै जानवे योग्य है जामें पंचप्राण आश्रय है । यह आत्मा अणु है यामें प्राणादिक बँधे हैं। अरु पुण्य पाप बंधे है । बालके अग्रको शतभाग ताहूको शतभाग ताके भागके परिमाण जीव आत्मा जानिये जो ऐसें जानै सो मोक्षकों योग्य होत है" इति श्रुतिमें कह्यो है । तहां सूत्रहू[2] प्रमाण है "जीव अणु है जातें देहतें देहांतरमें जात है स्वर्गनरकादिकों जात है अरु आवत है अन्यथा आना जाना बनै नहीं।" तहां[3] शंका "जीव अणु नहीं जात श्रुत्यंतरमें जीवको विभु कह्यो है इति ।सो नहीं विभुश्रुति परमेश्वर विषयिका है

---

१ अणुर्ह्येष आत्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश । अणु र्वा ह्येष आत्मा यं एते सिनीतः, पुण्यं पापम् । वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चाऽऽनन्त्याय कल्पते । २ उत्क्रांतिगत्यागतीनाम् । २।३।१९ । ३ नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ।२।३।२१।

जीवविषयिका नहीं" इति । तहां वादीकी शंका यदि आत्माको अणुपरिमाण मानो तो देहके अति अल्पदेशमें रहनेसे जैसें सुमेरुपर्वतमें सरसोंको दाना तैसें सर्वशरीरको अनुसंधान अरु प्रकाश अरु करचरणके सुखदुःखको एक समयमें अनुभव वनै नहीं, तातें आत्मा अणु नहीं इति । सो तुच्छ है धर्मी जीवात्माको अणु होत संतें अपणे विभुधर्मज्ञान करकै सर्वदेहको अनुसंधान अरु प्रकाश अरु अवयवके सुखदुःखादिका अनुभव करनेको समर्थ है। "अपणे गुणकरकै[1] सर्वदेहमें प्रकाशादि करता है, जैसैं दीपादिक" यह सूत्र यामें प्रमाण है ।" जैसें एक[2] ही सूर्य आकाशके एकदेशमें रहकर सव लोकको प्रकाशे है तैसें सब क्षेत्रकों क्षेत्री जीवात्मा प्रकाशै है" यह श्री मुख गायो है। याहीतें याको विभु कहत है जातें विभु याको ज्ञान है । तहां वादीकी शंका धर्मीको छोडकै देशांतरमें धर्मकी व्याप्ति वनै नहीं इति। सो तुच्छ है दीप विना प्रभाकी, अग्नि विना उष्मताकी, पुष्पविना

---

१ गुणाद्वाऽऽलोकवत् ।२।३।२५। वाशब्दो मतान्तरव्यावृत्त्यर्थः । आत्मा स्वगुणेन ज्ञानेन सकलदेहव्याप्त्यावस्थितः । आलोकवत् । यथा मणिद्युमण्यादीनामेकदेशस्थितानामप्यालोकोऽनेकदेशव्यापी दृश्यते, तद्वदात्मज्ञानमपि, इति सूत्रार्थं कौस्तुभप्रभायामाज्ञपयांचक्रुः श्रीकेशवाचार्यचरणाः । २ यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत । इति दृष्टान्तोपपत्तिसहभगवद्वचनम् ।

गंधकी देशांतरमें व्याप्ति प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध है। अरु तार्किकादि मतमैं जातिमान विना जातिकी, संबंधी-विना समवायसंबंधकी व्याप्ति अंगीकार है अरु श्रुति-हूमैं प्रमाण है "जैसें अणु चक्षुको प्रकाश व्याप्त है तैसें अणु जीवात्माको प्रकाश ज्ञानरूपधर्म व्यापक है। तातें पुरुषकों व्यापक कहत हैं" तहां शंका अणुरूप बुद्धि उपा-धिसे आवृत है यातें याकों अणु कहत है, "बुद्धिके गुण-करकै अणु है आत्माके स्वरूपकरकैं विभु है" ऐसें श्रुति कहतीहै। सो तुच्छ है जातें श्रुतिको अर्थ अन्यप्रकार है सो सुनो। "परमेश्वरतें अपकृष्ट जीवात्मा बुद्धिपरिमाणकरकै अरु स्वरूपके परिमाणकरकै दोनों प्रकारसे आराके अग्र-परिमाण अणु देखा है सूक्ष्मदर्शियोंने" यह श्रुत्यर्थ है। विभुपरिमाण नहीं, यह एवकारको अर्थ है। ऐसें परि-माण निर्णय करकै संख्या निर्णय करत है, देह देहप्रति भिन्न भिन्न जीवात्मा है। या करकै परमेश्वर सर्वमें एक है जीवात्मा भिन्न भिन्न है। तातें दोनों अतिशय

---

१ अणुनश्चक्षुषः प्रकाशो व्याप्त एवमेवास्य प्रकाशो व्याप्तः, व्याप्तो वै पुरुषः। २ बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः। बुद्धेर्गुणेन परिमाणेन तथैवात्मगुणेन स्वरूपपरिमाणेन अवरः परमेश्वरादन्यो जीवात्मा। हि यस्मादाराग्रमात्रस्तस्मात् सूक्ष्मबुद्धिभिर्दृष्टोऽनुभूत इत्यर्थः। आराग्रमात्रोपल-क्षिताणुपरिमाणकः। अवधारणोऽयोगव्यवच्छेदार्थकः। अणुपरिमाणक एवेत्यर्थः। इति श्रुत्यर्थस्तु- श्रुत्यन्तसुरद्रुमकारेणोक्तः।

विलक्षण है। याही करकै एक जीववादीको पक्षहू निरस्त भयो परस्पर भिन्न न मानै तो एकके सोये, मूर्छित हुये, मृत्यु भये, सबकी प्रतीतिके अभावको प्रसंग भयो। अरु सबके सुखदुःखको सबको अनुभव प्राप्त भयो सो तो सर्वथा विरुद्ध है, तातें एक जीववाद भ्रांति है। "नित्यनमें नित्य है चेतनोंमें चेतन है बहुतनमें एक है जो सबकी कामना पूर्ण करत है। विश्वके अंतर प्रविष्ट होकर सब जनको आज्ञामें चलावे है" ऐसे श्रुति कहत हैं। "काण्व अरु माध्यंदिन शाखावाले दोनों ऋषि याकों भिन्न कहते हैं।" इति सूत्र यामें प्रमाण है। "हे अर्जुन! मैं पूर्व नहीं था सो नहीं किन्तु होतही भयो, तू न होतभयो सो नहीं किन्तु होतही भयो, ये सर्व राजा न होतभये सो नहीं होते ही भये। मैं अरु तू अरु ये सब नहीं होइगें सो नहीं किन्तु होवेंगेही, इस समें सब विद्यमान हैं तातें तीनों कालमें मेरो अरु तेरो अरु सबको भेद स्वाभाविक है" या करकै कोई औपाधिक

---

१ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्। २ शारीरश्चोभयेऽपिहि भेदेनैनमधीयते ॥१।२।२१॥ न च जीवोऽन्तर्यामी। यतश्चैनमन्तर्यामिणो भेदेन "यो विज्ञाने तिष्ठन्" इति काण्वाः "य आत्मनि तिष्ठन्" इति माध्यन्दिनाश्चोभयेऽप्यधीयते इति सूत्रार्थमाज्ञापयामासुः पारिजातसौरभे श्रीआचार्यचरणाः। ३ नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।

भेद कहत कोई कल्पित भेद कहत हैं तिनको मत निरस्त भयो, श्रीमुखवाक्य करकैं तिनकों भ्रान्ति जानना क्योंकि शास्त्रविरुद्ध है। अरु "या ज्ञानको आश्रय करकै मेरे साधर्म्यकों प्राप्त होतभए सर्गमें उनको जन्म नहीं प्रलयमें तिनको व्यथा नहीं बहुत ज्ञान तप करकै पवित्र हुए मेरे भावकों पावत भये" इत्यादि श्रीमुखकरके मुक्तिमें भेदनिर्णय कह्यो तातें भेद स्वाभाविक है। तहां शंका बहुत जीव हो यामैं विवाद नहीं, तथापि एकएककी साधनसंपत्ति करकैं क्रमसों मुक्ति होनेसे भी किसीकालमें सर्वकी मुक्ति होजावेगी तो भी सृष्टिको अभाव भयो, इति। सो तुच्छ है जातें जीव असंख्यात हैं। सो पराशरजीने कह्यो है "स्थूल अरु सक्ष्म सूक्ष्मतर अरु सूक्ष्मतम स्थूल स्थूलतर प्राणीकरके सब जगत पूर्ण है हे मैत्रयजू! अंगुलिको अष्टम भागमात्र स्थान खाली नहीं कि, जहां कर्मसे बंधे जीव नहीं, ते सब आयुके अंतमें यमके वश

---

१ इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः। सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च। बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः। २ 'अनन्तमाहुः', इसकी व्याख्या। ३ स्थूलैः सूक्ष्मैस्तथा सूक्ष्मसूक्ष्मैः सूक्ष्मतरैस्तथा। स्थूलैः स्थूलतरैश्चैव तत्सर्वं प्राणिभिर्वृतम् ॥ अंगुलस्याष्टमो भागो न सोऽस्ति मुनिसत्तम। न सन्ति प्राणिनो यत्र निजकर्मनिबन्धनाः ॥ सर्वे चैते वशं यान्ति यमस्य भगवन्किल। आयुषोऽन्ते ततो यान्ति यातनास्तत्प्रचोदिताः ॥ यातनाभ्यः परिभ्रष्टा देवाद्यास्वथ योनिषु। जन्तवः परिवर्तन्ते शास्त्राणामेष निर्णयः।

होत हैं तहां यमकी यातनाकों भोगत हैं यातनाके अंतमें देव पशु मनुष्यादि योनिकों पावत हैं। या प्रकार जंतु सर्व संसारचक्रमें भ्रमते हैं शास्त्रोंको यह निर्णय है" इत्यादि। शास्त्र यामें प्रमाण है। इतने पर्यंत त्रिविध जीवात्माको साधारण लक्षण स्वरूप गुण परिमाण संख्या निर्णय करकै कह्यो। अब आगे इनको विशेष कहत हैं। तहां जीवात्मा त्रिविध हैं नित्यमुक्त, बद्धमुक्त, बद्ध। गर्भजन्मजरामरणादि प्रकृतिसंबंध अरु ताको कार्य दुःख सुख तीनकालमें जिनको अनुभव नहीं तथा नित्य श्रीभगवान्‌के दर्शन भजनादिको एकरस अनुभवानंद है ते नित्यमुक्त हैं। ते दो विध हैं आनंतर्य अरु पार्षद। किरीट,मुकुट,कटक, कुंडल,वंशी,वस्त्रादि आनंतर्य हैं, विष्वक्सेन, जय, विजय, गरुडादि पार्षद हैं। अनादिकर्मरूप अविद्याकरकै भये जो प्रकृतिसंबंध अरु ताको कार्य दुःखादिभोगकरकै भगवदनुग्रहसों जे मुक्त भये ते बद्धमुक्त हैं ते दो विध हैं। निरतिशयानंद भगवद्भावापन्न अरु स्वरूपापन्नभेदकरकै। तिनमें भगवद्भावापन्नको भगवत इच्छा अनुसार अपनी इच्छाकरकैं अनंत विग्रहको योग श्रुति कहत है "एक प्रकार होवे

१ 'मुक्तश्च' इत्यादिकी व्याख्या। २ स एकधा भवति द्विधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा भवति सप्तधा भवति नवधा भवति सहस्रधा भवति अपरिमितो भवति।

तीनप्रकार पंचप्रकार सप्तप्रकार नवप्रकार एकादशप्रकार अपरिमितप्रकार मुक्त होते हैं।" इति। अनादिककर्मवासनाका कार्य जो देव, पशु, मनुष्यादि देह तामें आत्माभिमान अरु देहसंबंधीमें आत्मीय अभिमान जिनके दृढ है ते बद्ध कहिये। ते दो विध हैं, मुमुक्षु बुभुक्षु। आध्यात्म्यादि त्रिविध दुःखसों जाकों अलंबुद्धि भई अतः संसारसों छूटनेकी इच्छा हुई सो मुमुक्षु कहिये। ते दो विध हैं भगवद्भावके प्राप्तिकी इच्छावाले, स्वस्वरूपप्राप्तिकी इच्छावाले। विषयानंदकी इच्छावाले बुभुक्षु कहिये। ते दो विध हैं। भावीमुक्त अरु नित्यसंसारी। तहां बद्ध जीवात्मा बंधमोक्षको योग्य है,[1] अनादिकर्मात्मक अविद्यासों अवच्छिन्न देवता, पशु, मनुष्यादिरूप संसारचक्रको अनुभव करते हुये श्रीभगवान्‌की निर्हेतुक कृपासों अनादि वैदिक सत् संप्रदायके आचार्यके शरण हो ताकें मुखतें वर्ष्यो जो शास्त्रसिद्धांतसुधा तासों संशयादिरोगको वहायके भगवत्स्वरूपगुणादिकोंके निरंतर ध्यानतें भयो जो साक्षात्कार ता करकै कर्मबंधनको छेदके भगवद्भावको पावै है। "याको परमेश्वर[2] कृपासों अपनावै सोई ताकों पावै, परमात्माके साक्षात्कारतें

१ शरीरसंयोगवियोगयोग्यमित्यस्य व्याख्या। २. यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।

हृदयग्रंथि खुलत है, सर्वसंशय छेदन होत है या जीवके सब कर्म क्षय होते हैं परमेश्वरको विशेषण देते हैं, पर जे ब्रह्मादि ते जातें निकृष्ट हैं ।” “जा समय द्रष्टा जीव रुक्मवर्ण जगत्कर्त्ता परमपुरुष ब्रह्मा अरु वेदको कारण परमेश्वरको साक्षात्करै है ता समय सो विद्वान् पुण्यपापको निःशेष त्यागकरकै निरंजन होकर परम साम्यको प्राप्त होत है” इत्यादि श्रुतिमें कह्यो है । “मेरे प्रसादतें शाश्वत पदको पावत हैं” यह श्रीमुख गायो है । तहां वादीकी शंका भगवदनुग्रह परिछिन्न है अथवा विभु है ? परिछिन्न तो बनै नहीं क्योंकि जीवानुग्रहकी समान व्यर्थ भयो, विभुहूं बनै नहीं सर्वत्र व्यापक होनेसे सब जीवमें

---

१ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति । अस्यार्थः । यदा यस्मिन्काले, यच्छब्दसामान्यप्रयोग उत्तरायणादिकालनियमव्यावृत्त्यर्थः । पश्य इति परब्रह्मश्रीपुरुषोत्तमसाक्षात्कारार्हश्चरमजन्मा मुमुक्षुः । ईशमिति । चेतनाचेतनभूतविश्वान्तर्यामिणं पश्यते साक्षात्करोति, तदा निरञ्जनः सन् कर्म तन्निमित्तेन त्रिविधेन देहेन्द्रियसूक्ष्मप्रकृतिसम्बन्धात्मकेनाञ्जनेन रहितः संस्तत्साम्यमुपैतीति योजना । निर्विशेषज्ञानान्मोक्षमभ्युपगच्छतां दुराग्रहवतां मुखपिधानार्थं विशेषणानि वितनोति भगवती श्रुतिः । रुक्मवर्णमित्यादि । तत्र रुक्मवर्णमिति विग्रहवत्त्वसूचनार्थकमित्यर्थः । तल्लक्षणमाह । कर्त्तारमिति । जगज्जन्मादिकर्त्तारम् । कर्तृशब्दस्य निमित्तमात्रेऽपि सङ्कोचसम्भवादुपादानं त्वन्यदेव स्यादित्याशंकावारणायाह । ब्रह्मयोनिमिति । ब्रह्मशब्दवाच्यप्रकृतिचतुर्मुखवेदादिरूपस्य योनिमुपादानम् । उपलक्षणञ्चैतत्सर्वस्यापि विश्वस्योपादानमित्यर्थः । पुरुषं परिपूर्णं सर्वान्तरात्मानं वेति । विद्वानिति—शास्त्रोक्ततत्त्वग्रहणकौशलशक्त्याश्रयः । २ मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदव्ययम् ।

समान भयो, सबकों मोक्षप्रसंग भयो इति । सो नहीं भगवदनुग्रह व्यापक है, तथापि श्रवणादि साधनसंपन्न आचार्यभक्तिपरायण जनमें ताको आविर्भाव होत है अन्यत्र नहीं । जैसें न्यायशास्त्रके पक्षमें गोत्वादिजाति व्यापक है, परंतु गलकंबलवाले आकार विशेषमें ताको संबंध है अन्यमें नहीं, अरु जैसें सिद्धांतहूमें ब्रह्म विश्वात्मा सर्वत्र वहिः अंतर व्यापक है। तथापि कोई अधिकारी चरमजन्माकों साक्षात्कार होत है औरको नहीं । तैसें ही दार्ष्टांतमें जानना । ऐसेही भगवानूके सर्व गुण व्यापक और स्वाभाविक मोक्षके कारण हैं । तहां शंका भगवदनुग्रह अन्यसाधनके सापेक्ष है कि स्वतंत्र हैं ? सापेक्ष तो बनै नहीं क्यों कि अनुग्रहको गौणता प्रसंग भयो, स्वतंत्र भी बनै नहीं क्योंकि सबमें प्राप्त भयो इति। सो तुच्छ है ईश्वरानुग्रह स्वतंत्र ही है । तथापि साधनप्रतिपादक शास्त्र अपनी प्रातिज्ञा है ताके बाधमें प्रतिज्ञाकी हानि अनिष्ट है, एसें जो नहीं तो "राम दोवार नहीं कहत है"[1] यह शास्त्रकी बाधा होयगी ताके अर्थ साधनको मिषमात्र ग्रहण करते हैं तातें कोई विरोध नहीं । इससे ही ईश्वरमें विषमता अरु निर्दयताको भी प्रसंग निवृत्त भयो, क्योंकि मिषमात्रके ग्रहणसों वस्तुके शक्तिकी हानि नहीं

१ रामो द्विर्नाभिभाषते ।

होत है "जाको अनुग्रहकरकै अपनावै सो जन परमेश्वरको पावै" यह श्रुति कहत है "मेरे प्रसादतें परमशांति अरु अव्यय स्थान तूं पावैगो" ऐसें श्रीमुख गायेहैं। तातें भगवदनुग्रहसे जीवात्माके स्वरूपको ज्ञान जैसें कह्यो तैसें होत है। यह वेदांतरत्नमंजूषामैं श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजीने अरु सिद्धांतसेतुकामैं श्रीसुंदरभट्टाचार्यस्वामीजीने श्रुति सूत्र मुखकरकै सिद्धांत कीनो है, ताहीकी भाषा लिखी है।

सोरठा।

श्रुति स्मृति अनुसार, जीवतत्त्व निर्णय भयो।
सज्जन करो विचार, मंदनके उपकारकों॥ १॥

इति त्वंपदार्थ जीवात्मको निर्णय।

अथ अचेतनको निरूपण।

अप्राकृतं प्राकृतरूपकञ्च कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्॥
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र॥३॥

सोरठा।

श्रुति स्मरति निर्धार, आचार्य जैसें कह्यो।
कहूं अचेतन न्यार, चित दे संत सुजान सुन॥ १॥

अचेतनको लक्षण कहत है। ज्ञानादि चेतनको जो धर्म ताकरकें जो रहित ताहि अचेतन कहिये। सो अचे-

---

१ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। २ मत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।

तन तीन प्रकार है प्राकृत अरु अप्राकृत अरु काल। तामें सत्त्व रज अरु तम इन तीन गुणको जो आश्रय द्रव्य ताकों प्राकृत कहिये। सो अनादि अरु अनंत परिणामी सत्तावान् है "अजा है[1] एक है लोहितवर्ण राजस है शुक्ल वर्ण सात्त्विक है। अरु कृष्णवर्ण तामस है। बहुप्रकारकी प्रजाको कारण है, प्रकृति अनादि अनंत है भूतनकी जननी है, श्वेत कृष्ण रक्त वर्ण है, भोग मोक्ष दोऊको साधन है" इत्यादि श्रुति यामें प्रमाण है। सत्त्व रज तम तीन ताके गुण हैं। ज्ञानको कारण जो गुण सो सत्त्व है। यह सत्त्वगुण रजतमको तिरस्कारकरकै वृद्धिभयो शमदमादि साधन द्वारा मोक्षहूको साधन है। लोभादि कारण रजोगुण है। प्रमादादिकारण तमो गुण है। "सत्त्वतें ज्ञान होत है, रजतें लोभ होत है, तमतें प्रमाद अरु मोह होत है," यह लक्षण श्रीमुख कह्यो है। इन तीन गुणको आश्रयद्रव्य साम्यावस्था प्राप्त होते संते प्रधानादि शब्दकरकै कहिये है। जीवनके अनादि अदृष्टके अनुसारिणी श्रीपुरुषोत्तमकी इच्छाकरकै विक्षिप्त होये संतें गुणवैषम्यकों भजै है सोई कार्यके व्यक्तिभा-

---

१ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीप्रजासृजमानाम्। गौरनाद्यन्तवती।

२ सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ तमसो भवतः।

यको काल है । "प्रधान और पुरुषकों श्रीहरि अपनी इच्छाकरकै प्रविष्ट होयकै सर्गकालमैं व्यय अरु अव्ययको क्षोभ करावत भये" यह स्मृति प्रमाण है । तहां सृष्टिक्रम कहत हैं । सृष्टिके समय प्रपंचकी विचित्रताको कारण प्राणिनके कर्मकरकै सहकृत अचिंत्यानंतशक्ति भगवान्माधवकी ज्ञान अरु इच्छा अरु प्रयत्नतें प्रकृतिमैं विक्षेप उत्पन्न होत है । "सो सर्वज्ञ है सर्ववेत्ता है, सो ईक्षण करतभयो सो संकल्प करतभयो मैं बहुप्रकार होऊँ" यह श्रुति यामैं प्रमाण है । प्रथम भगवदिच्छातें प्रकृतिमैं गुणवैषम्य भयो, तातें महत्तत्त्व भयो । निश्चयको कारण ता महत्तत्त्वको लक्षण है, सो सात्त्विक राजस तामस तीन प्रकार है । तातें अहंकार भयो । अनात्मामैं आत्माभिमानको कारण ता अहंकारको लक्षण है । सो तीनप्रकार है, सात्त्विक राजस तामस भेदकरकै । ताहिकों वैकारिक तैजस भूतादि कहत है । तिनमैं सात्त्विक अहंकारतें दशोंद्रियके अधिष्ठाता देवता अरु एक मन उत्पन्न होत भयो, मनही वृत्ति अरु स्थानभेदकरकै अंतःकरण चतुष्टय कहिये है । सात्त्विक अहंकारको उपादेय कार्य ता अंतःकरणको लक्षण है । मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चार ताके भेद हैं । तहां मनन-

---

१ प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरिः । क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ । २ यः सर्वज्ञः सर्ववित् । तदैक्षत बहु-स्यां प्रजायेय, सोऽकामयत बहु स्याम् ।

संकल्पादिको कारण मन है, सोई शब्दादिविषयोंके संबंधतें बंधको हेतु है, विषय त्यागकरकें भगवत्संबंधी होय तो मोक्षको हेतु है। "[1] मनही मनुष्यनके बन्धमोक्षको कारण है, विषयासक्त बंधको कारण, विषयरहित मोक्षको कारण। मन दो विध हैं, शुद्ध अरु अशुद्ध। कामसंकल्प कर्त्ता अशुद्ध है, कामवर्जित मन शुद्ध है" इति शास्त्र प्रमाण हैं। बोधनको हेतु बुद्धि है। देहादिमें आत्माभिमानको हेतु अहंकार है। चिंतवनको हेतु चित्त है। तिनके चंद्र ब्रह्मा रुद्र क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता देवताहैं। "[2]मन अध्यात्म मनन अधिभूत चंद्र देवता। बुद्धि अध्यात्म बोध अधिभूत ब्रह्मा अधिदेव। अहंकार अध्यात्म अभिमान अधिभूत रुद्र अधिदेव। चित्त अध्यात्म चिंतवन अधिभूत क्षेत्रज्ञ वासुदेव अधिदेव" यह सुबालोपनिषदमें कह्यो है। काहू शास्त्रमें वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध देवता कहेहैं। तहां वासुदेवादि उपास्य हैं, चंद्रादि तिनके अभिमानी हैं, यातें विरोध नहीं।

---

१ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः बन्धाय विषयासक्तं मुक्तं निर्विषयं स्मृतम्। मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धश्चाशुद्धमेव च। अशुद्धं कामसङ्कल्पं शुद्धं कामविवर्जितम्। २ मनोऽध्यात्मं मन्तव्यमधिभूतं चन्द्रस्तत्राधिदैवतम्। बुद्धिरध्यात्मं बोधयितव्यमधिभूतं ब्रह्मा तत्राधिदैवतम्। अहङ्कारोऽध्यात्ममहङ्कर्तव्यमभिमतं रुद्रस्तत्राधिदैवतम्। चित्तमध्यात्मं चेतव्यमधिभूतं क्षेत्रज्ञस्तत्राधिदैवतम्।

मन[1]को स्थान गलांतर है, बुद्धिको मुख है, अहंकारको स्थान हृदय है, चित्तको स्थान नाभि है, यह शारीरक उपनिषदमें इनके स्थान कहे हैं। अथ राजस अहंकारतें बाह्येंद्रिय दश उत्पन्न होतहैं। तामैं ज्ञानइंद्रिय पांच है, शब्दादिज्ञानको कारण सो ज्ञानइंद्रिय कहतहैं, श्रोत्र त्वक् चक्षु रसन घ्राण ये पांचहै। शब्दको ग्राहक श्रोत्र इंद्रिय हैं, मनुष्यनकी कर्ण शकुलीमैं रहतहै, सर्पनके नेत्रमें रहत है। रूपको ग्राहक चक्षुइंद्रिय है, नेत्रमैं रहतहै। स्पर्शको ग्राहक त्वक् इंद्रिय है, सब शरीरमैं रहतहै। नखदंतादिमैं प्राण मंद है तातें स्पर्शको ग्रहण नहीं। रसको ग्राहक रसन इंद्रियहै, जिह्वाके अग्रमें रहतहैं। गंधमात्रका ग्राहक घ्राण इंद्रिय है, नासाग्रमें रहतहै। दिशा वात सूर्य वरुण अश्विनी कुमार इनके देवता हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पंच इनके विषय हैं "चक्षु[2] अध्यात्म रूप अधिभूत आदित्य अधिदैव। श्रोत्र[3] अध्यात्म शब्द अधिभूत दिशा अधिदैव। नासा[4] अध्यात्म गंध अधिभूत अश्विनीकुमार अधिदैव। जिह्वा[5] अध्यात्म रस अधिभूत वरुण अधिदैव।

---

१ मनसः स्थानं गलान्तरम्। बुद्धेर्वदनम्, अहङ्कारस्य हृदयम्, चित्तस्य नाभिः। २ चक्षुरध्यात्मं द्रष्टव्यमधिभूतमादित्यस्तत्राधिदैवतम्। ३ श्रोत्रमध्यात्मं श्रोतव्यमधिभूतं दिशस्तत्राधिदैवतम्। ४ नासाध्यात्मं घ्रातव्यमधिभूतं पृथ्वी तत्राधिदैवतम्। ५ जिह्वाध्यात्मं रसयितव्यमधिभूतं वरुणस्तत्राधिदैवतम्।

त्वचा अध्यात्म[1] स्पर्श अधिभूत वायु अधिदैव" यह श्रुति प्रमाण है। पंचेंद्रियभूतनकरके पोषियत हैं तातें इनको भौतिकहूं उपचारकरके कहतहैं। वचन आदान धारण विसर्गादिकको असाधारण करण कर्मेंद्रिय कहतहैं। वाक् पाणि चरण पायु उपस्थ पंच हैं। वर्णोच्चारणको कारण वाक् इंद्रियको लक्षण है, कंठादि अष्ट स्थानमें रहतहै, "उर कंठ शिर[2] जिह्वामूल दंत नासिका ओष्ठ तालू ए अष्ट स्थान हैं" यह वेदभाष्यमें कह्योहै। पश्वादिकों ताको संस्कार नहीं तातें वर्णोच्चारण नहीं हैं। शिल्पादिको कारण इंद्रिय पाणि है, मनुष्यनके हस्तके अग्रमें रहतहै। हस्तीके नासाग्रमें रहतहै। विहरणक्रियाको कारण इंद्रिय पाद है, चरण अंगुलीके अग्रमें रहतहै, सर्पनके उरमें रहतहै, पक्षिनके पक्षमें रहत है। मलादित्यागको कारण इंद्रिय पायु है, मूलद्वारमें रहतहै। आनंदविशेषको कारण इंद्रिय उपस्थ है लिंगके अग्रमें रहतहै। अग्नि इंद्र विष्णु मृत्यु प्रजापति तिनके अधिष्ठाता देवता हैं। वचन ग्रहण चलन उत्सर्ग आनंद तिनके पंच कर्म हैं। "वाग अध्यात्म[3] वचन आधिभूत अग्नि आधिदैव। हस्त अध्यात्म आदान अधिभूत इंद्र आधिदैव। पाद अध्यात्म

---

१ त्वगध्यात्मं स्पर्शयितव्यमधिभूतं वायुस्तत्राधिदैवतम्। २ अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा। जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च। ३ वागध्यात्मं वक्तव्यमधिभूतमग्निस्तत्राधिदैवतम्। ४ हस्तावध्यात्ममादातव्यमधिभूतमिन्द्रस्तत्राधिदैवतम्।

गमन अधिभूत विष्णु अधिदैव। पायु अध्यात्म मलविसर्जन अधिभूत मृत्यु अधिदैव। उपस्थ अध्यात्म आनंद अधिभूत प्रजापति अधिदैव "। यह सुबालोपनिषदमें कह्योहै। सब इंद्रिये अणुपरिमाण हैं। देह देहमें भिन्न अरु प्रलयपर्यंत रहतहैं। अथ तामस अहंकारतें शब्दादिक पंच तन्मात्रा अरु आकाशादि पंचमहाभूतनकी उत्पत्तिहै। तहां तामस अहंकारतें प्रथम शब्दतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रातें आकाश, आकाशतें स्पर्शतन्मात्रा, तातें वायु, वायुतें रूपतन्मात्रा, तातें तेज, तेजतें रस तन्मात्रा, तातें जल, जलतें गंधतन्मात्रा, गंधतन्मात्रातें पृथिवी। तामसाहंकार अरु भूतनकी मध्यावस्था सो तन्मात्रा द्रव्य है। जैसें दूधदहीको मध्यपरिणाम कललादि, स्थूल अवस्थामें ताकों महाभूत कहतहैं। यह उत्पत्तिको क्रम विष्णुपुराणमें पराशरजीनें कह्यो है। शब्द स्पर्श रूप रस गंध तिनके गुण है। तहां पृथिवीके पांच गुण हैं। जलके शब्द स्पर्श रूप रस ये चार गुण हैं। तेजके शब्द स्पर्श रूप ये तीन गुण हैं। वायुके शब्द स्पर्श ये दोय

---

१ पादावध्यात्मं गन्तव्यमधिभूतं विष्णुस्तत्राधिदैवतम्। २ पायुरध्यात्मं विसर्गयितव्यमधिभूतं मृत्युस्तत्राधिदैवतम्। ३ उपस्थोऽध्यात्ममानन्दयितव्यमधिभूतं प्रजापतिस्तत्राधिदैवतम्। ४ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पृथ्व्या गुणाः। ५ तेषु गंधहीनाश्चत्वारोऽपां गुणाः। ६ तेषु गन्धरसहीनास्त्रयो गुणा अग्नेः। ७ शब्दस्पर्शाविति वायोः।

गुण हैं। आकाशको[1] एक शब्द गुण है। यह लौकिककोपनिषदमें कह्योहै; तैसेहीं विष्णुपुराणमें कह्योहै। यद्यपि शब्दादिक तन्मात्रा अरु गुणनको एक नाम है, तथापि तन्मात्रा भूतनकी सूक्ष्म अवस्था है, अरु गुण तिनतें भिन्न हैं, यह भेद जानना। याहिकरकैं भूतनको लक्षणहू कह्यो, शब्दगुणको आश्रय आकाशहै। शब्दस्पर्शको आश्रय रूपादिहीन वायुहै। शब्दस्पर्श रूपगुणको आश्रय, रस गंध शून्य तेज है। रस असाधारण जाको गुण गंधशून्य जल है। गंध असाधारणको आश्रय पृथिवी है। प्राण न्यारो तत्त्व नहीं क्यों कि, वायुके अंतर्भूत है। शरीरधारणको कारण वायु प्राण है। सो पांचविध है, प्राण अपान व्यान उदान समान। जो उपरकूं चलै सो प्राण[2] है। जो अधोगति सो अपान[3] है। "जो सर्वनाडीमें व्यापै[4] सो व्यान है। जो खाये पीये अन्न जलकों उद्गार करै[5] सो उदान है। जो स्थूल अन्नकों पचायकैं सूक्ष्मरस[6] अंगनमें लैजाय सो समान है"। यह लक्षण मैत्रेयोपनिषद श्रुतिमें कह्यो है। प्राणवायुको स्थान कंठ है। अपानको स्थान

---

१ शब्द एक आकाशस्य । २ अथ योऽयमूर्ध्वमुत्क्रामत्येष वा व स प्राणः। ३ अथ योऽयमवागुत्क्रामत्येष वा व सोऽपानः । ४ येनैताः शिरा अनुव्याप्ता एष वा व स व्यानः । ५ अथ योऽयं पीतमशितमुद्गिरत्येष वा व स उदानः । ६ अथ योऽयं स्थविष्ठमन्नं पातयितुमपाने स्थापयति, अण्विष्ठं चाङ्गे समानयति एष वा व स समानः ।

पायु है । सर्वशरीर व्यानको स्थान है । कंठ उदानको स्थान है । समानको नाभि स्थान है । कोई कहत है नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय ये पंच प्राण और हैं । नाग उद्गिरण करत है । कूर्म उन्मीलन करत है । कृकल क्षुधा करत है । देवदत्त जृंभण करत है । धनंजय पोषण करत है इति । तिनको प्राणादिकमें अंतर्भाव है, न्यारे मानेतें गौरव होत है । ऐसे प्रकृति, महद, अहंकार मन, दश इंद्रियें, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत ये चौवीस तत्त्व प्राकृत हैं । कोई भूतनतें भूतनकी उत्पत्ति कहत हैं । कोई अहंकारतें पंचतन्मात्रा, तिनतें महाभूतनकी उत्पत्ति कहत हैं, सो विचारणे योग्य है क्योंकि प्रलयके क्रमतें विरोध पडता है । श्रुतिविरोध गुणोपसंहारन्यायकरकै मिटावणो एकश्रुतिके कहेमें दूसरी श्रुतिकी अधिकसंख्याको ग्रहण गुणोपसंहार न्यायको अर्थ है । तातें विरोध नहीं, कह्यो सिद्धांत ही श्रेष्ठ है क्योंकि श्रुतिस्मृति करकै युक्त है ।"श्रीनारायण ब्रह्मा प्रति कहत भयो, पूर्व एकही अद्वितीय ब्रह्म होतभयो, तातें अव्यक्तभयो, अव्यक्तही अक्षर है। तातें महत्तत्त्व भयो, तातें अहंकार भयो, अहंकारतें पंचतन्मात्रा, तिनतें महाभूत"[१]

---

१ स होवाच तं हि वै पूर्व ह्येकमेवाद्वितीयं ब्रह्मासीत्, तस्मादव्यक्तमेवाक्षरं तस्मादक्षरान्महत्तत्त्वं, महतो वै अहङ्कारस्तस्मादेवाहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि, तेभ्यो भूतानि।

यह गोपालोपनिषदमें कह्यो है। तैसैं ही विष्णुपुराणमें कह्यो है। प्रकृति महदहंकारते पंच महाभूत ये स्थूलशरीरके उपादान कारण हैं। इंद्रियें भूषणमें रत्नकी नाँई शरीरमें जडी हैं। पंचतन्मात्रा मन दशेंद्रिय प्राण ये सूक्ष्मशरीरके उपादान कारण हैं। तिनमें प्राण स्पर्शतन्मात्राको एककरकै श्रुतिमें षोडशकलाकी संख्या कहत है। "ये षोडशकला पुरुषको अयन हैं। पुरुषके साक्षात्कारकरकै अस्त होत हैं।" चेतनको अवश्य आधेय, चेतनके भोगको ग्रह, चेतनके आश्रयतें भिन्न जाकी सिद्धि नहीं, चेतनके सदा अधीन, ये शरीरके लक्षण हैं। सो शरीर दो प्रकार है, नित्य अरु अनित्य। तामें सब मंगलको आश्रय योगीके ध्यानको विषय ध्याताको सर्व पुरुषार्थप्रद श्रीलक्ष्मीकांतको विग्रह अरु नित्यमुक्त विष्वक्सेनादिको विग्रह ये नित्य हैं। अरु गरुडादिको आकारहू

---

१ प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरिः । क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ । स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च परमेश्वरः। स सङ्कोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि संस्थितः ॥ गुणसाम्यात्ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ! । गुणव्यञ्जनसम्भूतः सर्गकाले द्विजोत्तम ! ॥ सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् । प्रधानतत्त्वेन समं त्वचा बीजमिवावृतम् ॥ वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः । त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायतेत्यादयो विष्णुपुराणोक्ताः श्लोकाः प्रमाणत्वेनानुसन्धेयाः । २ इमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ।

नित्यसिद्ध स्वाभाविकहै। सो अप्राकृतके प्रकरणमें कहैंगे। अनित्यहू दो विधहै।अकर्मजन्य अरु कर्मजन्य। अकर्मजन्य परमेश्वरको विराट् शरीर अरु गरुडादिरूप गरुडादिकको अरु मुक्तनको ईश्वरेच्छाकरकै अपनी इच्छासों लीलार्थ जो अनेकाकार । कर्मजन्य कर्मके तारतम्यकरकै अनेक विधहै। तामें वृक्षादि स्थावरहैं, देव पशु मनुष्यादि जंगम हैं। अरु जरायुज स्वेदज अंडज उद्भिजादि अनेक भेदहैं। महत्तत्त्वतें आदिलेकै शरीरपर्यंत सब अवस्थामें प्रकृतिसों अभिन्न है, जातें ताको कार्य है, जैसें मृत्पिंडतें भयो जो मृन्मय घट सो तिसतिस अवस्थामें मृन्मयही है, तैसें अवस्थांतरको भजनकरकै नाम संख्याको भेद होत है किन्तु कार्यकारणको अभेद है, क्योंकि कारणद्रव्यही अवस्थांतरको प्राप्त होतेसतें सद्रूप कार्य होत है। "हे सोम्य! आगे यह जगत् सत्ही होतभयो"यह श्रुति[1] प्रमाण है । कार्यको असत् कहै तो उत्पत्ति बनै, नहीं, आकाशके पुष्पकी उत्पत्ति देखी सुनी नहीं, "असत्को[2] भाव नहीं"। "असत्को[3] संभव कैसें बनै" यह स्मृतिमें कह्यो है । तातें सत्यही कार्य उत्पन्न होत है, अरु कारणात्मक है यही सिद्धांत है। प्रकृतिको कार्य जीवनके भोग्य अरु भोगको उपकरण अरु भोगस्थानरूप अनेक

---

१ सदेव सौम्येदमग्र आसीदिति सत्कार्यवादिनी श्रुतिः । २ नासतो विद्यते भावः । ३ असतः सम्भवः कुतः ।

विध है। तामें शब्दादि पांच विषय अरु अन्न वस्त्र अलंकारादि भोग्य हैं। शरीरेंद्रिय मनबुद्ध्यादि भोगके उपकरण हैं। ब्रह्मांडमें चतुर्दश लोक भोगके स्थान हैं। सोई प्रकृत्यादि परमेश्वरकी क्रीडाके उपकरण हैं, अरु भोग अनुकरणके स्थान है। चतुर्दशलोक जाके मध्य हैं ऐसा कैथफलके आकार महाभूतको कार्य प्राकृतद्रव्य ब्रह्माण्ड मुमुक्षुको हेय है। "भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक महर्लोक जनलोक तपोलोक सत्यलोक अरु अतल पाताल वितल सुतल तलातल रसातल महातल सहित ब्रह्मांडको संन्यासी त्याग करै" यह संन्यास श्रुतिमें कह्यो है। तैसें विष्णुपुराणमें पराशरजीनें कह्योहैं। सो कहतहैं, पद्मके आकार पंचाशत् कोटि योजन भूलोक है। तामें लक्षयोजन जंबू द्वीप है। तामें कर्णिकाके स्थानमें सुमेरु पर्वत है। सो नवखण्डकरके घिरयोहै। ताके दक्षिणभागमें भारतादि तीन खंडहैं। उत्तरभागमें रम्यकादि तीन खंडहै। पूर्वभागमें भद्राश्वहै। पश्चिमभागमें केतुमालहै मध्यमें इलावृत खंडहै। ऐसें नवखडसहित लक्षयोजन विस्तारको जंबूद्वीपहै। वाके चहूं ओर चूडाको आकार लक्षयोजनको क्षारसमुद्र है।[१] तातें दुगुणो सप्तखंडको

---

१ भूर्लोकभुवर्लोकस्वर्लोकमहर्लोकजनलोकतपोलोकसत्यलोकं चातलपातालवितलसुतलतलातलरसातलमहातलं ब्रह्माण्डञ्च विसर्जयेदिति संन्यासप्रकरणपठितारण्यश्रुतिः।

दो लक्षयोजनको प्लक्षद्वीपहै । अपने तुल्य इक्षुरसके समुद्रसों घिरयोहै । २ । तातें दुगुनो सप्तखंडको शाल्मलिद्वीपहै। सो अपनें समान सुराके समुद्रकरकै घिरयोहै । । ३ । तातें दूणो सप्तखंडको कुशद्वीपहै सो अपने समान घृतसमुद्रकरकैं घिरयोहै । ४ । तातें दूणो सप्तखंडको क्रौंच द्वीपहै सो अपनैं समान दधिमंड समुद्रसों घिरयो है । ५ । तातैं दूणो सप्तखंडको शाकद्वीपहै। सो अपनें समान क्षीरसागरसों घिरयोहै । ६। तातें दूणो दो खंडको पुष्करद्वीपहै । सो अपनें समान मधुर जल समुद्रकरकै घिरयोहै। ७। समुद्र सहित सप्तद्वीप पृथिवीतें दूणी कांचनभूमिहै सो लोकालोक पर्वतसों घिरीहै। सो पर्वत तमसों घिरयोहै। सो तम गर्भोदकसों घिरयोहै । सो जल अंडकटाहसों घिरयोहै । यह दक्षिण उत्तर पूर्व पश्चिमकी रचनाहै । ताके नीचें अतल आदिक सप्त पातालहैं । ताके नीचैं रौरवादि इक्कीस नरक हैं पापीनके पापफलभोगको स्थानहै । तातें परै अंधकारहै । तातें परै गर्भोदकहै । तातें परै अंडकटाहहै । यह नीचेकी रचनाहै। पादइंद्रियकी गतितक भूलोकहै । ताकै ऊपर लक्षयोजन सूर्यमंडलहै। भूमिसूर्यके मध्यदेश अंतरिक्ष भवर्लोकहै। सो सिद्धनको वासाहै। ताके ऊपर चंद्रमंडल, ऊपर नक्षत्रमंडल, ता ऊपर बुध, ता ऊपर शुक्र, ता

ऊपर मंगल, ता ऊपर बृहस्पति, ता ऊपर शनीचर, ता ऊपर सप्तऋषि, ता ऊपर ध्रुव ज्योतिश्चक्रकी मेढी है । सूर्यतें ध्रुवपर्यंत चौदह लक्ष योजन देश स्वर्गलोक है । तातें ऊपर कोटि योजन ऊंचो महर्लोकहै । ता ऊपर दो कोटि योजन ऊंचो जनलोकहै । ता ऊपर चतुर्गुण ऊंचो तपोलोकहै । तातें ऊपर द्वादश कोटि योजन ऊंचो सत्यलोकहै । तातें ऊपर अंधकारहै । ता ऊपर गर्भोदकहै । ता ऊपर कोटियोजन ऊंचो अंडकटाहहै । यह एक ब्रह्मांडकी रचना कही । सो दशगुण जलसों घिरयोहै, जलतें दशगुण तेजको आवरणहै । तेजतें दशगुण वायुको आवरण, वायुतें दशगुण आकाशको आवरण, आकाशतें दशगुण अहंकारको आवरण, अहंकारतें दशगुण महत्तत्त्वको आवरण ता ऊपर प्रधानको आवरण, ताकी संख्या नहीं । या प्रकारके अनन्तकोटि ब्रह्मांड परमेश्वरकी विभूतिरूपी प्रकृतिमें सावकाश भ्रमतहैं, समुद्रमें जैसें बुलबुला । यातें प्रकृतिको अंत अरु संख्या नहीं । तामें महदादि चतुर्मुखपर्यंत सृष्टि साक्षात्परमेश्वरकी करीहै, ताके उत्तरकी सृष्टि ब्रह्मादि परंपराकरकें करीहै । महदादि पृथिवीपर्यंत समष्टिहै, जैसें सेना, वन, राशि कहतेहैं । तामें एकएक देशको व्यवहार हमारी बुद्धि, इंद्रिय शरीरादि व्यष्टिहै, जैसे वृक्ष धान्यादि व्य-

वहार। अथ पंचीकरण प्रक्रिया। श्रीभगवान् पुरुषोत्तम[1] पृथिव्यादिक पंचमहाभूत सृजके एक एकके दो दो भाग करकैं दो मध्य एक भाग न्यारो राखके दूसरे भागको चार भाग करकैं एक एक भाग चारमैं मिलावत हैं, पांचनमैं अपनो अर्द्धभागहै। चारोंको अष्टम अष्टम भागहै, एक एकमें मिलायो अपने भागकी अधिकतातें पृथिव्यादि व्यवहार न्यारो न्यारो पांचको होतहै। सिद्धांत विषयमें पांचभूतनमैं परस्पर पांचों मिलेहैं "मैं त्रिवत त्रिवृत करुं" यह[2] त्रिवृतकरण[3] श्रुति पंचीकरणको उपलक्षणहै। जाते पंचीकृत पंचभूतहै, तातें पांचनमैं शब्दादिक पंचगुणको ज्ञान यथार्थहै, विरुद्ध नहीं। आकाशमें नीलादिकी प्रतीति भ्रांतिहै, ऐसें जो कहै सोई भ्रांत जानना "मह[4]दादि शरीरपर्यंतके मध्य स्थूलशरीर अन्नको विकारहै, तातें अन्नमय पुरुषहै। मनही कर्म इन्द्रियसहित मनोमय पुरुषहै। प्राणादि पंच कर्म इंद्रिय सहित प्राणमय पुरुषहै। विज्ञानमय पुरुष जीवात्माहै। आनन्दमय पुरुष परमात्मा परब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम है।" यह तैत्तिरीयोप-

---

१ विभज्य द्विधा पंचभूतानि देवस्तदर्धानि पश्चात् विभागानि कृत्वा तदन्येषु मुख्येषु भागेषु तच्चन्नियुञ्जन् स पंचीकृतं पश्यति स्मेत्युक्तं शास्त्रे। २ तथा च स्वभागस्य भूयस्त्वेनान्यभागानामल्पत्वेन पृथिव्यादिपृथग्व्यवहारोऽपि समञ्जसः। ३ त्रिवृतं त्रिवृतं करवाणि। ४ स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः, तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तरात्माऽऽनन्दमयस्तेनैष पूर्णः।

निषदमें कह्योहै। सोई आनंदमयाधिकरणसें श्रीश्रीनिवासाचार्यजीनें विस्तारसे भाष्योहै । सृष्टिक्रमतें विपर्ययक्रम प्रलयको है । कारणनाश क्रमकरकै प्रलय बनें नहीं, जातें कारणविना कार्यकी स्थिति नहीं बनै। सोई क्रम सुबालोपनिषदमें कह्यो है। पृथिवी गंधतन्मात्राद्वारकरकै जलमैं लय होतहै, जल रसतन्मात्राद्वारकरकै तेजमें लय होतहै, तेज रूपतन्मात्राद्वारकरकै वायुमें लय होतहै, वायु स्पर्शतन्मात्राद्वारकरकै आकाशमैं लय होत है, आकाश शब्दतान्मात्राद्वारकरकै तामस अहंकारमैं लय होतहै, इंद्रियदश राजस अहंकारमैं लय होतहैं, मन अरु इंद्रियोंके देवता सात्त्विक अहंकारमैं लय होतहैं, तीनप्रकारको अहंकार महत्तत्त्वमें लय होतहै, महत्तत्त्व अव्यक्तमैं, अव्यक्त पुरुषमें, पुरुष परब्रह्म श्रीवासुदेव पुरुषोत्तममें लय होतहै, याही प्रकार श्रीपराशरजीनें मैत्रेयसों कह्योहै । सोई श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजीनैं वेदांतरत्नमंजूषामैं कह्योहै । अथ कालनिरूपण । प्राकृत अप्राकृततें भिन्न अचेतन द्रव्य काल है, सो नित्य अरु विभुहै । "प्रकृति पुरुष काल ये तीनों नित्यहैं" यह श्रुति प्रमाणहै । "हे सौम्य ! अग्रे सत्‌ही होत भयो" या श्रुतिमें

---

१ प्रथमाध्यायस्य प्रथमपादे "आनन्दमयोऽभ्यासात्" इत्यारभ्य "अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति" इत्यन्तम् । २ अथ ह वा नित्यानि प्रकृतिः पुरुषः कालः । ३ सदेव सौम्येदमग्र आसीत् ।

सृष्टिसों पूर्व अग्रशब्दकरक कालको कह्योहै । "हे मैत्रेय! काल अनादि है ताको अंत नहीं" यह विष्णुपुराणमें कह्योहै । "जामें कालकी प्रतीति नहीं सो व्यवहार कोऊ नहीं" इत्यादि वचन प्रमाणहै। सो काल, भूत भविष्यत् वर्त्तमान बहुकाल तुरत एकबेर बारबार इत्यादि प्रतीतिको कारणहै, अरु जगत्की सृष्टि प्रलयादि स्मृतिको निमित्तकारण है, अरु परमाण्वादि परार्द्ध पर्यंत संख्याको असाधारण कारणहै । तहां जितने कालमें परमाणुमात्र देशको सूर्य उल्लंघन करै ता कालको परमाणु कहतहैं, दो परमाणुको द्व्यणुक, तीन द्व्यणुको त्रसरेणु, तीन त्रसरेणुको त्रुटिः, त्रुटिशत वेध, तीन वेधको लव तीन लवको निमेष, पंचदशनिमेषकी काष्ठा, तीस काष्ठाकी कला, तीस कलाको मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्तको मनुष्यको रात्रदिन, पंचदश रात्रदिनको पक्ष, दो पक्षको मास, दोमासको ऋतु, षट्मासको अयन, दो अयनको संवत्सर, तामें दक्षिणायन देवतनकी रात्रि, उत्तरायण देवनको दिन, द्वादश सहस्र वर्ष कृतादि चारों युगकी संख्या, तामें चार सहस्र वर्ष कृतयुगकी संख्या, अष्टशत संध्या । तीन सहस्र वर्ष त्रेतायुगकी संख्या, षट्शत संध्या। दो सहस्र वर्ष द्वापरयुगकी संख्या, चार शत

१ अनादिर्भगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते । २ न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते ।

संध्या। एक सहस्र वर्ष कलियुगकी संख्या, दो शत संध्या। सहस्र चौकडी युगपरिमाण ब्रह्माके एक दिनकी संख्या, ताही परिमाण रात्रि। ब्रह्माके एक दिनमैं चतुर्दश मन्वंतरको भोग। ताही परिमाण सप्तऋषि अरु इंद्रादिकी भोग संख्या, एक अरु सत्तर चौकडी युग कछुक अधिक एक मन्वंतरकी कालसंख्या। तातें चतुर्दश गुण ब्रह्माको दिन, ताही परिमाण रात्रि। या विध दिनरात्रि गणनां करकै शतवर्ष परिमाण ब्रह्माकी आयुकी भोग संख्या, ताहिको दो परार्द्ध कहतहैं। तामें एक परार्द्ध बीत्यौ, दूसरे परार्द्धको यह प्रथम कल्पहै। वाराहकल्प याको नामहै। सब प्राकृत वस्तु कालके अधीनहै, काल सर्वको नियामकहै, परन्तु ईश्वरको नियम्यहै, "ज्ञाताहै कालको कालहै"[1] यह श्रुति प्रमाणहै। लीलाविभूतिमैं ईश्वरकों कालाधीन होनों अनुकरणमात्रहैं, नित्यविभूतिमैं तो ताके प्रभावकी शंकाहू नहीं। "कला मुहूर्त्तादिमय काल परमेश्वरकी विभूतिके परिणामको कारण नहीं"[2] यह विष्णुपुराणमैं कह्योहै। यद्यपि काल स्वरूपकरकै अखंड अरु नित्यहै, तथापि कार्यरूपकरकै अनित्यहू है, सो कार्य औपाधिकहै, उपाधि ताकी सूर्यकी

---

१ ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः। २ कलामूहूर्त्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः।

भ्रमणरूपा क्रियाहै। इति कालनिर्णय। अथ अप्राकृत-निरूपण। त्रिगण प्रधान अरु कालतें अत्यन्त विलक्षण प्रकाशरूप अनावरक स्वभाव अचेतन अप्राकृतको लक्षणहै। "आदित्यवर्णं तमतें परे"[1] यह श्रुति प्रमाण है। श्रुतिमें कह्यो तम ताको अर्थ प्रधान अरु काल तातें परें अरु आदित्यवर्णको अर्थ आनावरक स्वभाव प्रकाशरूप, यह श्रुतिको अर्थहै। कोई कहतहैं त्रिगुण प्रकृतिसों भिन्न शुद्ध मायाको कार्य अप्राकृतहै, सो मत यह श्रुतिकरकै निरस्त भयो। तहां प्रकृतिमंडलतें भिन्न नित्यविभूति अपरिच्छिन्न है। प्राकृतदेशवर्त्ती अवतार विभूति परिच्छिन्न तुल्य दीसत है, किन्तु अपरिच्छिन्नहै। सो एकादश अध्यायमें श्रीभगवान्ने कह्यो अरु अर्जुनकों दिखायो है। "आनन्दलोक नित्य विभूति परमात्मलोक परमव्योम[2]। विष्णुपद परमपद" ताहीके नाम श्रुतिस्मृतिमें कहतहैं। सो भगवान्के अनादि संकल्पतें श्रीहरिके अरु नित्यमुक्त परिकरके भोग्यादिरूपकरक अनेक प्रकारहै। तामें भोग्य भगवद्विग्रहादि, भोगोपकरण भूषण, आयुध, पान, आसन, अलंकार, कुसुम, पत्र, फलादि। स्थान गोपुर, चौक, महल, मणिमंडप, वन

---

१ आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। २ योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् तिष्ठति तद्विष्णोः परमं पदम्, एते वै निरयास्तात लोकस्य परमात्मनः।

उपवन, सरोवरादि हैं। तामें परमेश्वरको अरु नित्यमुक्तनके विग्रह, भगवान्‌के आनादि अनन्त इच्छासिद्ध स्वाभाविक आत्मस्वरूपकी तुल्यहै। बद्धमुक्तनको विग्रहें, भगवत्प्रसादतें जिनको बंधन छुटयो तिनकों नित्य सिद्ध विग्रहकी प्राप्तिमात्र है, जन्यत्व नहीं, क्योंकि परिणामादिविकाररहित हैं। जैसें उत्सवमें बने बनाये वस्त्र अलंकारादि राजाकी कृपातें राजसेवक पावतहैं, तैसें प्रकृतिबन्धनके निवृत्ति समयमें पूर्वसिद्ध नित्य निर्विकार निजसेवाके उपकरण श्रीभगवान् मुक्तनकों देतहैं। श्रीभगवान्‌को नित्यमंगल विग्रह[1] स्वरूपकी तुल्य अनन्त कल्याणगुणसागर है। अत्यन्त सौंदर्य मार्दव लावण्य सौगन्ध्य सुकुमारतादि विग्रहके गुण हैं "सर्वगन्ध सर्वरस नखशिख पर्यंत प्रकाश[2]रूप है" इति श्रुति प्रमाण है। भगवान् श्री वासुदेव सर्वदर्शन स्पर्शन श्रवण गमनादि शक्तिमान् हैं। तामें भिन्न इंद्रियोंकी कल्पना योग्य नहीं। "कर विना

---

१ यहां विग्रहको स्वरूपकी तुल्य कहनेसे विग्रह और विग्रहवान्‌का भेद सिद्ध हुआ, श्रुत्यन्तसुरद्रुममें भी त्रयोदशशाखामें "यदात्मको भगवाँस्तदात्मिका व्यक्तिः" यहां भगवान् शब्दमें "मतुप्प्रयोगाच्च रूपाभिन्नविग्रहवादिनोऽपि निरस्ताः" ऐसा स्पष्ट कहाहै, तथापि, कोई कोई दुराग्रही सिद्धान्तानभिज्ञ पंडितंमन्य विग्रह और स्वरूपका भेद नहीं मानतेहैं, सो उपेक्षणीयहै।

२ सर्वगन्धः सर्वरसः आप्रणखात्सुवर्णः।

ग्रहणकरतहै, पाद विना धावतह, चक्षु विना देखतहै, कर्ण विना सुनतहै, इंद्रियातीत सर्वत्र देखत है, सब सुनतहै, सर्वत्र गमन करतहै, सब ग्रहण करतहै" इत्यादि श्रुति प्रमाण है। मुक्तनहूको ऐसेंही व्यवहार जानना; जातें ताके समानें श्रुति कहत है। भगवल्लोक कालातीत वस्तुहै, यातें तहां कालको प्रभाव नहीं। "कला मुहूर्त्तादिमय काल याकी विभूतिके परिणामको कारण नहीं" यह विष्णुपुराणके चतुर्थ अंशमें ब्रह्मानें कह्योहै।

इति त्रिविध अचेतन निरूपण।

दोहा—श्रुतिस्मृति परमाणसों, संप्रदाय अनुसार॥
कह्यो अचेतन तीन विध, सज्जन करो विचार॥

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्॥
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परंवरेण्यंध्यायेमकृष्णंकमलेक्षणंहरिम्॥४॥

दोहा—परमतत्त्व श्रीकृष्णहै, वेद रटत नित जाहि॥
परब्रह्म जाकों कहत, वर्णतहूं अब ताहि॥
सूत्रकार जैसें कह्यो, आचारज ज्यों भाष॥
सोई तत्त्व निर्णय करौं, श्रुतिस्मृति है साष॥

---

१ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। यस्मादतीन्द्रियोऽपि सर्वतः पश्यति सर्वतः शृणोति सर्वतो गच्छति सर्वत आदत्ते। २ निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति, मम साधर्म्यमागताः। ३ कलामुहूर्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः।

अथ परमात्मतत्त्वनिरूपण।

प्रथम जिज्ञासासूत्रको अर्थ कहतहैं। हम ब्रह्मको ध्यान करतहैं, तहां ब्रह्मपदके अर्थ बहुत हैं, चतुर्मुख वेद ब्राह्मणादि, तामें अतिप्रसंग वारण करतहैं-परब्रह्म, पदको अर्थ कहतहैं। श्रीकृष्ण ब्रह्मशब्दको अर्थहै, क्षर अक्षरतें परे सो पुरुषोत्तम परब्रह्म है सो भगवान् श्रीकृष्णही है यह श्रीमुख गायोहै "जातें क्षरकों में अतिक्रमण करूं हूँ अक्षरतें उत्तम हूं तातें लोक अरु वेदमें मैं पुरुषोत्तम[1] विख्यातहूं, जो कोई मोहतें छुट्यो[2] सो या प्रकार मोकों पुरुषोत्तम जानै। सो सर्व वेत्ता सर्वभावकरकै मोकों भजैहै" इति। श्रीकृष्णकों जो परब्रह्म पुरुषोत्तम जानैं ताहि सर्व वेत्ता कह्यो। तातें सोई परब्रह्मपदको अर्थ है। श्रीआचार्यने आपकों नित्य दासभावको प्रत्यक्ष निश्चयकरके हमें[3] ऐसैं कह्यो विधिअर्थमें। "प्रधानक्षेत्रज्ञको[4] पति, पतिनहूंको पतिहै" यह श्रुति प्रमाणहै। हम यह बहुवचन एक जीववादिको मत

---

१ यस्मात् क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितःपुरुषोत्तमः। २ यो मामेवसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत। ३ ध्यायेम यहां विध्यर्थकप्रथमपुरुष प्रयोक्तव्य था, किन्तु अपनेकों स्वाभाविक दास्य होनेसे तद्ध्यानाश्रित निश्चय करके उत्तमपुरुष (ध्यायेम) का प्रयोग किया है। ४ प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः, पतिं पतीनामित्यादि श्रुतियां उसके स्वामित्वमें प्रमाण हैं।

निरासके अर्थ है। सो पूर्वही कह्यो है, "नित्योंमें नित्य" इत्यादि श्रुतिकरकें। यहां ध्यानको प्रयोग कहनेस जिज्ञासामैं वांछित जो ज्ञान सो ध्यानरूप है, यह सूत्रकारको तात्पर्य दिखायो जानना। "अरे! आत्मा द्रष्टव्य है श्रोतव्य है मंतव्य है निदिध्यासितव्य है" या विषयवाक्यमें ध्यान कह्योहै, तिनमैं दर्शनका उद्देश्यकरके निदिध्यासनको विधान है, सोई ध्यान सूत्रकारने ज्ञानको पर्यायकरकै कह्योहै। अन्यथा सूत्र अरु विषयवाक्यको विरोध होयगो अरु विषयविषयीभाव संवंध नहीं बनैगो, यह तात्पर्यसे ध्यानको प्रयोग है। ता ध्यानको विषय श्रीकृष्ण हैं। अव प्रसंगतें विधिको विचार करते हैं। प्रयोजनवान् अर्थको जो विधानकरै सो शब्दविधि है। "जैसे स्वर्गकाम पुरुष यजनकरै।" तहां स्वर्गरूप प्रयोजनवान् यजनको विधायक लिङ् प्रत्यय है। सो विधि तीन प्रकारहै, अपूर्व, नियम, परिसंख्या। तहां अत्यंत अप्राप्त अर्थको जो विधान कैरे सो अपूर्व विधि है। जैसें "धान

---

१ नित्यो नित्यानाम्। २ आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ३ प्रयोजनत्वावच्छिन्नवदर्थविधायकत्वेनार्थवान् शब्दो विधिः। ४ यथा स्वर्गकामो यजेदित्यत्र स्वर्गात्मकप्रयोजनवतोऽर्थस्य यजधात्वर्थस्य यजनस्य विधायको लिङ्प्रत्ययः। तेन यजनस्य प्रयोजनवत्तया विधीयमानत्वात्तद्विधायकशब्दस्य विधित्वमिति लक्षणसमन्वयः। ५ तत्रात्यन्ताप्राप्तार्थविधायकत्वमपूर्वविधित्वम्।

प्रोक्षण करै" यह विधि है। यहां प्रोक्षणरूप संस्कारकर्म विधि विना प्रमाणांतरकरकै अत्यंत अप्राप्त है, ताहि यह विधान करतहै। १। एक पक्षमैं प्राप्त तामें अप्राप्त अंशको जो पूरणकरै ताहि नियमविधि[2] कहतहैं। जैसें 'धान[3] कूटै' तहां विधिविना ही पुरोडाशके धान चावलको आक्षेपते कूटनों प्राप्तभयो, ताको विधान यामैं नहीं, किंतु नखदलनादिकरकै हू चावल सिद्ध होतहैं, तहां चावल कूटकैं सिद्ध करै, नखदलनादि न करै, यह नियम है। २। दोकी प्राप्ति मैं एकको[4] निषेध करे सो परिसंख्याविधि है, तहां दृष्टांत "यज्ञके शुकी डोरी ग्रहण[5] करै" यह एक मंत्र है "अश्वकी[6] डोरी ग्रहणकरै" यह द्वितीय मंत्र है। यज्ञपशु दो हैं एक अश्व, द्वितीय गर्दभ। द्वितीय मंत्रकरकै अश्वडोर ग्रहणको विधान नहीं, प्रथम-मंत्रकरकै प्राप्त है, प्राप्तको विधान निरर्थक है। अर्थवाद कोटि है। अर्थवाद तीन प्रकार है। गुणवाद, अनुवाद, भूतार्थवाद। गुणीकी स्तुति गुणवाद है। जैसें आदित्य यूप है, यामैं आदित्यकरकैं यूप कह्यो सो तो है नहीं, किंतु आदित्यको गुण पूजाको फल तातें यजमान पावत है, ता गुणसों ताहि आदित्य कह्यो। पूर्वज्ञातको जो कहै

१ यथा व्रीहीन् प्रोक्षतीति। २ पक्षे प्राप्तस्याप्राप्तांशपूरको नियमः। ३ यथा व्रीहीनवहन्तीति। ४ - उभयप्राप्तावितरव्यावृत्तिफलकः परिसंख्याविधिः। ५ यथा, इमामगृभ्णन् रशनाम् ऋतस्य। ६ अश्वाभिधानीमादत्ते इति।

सो अनुवाद है । जैसैं अग्नि शीतकी औषधि है सो प्रत्यक्ष करकै जानी है, ताहीको वाक्य कहतेहैं । विद्यमान अर्थको जो यथार्थ कहै सो भूतार्थवाद है । जैसें वज्रहस्त पुरंदर है सो यथार्थ है। द्वितीय प्रकार करकै अर्थवाद दो विध है, निंदारूप, स्तुतिरूप। तहां रजंत रुद्रको रोदन है यह निंदा रूप है। सो निषेधको अंग है यज्ञमें रूपेको दान न करै। अरु वायु शीघ्र फलदाता देवता है, यह स्तुति रूप है, सो विधिको अंग है। वायुदेवताको श्वेत पशुकरकै यजन करै इत्यादि । प्रसंगतें अर्थवाद कह्यो। अब प्रकरणकथा कहतेहैं।जो द्वितीय मंत्रको विधि माने तौ बनै नहीं। क्योंकि पिष्टपेषण न्याय होता है, तातें द्वितीय मंत्र गर्दभडोर ग्रहण कहतहै, गर्दभडोर ग्रहण न करै यह मंत्रको अर्थ है। प्रथम मंत्रकरकै दो डोरी ग्रहण प्राप्तभयो, तहां गर्दभडोरग्रहणको निषेध परिसंख्याविधिको अर्थ है । ३ । यह तीन विधि कही तामें परिसंख्या विधिके तीन दूषण है, स्वार्थको त्याग, परार्थकी कल्पना, प्राप्तिको वाध । अपनो अर्थ अश्वरशनग्रहणको त्याग स्वार्थत्याग है । गर्दभरशनाको निषेध परार्थकल्पना है । प्राप्तभयो जो अश्वरशनाग्रहण ताको वाध प्राप्तवाध है । यातें दूषणत्रययुक्तहोनेसे याकों दूषित कहत हैं। तहां वेदांतशास्त्र ब्रह्मस्वरूपगुणादि प्रतिपादनकरतहै, यह निश्चय है।अरु वेदांतको

विषयपरब्रह्मस्वरूपादिको साक्षात्कार जाकों है, ऐसे सत्संप्रदायनिष्ठ आचार्यके मुखतें ताके अनुभव करेहुये अर्थको ग्रहण श्रवणको लक्षण है। सुन्यो जो उपदेश ताहि अपने अनुभवके अर्थ शास्त्रानुकूल युक्ति करकै विचार करनो मननको लक्षण है। मननकर्यो जो अर्थ ताके साक्षात्कारको असाधारण कारण निरंतर ध्यानसो निदिध्यासन है। या प्रकारके श्रवणादिक अत्यंत अप्राप्तहैं, तातें अपूर्व विधि है। तामें निदिध्यासन साक्षात्कारको अंतरंगोपायहै।सो विधेय है। श्रवण मनन बहिरंग है। सो परंपराकरके ध्यानको साधन हैं। इति विधिविचार। अब लक्षणसूत्रकी व्याख्या करतें संतें भगवच्छब्दतें अभिन्न ब्रह्मशब्दकी निरुक्ति कहत हैं। स्वभावहीतें समस्तदोषकंरकैं रहित है। दोष अनेक विध है, क्लेश, विकार अरु ताप। तामें क्लेश पांच है "अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश" यह योग[1]शास्त्रको सूत्र है। तिनकों पुराणनमें तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र, अंधतामिस्त्र कहतहैं। "तिनमें स्वरूपको आवरणकर्त्ता तम है। अनात्मामें आत्मबुद्धि मोह है। विषयभोगकी इच्छा महामोह है।क्रोध तामिस्त्र है। अन्यके नाश करके

१ अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।

अपनों नाश माननो अंधतामिस्र है" यह विष्णुपुराणमें कह्यो है । सत्त्व, रज, तम, ये तीन प्राकृत गुण हैं । अरु ताके कार्य अनंत हैं। अस्ति, जन्म, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, मरण ये षट् विकार हैं, सो बद्धजीवके धर्म हैं । इन दोषनको ब्रह्ममें अत्यंताभाव है। सो दोषको अभाव सार्वज्ञ्यादिकी तुल्य असाधारणभावरूप ब्रह्मको धर्म है । "जो आत्मा है, पापरहित, जरारहित, मृत्यु रहित, शोकरहित, भूखरहित और प्यासरहित है, सत्यकाम सत्यसंकल्प है" यह श्रुतिमें कह्योहै । "कर्म क्लेश विपाकसों रहित परमात्मा है, ज्ञानादि षट् गुणकी निधि और अचिंत्यविभूति है परनके पर है जामें क्लेशादि नहीं, पर अरु अवरको ईश है" यह स्मृतिमें कह्याहै। या करकै निर्गुणश्रुतिनकी व्याख्या भई । ताको (निर्गुण श्रुतिको) हेयगुणनिषेधविषय है । तहां वादीकी शंका जो ब्रह्म गुणदोषरहित है तो निर्विशेष सिद्ध भयो सो हमारे संमत है इति । तहां सिद्धांत कहतहै "अशेष कल्याणगुणनकी राशि है" अथवा सब कल्याणगुणको

---

१ तमोऽविवेको मोहः स्यादन्तःकरणविभ्रमः । महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगसुखैषणा । मरणं ह्यन्धतामिस्रस्तामिस्रः क्रोध उच्यते । अविद्या पञ्च पर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः।२य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः । ३ कर्मक्लेशविपाकाद्यैरस्पृष्टस्याखिलेशितुः । ज्ञानादिषाड्गुण्यनिधेरचिन्त्यविभवस्य ताः।परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे ।

मुख्य पुंज है, अथवा अशेष कल्याणगुण पुंज जामैं है। वे गुण, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, सौशील्य, वात्सल्य, आर्जव, सौहार्द, सौम्य, कारुण्य, स्थिरता, धैर्य्य, दया, मार्दवादि हैं। तामें सर्व देश काल वस्तुको प्रत्यक्ष अनुभव ज्ञान है। अघटघटना करणेकी सामर्थ्य शक्ति है। विश्वधारणादि सामर्थ्य बल है। नियमनशक्ति ऐश्वर्य है। काहूतें पराभव न होके सबको पराभव करना यह सामर्थ्य तेज है। अपरिमित श्रमको कारण प्राप्त होत संते श्रम न होना वीर्य है। एते षट्गुण सृष्ट्यादि के उपयोगी हैं और भगवच्छब्दके वाच्य हैं। जात्यादि बडाईकी अपेक्षा छोडकैं निष्कपट हो मंदनके साथ मिलना सौशील्य है। भृत्यदोषको न विचारणो वात्सल्य है। मन, वचन, शरीरको तुल्य व्यापार आर्जव है। अपणी शक्तितें अधिक परकी रक्षाको उपाय सौहार्द है। ब्रह्मादिस्थावरांतको साधारण उपाय सर्वशरण्यत्व है। ताहीको नाम सौम्य है। परदोषकों दूर करणों कारुण्य है। युद्धादिमें अचलता स्थिरत्व है। प्रतिज्ञा पालनों धैर्यत्व है। कारणविना परदुःखदुखी होकैं दुःखनिवारणकी इच्छा दया है। अमृतपानकी तुल्य स्वादुदर्शन माधुर्य है। अपने शरणागत जनको दुःख न सहनों मार्दव है। रक्षा करणको स्वभाव स्वामित्व है। सुखसों प्राप्तहोणों सौलभ्य है। सत्य भाषणो सत्यप्रतिज्ञता है। उपकारकी इच्छा न

करणो पूर्णत्व है। अल्पकरेको वहु माननो कृतज्ञता है। आत्मपर्यंत दानको स्वभाव औदार्य है। और भी स्वाभाविक कल्याणगुण अनन्त हैं। ये सव सौशील्यादिगुण प्रपन्नके रक्षणके उपकारी हैं। और श्रुत्युक्त गुण परमात्मामें वने हैं "सर्वधर्माश्रय परमात्मा है"[1]। इत्यादि सूत्रमें कह्योहै। "याकी परा शक्ति स्वाभाविकीहै, नानाप्रकारहै, स्वाभाविक ज्ञानहै, स्वाभाविक[2] वल अरु क्रिया है। जो सत्यकाम है सत्य संकल्प है। सव लोकनको नियमनशक्ति करकै नियमन करैहै। सवको शरण अरु सुहृदहै। विष्णुको वीर्य कोण कहतभयो जो पृथिवीके परमाणु[3] गणना करै, ऐसो कोई नहीं जन्मा अरु नहीं जन्मेगो जो देवकी महिमाको अंत पावै। सहस्रधा महिमा ताहूतें सहस्रधा" इत्यादि श्रुतिमें कह्योहै। "संपूर्ण ज्ञान शक्ति वल ऐश्वर्य वीर्य तेज ये षट् भगवत्शब्दके अर्थहैं, हेयगुण विना। हे मैत्रेय! सर्व भूत अरु प्रकृतिके

---

१ विवक्षितगुणोपपत्तेश्च। १।२। २। "मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्पः" इत्यादीनां विवक्षितानां मनोमयसत्यसंकल्पत्वादीनां गुणानां ब्रह्मण्येवोपपत्तेश्चेति सूत्रार्थो भाषितः श्रीआद्याचार्यचरणैः। २ परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च, सत्यकामः सत्यसंकल्पः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः, सर्वस्य शरणं सुहृत्। ३ विष्णोर्नुकम् वीर्य्याणि प्रावोचत् यः पार्थिवानि विममे रजांसि, न ते विष्णोर्जायमानो न जातो देवस्य महिम्नः परमं तमाप, सहस्रधा महिमानः सहस्रः। ४ ज्ञानशक्तिवलैश्वर्यतेजोवीर्य्याण्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥ ५ स सर्वभूतप्रकृतिं विकारान्गुणांश्च दोषांश्च मुने! व्यतीतः।

विकार अरु प्राकृतगुण अरु दोषनतें अतीत है। सब आ-
वरणतें[1] अतीत है, सबको आत्मा है, सब भुवनमें व्याप्यो
है। समस्त कल्याणगुणको[2] आश्रय है, अपनी शक्तिका
लेश करकै सब भूतनकी सृष्टि घेरीहै। स्वेच्छा करके[3]
अनन्तरूप प्रगट करैहै। सर्वजगत्के हितको करताहै।
तेज बल ऐश्वर्य ज्ञान अरु वीर्य शक्त्यादि गुणनकी राशि
है। परतें परेहै, क्लेशादि यामें नहीं है। सो ईश्वर[4] व्यष्टि-
रूप समष्टिरूप अव्यक्त अरु व्यक्तरूप है। सर्वेश्वर[5] सब
व्यापक सर्ववेत्ता परमेश्वर है।" यह स्मृति है। अरु कल्या-
णरूप धर्म ताके अनन्त हैं। जगत्कारणता, शास्त्र-
विषयता, मोक्षदान, सर्वकर्मफलदान, विश्वाधारता, सर्व
व्यापकता, सर्वनियामकता, अत्यन्तसूक्ष्मता, अत्यंत-
महत्ता, ईश्वरेश्वरता, सर्वानतिक्रमणीयतादि असंख्यात
हैं। "जातें या जगत्के जन्मादि[6] होतहैं। जातें शास्त्र[7]

---

१ अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनान्तराले। २ समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशावृतभूतसर्गः। ३ इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेपजगद्धितोऽसौ। तेजोवलैश्वर्यमहावबोधः स्ववीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः। ४ परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे। स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः। ५ सर्वेश्वरः सर्वगः सर्ववेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः। ११ जन्माद्यस्य यतः।१।१।२। अस्याचिन्त्यविचित्रसंस्थानसम्पन्नस्यासंक्षेपनामरूपादिविशेपाश्रयस्याचिन्त्यरूपस्य विश्वस्य सृष्टिस्थितिलया यस्मात्सर्वज्ञाद्यनन्तगुणाश्रयाद्ब्रह्मेशकालादिनियन्तुर्भगवतो भवन्ति तदेव पूर्वोक्तनिर्वचनविषयं ब्रह्मेति लक्षणसूत्रवाक्यार्थः। ६ शास्त्रयोनित्वात्।१।१।३। शास्त्रमेव योनिस्तज्ज्ञप्तिकारणं यस्मिंस्तदेवोक्तलक्षणलक्षितं वस्तु ब्रह्मशब्दाभिधेयमिति सूत्रार्थः।

योनि है । ताकी (ब्रह्मकी) निष्ठावानूकों मोक्ष कह्यो है ।
"अंतर्यामी परमेश्वर है, ताके धर्म श्रुति कहत है
आकाश ब्रह्म ही है, जातें उसमें ब्रह्मके लिंग हैं । कर्मको
फल परमेश्वरतें होत है, ताहीत बनैहै" इत्यादि सूत्र हैं ।
"जातें सर्वभूत उत्पन्न होतहैं, जाके जिवाये जीवतहैं,
जामें मरतें संतें प्रवेश करतहैं । जाहि मुक्तिमें प्राप्त
होतहै सो ब्रह्महै जो सब कालात्मादिकनको एकही
अधिष्ठाता है, कारणनको कारण है अधिपनको अधिप है,
सर्व वेद जा पदकों कहतहैं, उस उपनिषत्प्रतिपाद्य पुरुषकों

---

१ तन्निष्ठस्य मोक्षव्यपदेशात् । १ । १ । ७ । २ अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् । १ । १ । २१ । आदित्येऽक्षिणि चान्तःस्थत्वेन श्रूयमाणो मुमुक्षुध्येयो हि परमात्मैव, न तु जीवविशेषः । कुतस्तस्य परमात्मनः एवापहतपाप्मत्वसर्वात्मत्वादीनां धर्माणामस्मिन्वाक्ये उपदेशादिति सूत्रार्थः । ३ आकाशस्तल्लिङ्गात् । १ । १ । २२ । आकाशः परमात्मैव । कुतस्तल्लिङ्गात् । वाक्यशेषे तस्यैव परमात्मनोऽसाधारणलिङ्गानां जगत्कारणत्वज्यायस्त्वपरायणादीनां श्रवणात् । भूताकाशस्य वाय्वादीनां कारणत्वेऽपि सर्वकारणत्वासम्भवात् । "तस्माद्वा एतस्माद्वा आत्मन आकाशः सम्भूतः" इति जन्यत्वश्रवणाच्च । "य आकाशमन्तरो यमयति" इति नियमत्वश्रवणाच्चेत्यर्थः । ४ फलमत उपपत्तेः । ३ । २ । ३८ । अतो ब्रह्मण एव तदधिकारिणां तदनुरूपं फलं भवत्यस्यैव तद्दातृत्वोपपत्तेरिति सूत्रार्थमनुजगृहिरे भाष्यार्थकाराः । ५ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । ६ यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः । ७ स कारणं करणाधिपाधिपः । ८ सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि ।

हम पूछतहैं, वेदगुह्य उपनिषदमैं परमात्मा[1] गूढ है संसारबन्धन स्थापन छुडावनको हेतु है। कर्मको अधिष्ठाता[2] है, सर्वभूतनको वास है, सर्व ताके आश्रय हैं, परमात्मा सबमैं व्यापक है, जैसैः दुग्धमैं घृत। जो अग्निमैं जलमैं सर्वभुवनमैं औषधिमैं वनस्पतिमैं प्रवेश करतभयो, ता देवताकों नमस्कार[3]। एक[4] देव है, सब भूतनमैं गूढ है, सर्व व्यापी सर्वको अन्तरात्मा है।सर्वलोकनकों अपनी[5] शक्तिकरकै नियमन करतहै। सर्वको[6] प्रभु सर्वको ईशान वरको दाता सत्यरूप स्तुतिके योग्य। सूक्ष्मतैं सूक्ष्मतर[7] भासतहै, जातैं अणु नहीं, जातैं वडो नहीं, अणुतैं अणु है, महत्[8]तैं महत् है, ईश्वरनकोहूं परम महा ईश्वर है, देवतनको परम देवता है। ताहि कोई[9] उल्लंघन करसकै नहीं" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। "मैं सबकी उत्पत्ति[10]को कारण हूं, मोहीतैं

---

१ तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढः संसारबन्धस्थितिमोक्षहेतुः। २ कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे, सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्। ३ यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ओषधिषु वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः। ४ एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। ५ सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिः। ६ सर्वस्य प्रभुमीशानं तमीशानं वरदं भूतमीड्यम्। ७ सूक्ष्माच्च सूक्ष्मतरं विभाति यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्। ८ अणोरणीयान्महतो महीयान्, तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, तं देवतानां परमञ्च दैवतम्। ९ तद्दु नात्येति कश्चन। १० अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।

सब प्रवृत्त होत हैं। सब वेदनको वेद्य मैंहीं हूं। जामें सब वाणीकी निष्ठा ताहि हमारो नमस्कार। वेदनमें, रामायणमें, भारतमें, पुराणनमें, आदि अरु अन्त अरु मध्य सर्वत्र हरिही गायो है। भवपाशकरकै बन्धनकर्त्ता अरु भवपाशतें छुडावनहार मोक्षको दाता परब्रह्म सनातन विष्णु ही है। सब पापनतें तोकों मैं छुडाऊंगो तू शोक मत करै। यातें सब भूतनकी प्रवृत्ति यासें सब जगत् व्याप्योहै, अपनें कर्मकरकै ताहि पूजनकरकैं मनुष्य सिद्धिको पावतहैं। ईश्वर सबके हृदयमैं विराजँतहैं, हे धनंजय! मोते परतर और कोई तत्त्व नहीं, मोमें सर्वजगत् पोयो है जैसें सूत्रमैं मणिगण। बुद्धि, मन, महत्तत्त्व, वायु, तेज, जल, आकाश पृथिवी और चारविधके प्राणी सर्व कृष्णके आधारतें हैं" इति स्मृति प्रमाण है। तातें स्वरूप गुण शक्तिकरकै जो वृहत्तम वस्तु सो ब्रह्म है। यह ब्रह्मशब्दकी निरुक्ति

---

१ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। २ नताः स्म सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती। ३ वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते। ४ बन्धको भवपाशेन भवपाशाच्च मोचकः। कैवल्यदः परं ब्रह्म विष्णुरेव सनातनः। ५ मोक्षयिष्यामि मा शुचः। ६ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः। ७ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन! तिष्ठति। ८ मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय!। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। ९ बुद्धिर्मनो महद्वायुस्तेजोऽम्भः खं मही च या। चतुर्विधं च यद्भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम्।

है। "जो निरातिशय[1] बृहत् सो ब्रह्म" यह श्रुति प्रमाण है। सोई स्मृतिहू[2] हैं। अरु व्याकरणमें हू कहतहैं, वृद्धि अर्थक वृहि धातु तातें उणादिगणको मनूप्रत्यय आयो तातें ब्रह्मशब्दकी सिद्धि भई सो अत्यन्त वृहद्वस्तुकों कहतहै, ताको देश काल वस्तु परिच्छेदशून्य वस्तु विषयमें अन्वय होतहै। सो अपरिच्छिन्न वस्तु भगवच्छब्दको वाच्य श्रीपुरुषोत्तम लक्ष्मीकान्त श्रीकृष्ण ही है। जातें परब्रह्म है, तातें व्यूहनको अंगी है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्नानिरुद्ध, ये चतुर्व्यूह हैं। तामें अंगी वासुदेव है, व्यूहशब्द अन्यावतारनको भी उपलक्षण है। व्यूह अरु अवतार जाके अंग हैं, तातें अनन्तमूर्त्ति है। "सर्व नाम है, सर्वकर्म है, सर्वलिंग है, सर्वगुण है, सर्वधर्मा[3] है, सर्वरूप है" यह श्रुति प्रमाण है। नित्यविभूति तथा अवतारविभूतिको पति है। अवतारावस्थामें अव्यक्तशक्ति होत सतें हू अजहद गुणशक्ति है। "जाके समान[4] अरु अधिक कोई नहीं है। यातें कृष्ण पारिपूर्ण है, तातें कृष्णही परदेव है, ताको ध्यानकरै[5]" यह श्रुति प्रमाण

१· बृंहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म। २ एष प्रकृतिरव्यक्तः कर्त्ता चैव सनातनः। परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्माद् वृद्धतमोऽच्युतः॥बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च ब्रह्म। ३ सर्वनामा सर्वकर्मा सर्वल्लिङ्गः सर्वगुणः सर्वकामः सर्वधर्मः सर्वरूपः। ४ न तत्समो नाभ्यधिकश्च दृश्यते। ५ तस्मात्कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्।

है । "मोतैं परतर कोई नहीं" यह श्रीमुख कह्योहै । "वासुदेवादिक चार मूर्त्तिकरकै सृष्ट्यादि करतहै, तातैं व्यूह कहत हैं" यह वचन प्रमाण है । अरु केशवादि द्वादश व्यूहमूर्त्ति हैं, सो द्वादश ऊर्द्ध्वपुंड्रके मन्त्रदेवता हैं, तिलकसमयमें ध्येय हैं । अब अवतारको निर्णय कहत हैं, अपनी इच्छाकरिकै धर्मस्थापनके अर्थ, अधर्मनिवारणके अर्थ,विविध विग्रहकरके आविर्भावहोनेको अवतार कहत हैं । वे अवतार तीन विध हैं । गुणावतार, पुरुषावतार, लीलावतार । गुणको नियंता गुणाभिमानी देवद्वारा अरु कालादि द्वारा जो सृष्ट्यादि करै सो गुणावतार है तहां रजोगुणको नियामक रजोगुण उपहित होयकै ताको अभिमानी चतुर्मुखद्वारा कालादिद्वारा स्रष्टा है । सत्त्वगुणको नियंता सत्त्वगुणोपहित अपनें स्वरूपकरकै कालमन्वादिके द्वारा पालक है । तमोगुणको नियामक तमउपहित तमोगुणाभिमानी रुद्रद्वारा अरु कालादिद्वारा संहारक है । अथ पुरुषावतार तीन हैं । "तामें महत्तत्त्वको स्रष्टा प्रकृतिनियंता

---

१ मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ! । २ व्यूहात्मानं चतुर्धा वै वासुदेवादिमूर्त्तिभिः । सृष्ट्यादीनि करोत्येष विश्रुतात्मा जनार्दनः ॥ ३ अवतारो नाम स्वेच्छया धर्मसंस्थापनार्थम्, अधर्मोपशमनार्थं, स्वीयानां वांछापूर्त्त्यर्थञ्च विविधविग्रहैराविर्भावविशेषः । ४ प्रथमं तु महत्स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ।

कारणार्णवशायी प्रथम पुरुष है। गर्भोदशायी समष्टि-को अंतर्यामी द्वितीय पुरुष है। क्षीरोदशायी व्यष्टिको अंतर्यामी तृतीय पुरुष है। इन पुरुषावतारको ज्ञान-भक्तिको हेतु है" यह श्रुति प्रमाण है। उपाधिके भेदतें ता ता नामको पावतहैं। अथ लीलावतार दो प्रकार हैं। आवेशावतार, स्वरूपावतार। तामें आवेश दो विध हैं। शक्तिको अंशावेश, स्वरूपांशावेश। तामें जीवके आवरण विना साक्षात् निजांशकरकै प्राकृतविग्रहमें प्रवेश करना सो स्वरूपांशावेश है। जैसें नरनारायणादि अवतार। शक्ति अंशमात्रकरकै जीवमें प्रवेश होयकै कार्य करै सो शक्तिअंशावेश है। सो तारतम्यकरकै प्रभव विभव होतहैं। तामें धन्वंतरि, परशुरामादि प्रभव हैं। कपिल, ऋषभ, चतुःसन, नारद, व्यासादि विभव हैं। अथ स्वरूपकरकै सच्चिदानंदमूर्त्तिको आविर्भाव सो स्वरूपावतार है। यह दीपतें दीपकी तुल्य अभिन्नस्वरूप-गुणशक्ति है। सो दो विध है, अंशरूप, परिपूर्णरूप। तामें पूर्ण होतसंतें अल्पशक्तिको प्रगटकरकै अल्पकार्य करै ताहि अंश कहतहैं, जैसे मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, हयग्रीवादि। अथ पूर्णशक्त्यादि जो प्रगट करै सो पूर्ण है, जैसे श्रीनृसिंह, दाशरथी श्रीराम, श्रीभगवान् कृष्ण। यह विवेक जाणिये। श्रीकृष्णको पूर्णता कहके अब

सर्वोपास्यता कहतहैं । वरेण्य है । स्वरूप अरु गुण अरु मंगलविग्रह अरु विग्रहगुणनकरकै ब्रह्मादिश्वपाकपर्यंतको साधारणतया श्रीकृष्ण वरणीय हैं । "यह अचिंत्य है, सर्वोत्कृष्ट है, पापादि हरणकर्त्ता है, सबके आदि आप अनादि अनंत है, अनंत शिर, अनंतनेत्र, अनंतवाहु, अनंतगुण, अनंतरूप है" यह श्रुति प्रमाण है। अथ सौंदर्यगुण कहतहै। कमलेक्षण है । कमलकी उपमा जाके ईक्षण नाम नेत्रकी हैं । "पुंडरीकनयन है, मेघकी आभा है, वैद्युताम्बर है, कमलनेत्रके अर्थ नमस्कार", इति मंत्र प्रमाण है । यह मन्त्र भगवान्‌के और अंगनको भी उपलक्षण है। "यह सूर्यमें हिरण्मय पुरुष दीसतहै, हिरण्यकेश है, हिरण्यश्मश्रु है, नख शिखपर्यंत सुवर्णरूप है, आनंदरूप अमृतरूप प्रकाशेहै । जैसो भगवान् तैसो विग्रह, यह प्रश्न है कि, कैसो भगवान् ? ज्ञानरूप, ऐश्वर्यरूप। सर्वओर नेत्र सर्व ओर मुख" यह श्रुति प्रमाण है । अथवा कमला लक्ष्मी जाको

---

१ एष एवाचिन्त्यः परः परमो हरिरादिरनादिरनन्तोऽनन्तशीर्षोऽनन्ताक्षोऽनन्तबाहुरनन्तगुणोऽनन्तरूपः । २ सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् नमःकमलनेत्राय । ३ एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यकेशः हिरण्यश्मश्रुः । ४ आप्रणखात् सुवर्णः । ५ आनन्दरूपममृतं यद्विभाति । यदात्मिको भगवाँस्तदात्मिका व्यक्तिः, किमात्मको भगवान् ज्ञानात्मक ऐश्वर्यात्मकः । ६ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः ।

ईक्षण करै सो कमलेक्षण कहावे है, सौंदर्यकी सीमा है। "रमाके मानसके हंस श्रीगोविंदको नमस्कार" यह मंत्र प्रमाण है। "ध्याताके मनको अरु पापको हरत है ताहीते हरि है। दुष्टचित्त करकै स्मरणकरेतैं पापनको हरतहै, जैसैं इच्छाविना स्पर्श कर्यो अग्नि जरावतहै" यह स्मृति प्रमाण है। अथ वा ब्रह्मादिकको हरणकरै यातें हरिहै। "ब्रह्मा इन्द्र रुद्र वरुणादिको बलतें जो हरण करे सो हरि है" यह स्मृति प्रमाण है। अरु गायत्रीकी व्याख्यारूप हू यह श्लोक है, सो कहतहैं, जो हमारी बुद्धिको प्रेरण करतहै ता सविताको वरणयोग्यरूप हम ध्यान करतहैं, यह अन्वय है। तहां कमलेक्षणपदकरकै बुद्धिप्रेरक कह्यो हृदयकमलमैं योगी जाको ईक्षण करै सो कमलेक्षण, सबकी बुद्धिको प्रेरक अंतर्यामी है। "अष्टपत्रको विकाशो हृदयकमल तामैं वसंतहै। अंतः प्रविष्ट होयकै जननको शास्ता है" यह श्रुतिमैं कह्योहै "हे अर्जुन! सबके हृदयमें ईश्वर वर्त्तैहै, मायायंत्रमैं आरूढ करकै सर्वभूतनको भरमावतहै" यह श्रीमुख गायोहै।

१ रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमोनमः। २ हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयाऽपि संस्पृष्टो दहत्येवहि पावकः॥ ३ ब्रह्माणमिन्द्रं रुद्रञ्च यमं वरुणमेव च। प्रसह्य हरते यस्मात्तस्माद्धरिरितीर्यते॥ ४ अष्टपत्रं विकसितं हृत्पद्मं यत्र संस्थितम्। ५ अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्। ६ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन! तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया।

देवपदको अर्थ ब्रह्म है, विश्वके सर्गादिकरकै जो क्रीडा करै सो देव है । "विश्वकी स्थित्यादिकर्त्ताको नमस्कार" यह मंत्र प्रमाण है। "मैं ही सबकी उत्पत्तिको कारण हूं मोतें सर्वप्रवृत्त होतहैं" यह गीता प्रमाण है। असुरनको जय करे सो देव है। "कंसवंशके नाशक अरु केशीचाणूरके घातीको नमस्कार" यह मंत्र है। "दुष्टनके विनाशको मैं युगयुगमें प्रगट होतहूं" यह गीता है। सर्वके अंतर्यामिताकरके जो व्यवहार करे सो देव है " जो आत्माको अंतर प्रेरणकरे सो तेरो आत्मा अंतर्यामी है" यह श्रुति है। "सर्वके हृदयमें मैं संनिविष्ट हूं" यह श्रीमुखतें गायो है जो प्रकाश करे सो देव है "जाके प्रकाश करके सर्व जगत् प्रकाशतहै । याको बढायो सूर्य तपैहै " यह श्रुति है। "जो सूर्यमें तेज है जो चंद्रमें तेज है जो अग्निमें तेज है सो मेरो तेज जान" यहै श्रीमुख गायोहै। ब्रह्मादि जाकी स्तुति करै सो देव है। "मरुद्गण

---

१ नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे । २ अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते । ३ कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने । ४ विनाशाय च दुष्कृताम् । ५ य आत्मानमन्तरो यमयति, एष ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः । ६ सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः । ७ तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् । ८ येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः । ९ यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

सहित गोविंद सच्चिदानंदविग्रह वृंदावनमैं कल्पतरुतरे ठाडो ताकी मैं नित्य स्तुति करत हूं" यह श्रुति है । "पुष्कलवाणी करकै सब देवऋषि तुम्हारी स्तुति करत हैं" यह गीतामें अर्जुननें कह्यो है । सब जानैं सो देव है, "जो सर्वज्ञ है सर्ववित् है" यह ति है । "मैं सब भूत भविष्यत् वर्त्तमान भूतनको जानत हूं मोको कोई जाणै नहीं" यह श्रीमुख गायोहै । सर्वत्र गमन करै सो देव है। "कंपै नहीं अरु मनहूतें अधिक वेगवान् है" यह श्रुति है । सदा मोद करै सो देव है, "यह आनंदकर्त्ता है" यह श्रुति है । इन श्रुतिनके प्रमाण करकै परब्रह्मही देवपदको अर्थ है । सूत्रकारनें देवपदार्थको जिज्ञासासूत्रमें ब्रह्म कह्यो है । यह देवशब्दकी निरुक्ति कही। अब लक्षण कहत हैं । सवितापदको अर्थ तत्शब्दको अर्थ गायत्री प्रतिपाद्य अंतर्यामी जो बुद्धिको प्रेरक सो सविता। "जातें जगत् उत्पन्न होत है, सो सविता" यह विष्णुधर्मोत्तरमें कह्योहै। स्थिति प्रलयको उपलक्षण है । जगत्की उत्पत्ति पालन संहारको कर्त्ता सवितापदको अर्थ है, सोई जिज्ञा-

---

१ तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनं परमया स्तुत्या तोषयामि । २ स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः । ३ यः सर्वज्ञः सर्ववित् । ४ वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानि चार्जुन ! । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ ५ अनेजदेकं मनसो जवीयः । ६ एष आनन्दयाति । ७ जगत्सूयते यस्मादिति [illegible] सवितेत्यभिधीयते ।

सासूत्रको विषय (ब्रह्म) है, उक्त लक्षणको श्रीकृष्णहीमें अन्वय है, तातें भर्गपदको अर्थ श्रीकृष्ण है। "ध्याताके कर्मनको जरावे सो भर्गको अर्थ हैं" सोई कृष्णको अर्थ तापनीमें कह्यो है। "पापको निर्मूलकरै सो कृष्णहै" इति। श्रीकृष्णके साक्षात्कारतें सम्पूर्ण पापादि कर्मकी निवृत्ति अरु मुक्तिप्राप्ति श्रुतिमें कहीहै। "जब यह पुरुष रुक्म-वर्ण परमेश्वरको साक्षात् करै" इत्यादि करकें, सो श्रुति पूर्व लिखीहै। "मुनि ब्रह्मासों पूछतभये श्रीकृष्ण कौण है? तिन प्रति ब्रह्माको उत्तर, पापकर्षक कृष्ण है" इति। तातें (पूर्वोक्तकारणोंसे) भर्गको अर्थ श्रीकृष्ण है। पापशब्दकरकै कर्ममात्रको ग्रहण है, जो ध्याताके पापपुण्यकर्मको निर्मूल करै सो कृष्ण है। अथवा जो विश्वको भरण पोषण करै अरु सर्वज्ञाता व्यापी विश्वांत-र्यामी सो भर्गको अर्थ है। या करके शास्त्रयोनित्व, मोक्ष-दातृत्व, कह्यो। जो जगत्कारण सोई वेदांतको विषय है। ताहीमें शास्त्रको समन्वय है, सोई मोक्षको कारणहै। यह सूत्रकारको अभिप्राय है, सो जिज्ञासासूत्रतें आरंभ करके अनावृत्तिसूत्रपर्यंत चार अध्यायशास्त्रकरकै निर्णय कर्यो है। मोक्षदाता है, याहीतें सर्वको उपास्य है, यह वरे-

---

१ भर्जयति ध्यातॄणां कर्माणीति भर्गः। २ तद्व होचुः कः कृष्णः इति प्रश्ने, पापकर्षकमिति उत्तरवचनम्, पापं कर्षयति निर्मूलतीति कृष्णः। इति निरु-क्तिरुक्ता अनेन प्रतिवचनेन।

णयपदकरकै कहते हैं। मुमुक्षुनको अनन्यताकरकै वरणे-के योग्य है। "मुनि ब्रह्मा प्रति बोले--कौण परमदेव है? कौणतें मृत्यु डरतहै? यह प्रश्न है, श्रीकृष्ण पर देव है तातें ताको ध्यान करै" यह उत्तर है। जो गायत्री प्रतिपाद्य देव है सो कृष्ण है, तातें कृष्णको ध्यान करै यह तात्पर्यहै, यह धीमहिपदको अर्थ है, सोई निदिध्यासन श्रुतिमें कह्यो है। सर्वशास्त्रमें कहीं उपासना याहीमें अंतर्भूत है, यह व्यूहांगी पदको अर्थ है। तहां वादी शंका करत है "जातें भूतनकी उत्पत्ति होत है" इत्यादि लक्षणवाक्यमें यत्शब्द सामान्य है सामान्यकों विशेषकी आकांक्षाका नियम है। तहां विशेषकांक्षापूर्णार्थ ब्रह्म-रुद्रादिको भी अन्वय बनत है। "हिरण्यगर्भ पूर्व होतभयो, ब्रह्मा सब भूतनको कर्त्ता आगे होतभयो, ब्रह्मा देवनके प्रथम होतभयो, विश्वको कर्त्ता भुवनको रक्षक, ताहि विरिंच कहत हैं, जातें जगत्को करतहै, तातें ये नाम रूप होतहैं। स्थूल सूक्ष्म कछु न होतभयो केवल शिवही

१ मुनयो ह वै ब्रह्माणमूचुः कः परमो देवः कुतो मृत्युर्बिभेति इत्युपक्रमे प्रश्नः। तस्मात्कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेदित्युत्तरोपसंहारवाक्यम्। २ यतो वा इमानि इत्यादि लक्षणश्रुतिः। ३ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत, ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव, विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता, विरिञ्चो वा इदं विरेचयति विदधातीति ब्रह्मा वा विरञ्चः, एतस्माद्धीमे रूपनामनी। ४ न सन्न चासच्छिव एव केवल [illegible] न द्वितीयाय तस्थः. यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च।

होतभयो, देवनकी उत्पत्तिप्रलयको कर्त्ता रुद्र एक होत भयो" इति श्रुतिमें कह्यो है। तातें श्रीकृष्णही जगत् कारण यह निश्चय वनै नहीं इति। तहां उत्तर कहत है "श्रीकृष्ण पर कारण हैं, कारणनको कारण ईश्वरनको ईश्वर देवनको देव" यह श्रुति है। "ब्रह्मादिको कर्त्ता उपदेष्टा है, ताको कर्त्ता अरु अधिप कोई नहीं" यह श्रुति है। "हे धनंजय! मोतें परतर कोई वस्तु नहीं, परनके परै है पर अवरको ईश है" इत्यादिस्मृति है। ब्रह्मादिकोंको कहूं एक ऐश्वर्य कह्यो सो सत्य, परन्तु जन्म अरु कर्माधीनता श्रवण है, तातें उनकूं परत्व वनै नहीं। "एक नारायण होत भयो, न ब्रह्मा, न ईशान, तिस (नारायण) के ललाटतें त्रिलोचन शूलपाणि जन्मत भयो, ध्यानस्थनारायणके मस्तकतें प्रस्वेद गिरतभयो सो जल होत भयो, तामें हिरण्मय अंड होत भयो तामें चतुर्मुख जन्मत भयो नारातें ब्रह्मा जन्मे है, नारायणतें रुद्र जन्मे है, जो ब्रह्माको पूर्व करतभयो, ताहि वेद पढावत भयो। जों कृष्ण ब्रह्मा-

---

१ तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतम्, स कारणं कारणाधिपाधिपः। २ न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः। ३ मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय!। ४ परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे। ५ एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानः, तस्य ध्यानान्तःस्थस्य ललाटात् त्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत, तस्य ध्यानान्तःस्थललाटात्स्वेदोऽपतत्, ता इमाः प्रपतत् ता आपः, तत्र हिरण्मयमण्डं, तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत, नारायणाद्ब्रह्मा जायते, नारायणाद्रुद्रः। ६ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्राहिणोति तस्मै।

कों करतभया, ताकी विद्या रक्षाकरतभयो, शिव हविकरकै कामपूरक विष्णुकी दया बढावतभयो, तातें रुद्र पदवी पावतभयो," यह बहृचमन्त्र है। " सो कहतभयो वर मांगो, सो मांगतभयो मैं पशुनको अधिपति होऊं, तातें रुद्र पशुपति भयो" इत्यादि श्रुति यामैं प्रमाण हैं। परमेश्वरतें दोनों (शिव-ब्रह्मा) की उत्पत्ति यासैं कही, काहू शास्त्रसें परमेश्वरतें ब्रह्माकी उत्पत्ति अरु ब्रह्मातें शिवकी उत्पत्ति कही सो कल्पभेदकरकै माननेंसे कोई विरोध नहीं । "जाके प्रसादतें मैं सृष्टिकर्त्ता होतभयो, जाके क्रोधतें संहारकर्त्ता तू होतभयो, पालनके अर्थ आप पुरुषरूप भयो " यह ब्रह्मानें शिवप्रति कह्यो है । " प्रजापति अरु रुद्रको मैं सृजतहूं, मेरी मायाकरकै मोहित ते मोको नहीं जानतहैं" यह मोक्षधर्ममें कह्योहै । "पद्मभू ब्रह्मा युगकोटिसहस्रपर्यंत विष्णुको आराधन करकै त्रिलोकीको धाता होतभयो । मैंहीं पूर्व-

---

१ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै विद्यास्तस्मै गोपायतिस्म कृष्णः । २ अस्य देवमीढुषो दया विष्णोरेव प्रवृद्धेर्हविर्भिददेह रुद्रो रुद्रीयमहित्वम् । ३ सोऽब्रवीद्वरं वृणुष्व, अहमेव पशूनामधिपतिरसानीति तस्माद्रुद्रः पशूनामधिपतिः । ४ यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी । क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्तादित्युक्तं वैष्णवे । ५ प्रजापतिञ्च रुद्रञ्चाप्यहमेव सृजामि वै । तौ हि मां न च जानीतो मम मायाविमोहितौ ॥ ६ युगकोटिसहस्राणि विष्णुमाराध्य पद्मभूः । पुनस्त्रैलोक्यधातृत्वं प्राप्तवानिति शुश्रुम ॥

सृज्यो ब्रह्मा मेरो यज्ञ करतभयो, तातें प्रसन्न होयकें मैं वर देतभयो कि, युगयुगमें मेरो पुत्र हो अरु सर्वलोकको अधिष्ठाता हो। विश्वरूप महादेव सर्वमेध नाम महायज्ञमैं सर्वभूतनको होम करतभयो, अरु अपणों शरीरहूं आप होम करतभयो। महात्मा महादेव सर्व यज्ञमैं अपणो शरीर होमकरकै देवदेव होतभयो, विश्वलोकमैं कीर्त्तिसे व्यापकै विराजत है, प्रकाशमान है, कृत्तिवासा जाको नाम है।" यह राजधर्ममैं देवप्रस्थानको वचन है। "ब्रह्मादिक सर्व देवता विष्णुको आराधनकरकै अपने अपने पदको प्राप्तभये श्रीकेशवके प्रसादतें।" यह नरसिंहपुराणमैं कह्यो है। सब देव अरु ऋषि नानाशरीरकरकैं विष्णुको भजतहैं, विष्णु तिनको गति देतहैं। "ताके अनन्तर सर्वदेवता ब्रह्मा महर्षि वेदोक्त विधिकरकै वैष्णवयज्ञ करतभये। तब आदित्यवर्ण पुरुष श्रीभ

---

१ मया सृष्टः पुरा ब्रह्मा मद्यज्ञमयजत्स्वयम्। ततस्तस्य वरान्प्रीतो ददावहमनुत्तमान्॥ मत्पुत्रत्वञ्च कल्पादौ लोकाध्यक्षत्वमेव च। २ विश्वरूपो महादेवः सर्वमेधे महाक्रतौ। जुहाव सर्वभूतानि स्वयमात्मानमात्मना॥ ३ महादेवः सर्वयज्ञे महात्मा हुत्वाऽऽत्मानं देवदेवो बभूव। विश्वांल्लोकान् व्याप्य विष्टभ्य कीर्त्त्या विराजते द्युतिमान्कृत्तिवासाः॥ ४ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे विष्णुमाराध्य ते पुरा। स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्य प्रसादतः॥ ५ ते देवा ऋषयश्चैव नानातनुसमाश्रिताः। भक्त्या सम्पूजयन्त्येनं गतिं चैषां ददाति सः॥ ६ ततस्ते विबुधाः सर्वे ब्रह्मा ते च महर्षयः। वेददृष्टेन विधिना वैष्णवं क्रतुमारभन्। प्रापुरादित्यवर्णं तं पुरुषं तमसः परम्॥

भगवान् दर्शन देकैं बोले कि, जा जाने जो जो भाग मोको दियो अरु मेरी शरण आयो ता ताको मैं प्रसन्न होइकैं फल देतहूं, परन्तु तुम सर्व सकाम हो, तातें पुनरावृत्ति संसारकी निवृत्ति होगी नहीं " यह नारायणीय-आख्यानमें कह्यो है। छांदोगहूमें " विरूपाक्ष धाताको अंश ब्रह्माको ज्येष्ठ पुत्र" यह शतपथब्राह्मणहूमें प्रमाण है। " संवत्सरतें कुमार भयो सो रुदन करतभयो, ताहि प्रजापति बोल्यो तू क्यों रोवतहै, मेरे तपतें जन्म्यो है सो बालक बोलतभयो मैं पाप्मा हूं मेरो नाम करो" इति। "नारायण परदेव है, तातें चतुर्मुख उत्पन्न भयो ब्रह्मातें रुद्र उत्पन्नभयो सो सर्वज्ञ भयो" यह वाराहपुराणमें कह्योहै। "मैं ब्रह्मा प्रजाको ईश नारायणतें भयो हू, रुद्र तू मोतें जन्मतभयो, मोहीतें स्थावर जंगम उत्पन्नभयो रहस्यसहित वेद होतभये"। यह नारायणीय आख्यानमें ब्रह्मरुद्रको संवाद है । तहां

---

१ येन यः कल्पितो भागः स तथा मामुपागतः । प्रीतोऽहं प्रदिशाम्यद्य फलमावृत्तिलक्षणम् ॥ २ विरूपाक्षाय धात्रंशाय विश्वदेवाय ब्रह्मणः पुत्राय ज्येष्ठाय । ३ सम्वत्सरात्कुमारोऽजायत कुमारोऽरोदीत् प्रजापतिरब्रवीत् किं रोदिषि? यच्च मम तपसोऽधिजातोसीति, सोऽब्रवीदनपहतपाप्माऽहमस्मि, हन्त नामानं मे देहीति ॥ ४ नारायणः परो देवस्तस्माज्जातश्चतुर्मुखः । तस्माद्रुद्रोऽभवद्देवः स च सर्वज्ञतां गतः ॥ ५ अहं ब्रह्मा चाद्य ईशः प्रजानां तस्माज्जातस्त्वञ्च मत्तः प्रसूतः । मत्तो जगज्जंगमं स्थावरञ्च सर्वे वेदाः संरहस्याश्च पुत्र ! ॥

शंका-ब्रह्म, शिव, लिंगादिपुराणनमैं ब्रह्मा रुद्रको भी परमकारण कह्यो है। वेभी पुराण होनेतें समान हैं, कैसें विष्णुही परम कारण है इति। सो नहीं, ब्रह्मपुराणादि पुराण है सो सांच, परन्तु राजस तामस हैं, तातें वे पुराण संसारके कारण हैं, याहीतें सात्त्विक मोक्षशास्त्रकरकै तिनको बाध होना उचित है। यामें यह भाव है, सात्त्विक, राजस, तामस, संकीर्ण इन भेदोंसे पुराण चतुर्विध हैं। तामैं सात्त्विककल्पमैं जो भयो सात्त्विक जाको देवता विषय सात्त्विक जाको अधिकारी सो सात्त्विकपुराण हैं। राजस कालमे जो भयो राजस जाको देवता विषय राजस अधिकारी सो राजसपुराण हैं। तामस कालमैं भयो तामस देवता विषय तामस अधिकारी सो तामस हैं। संकीर्णकालमैं भयो संकीर्ण देवता विषय संकीर्ण अधिकारी सो संकीर्ण हैं। सो मत्स्यपुराणमे कह्योहै। "संकीर्ण, तामस, राजस, सात्त्विक इन भेदतें कल्प चतुर्विध हैं। वे ब्रह्माके दिन हैं। तहां जैसे जैसे दिनमैं ब्रह्मानें पुराण कह्यो तैसे तैसे देवताको माहात्म्य तामें कह्यो,

---

१ संकीर्णास्तामसाश्चैव राजसाः सात्त्विकाः स्मृताः। कल्पाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता ब्रह्मणो दिवसाश्च ये॥ २ यस्मिन्कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा। तस्य तस्य च माहात्म्यं तत्तत्कल्पे विधीयते॥ अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु प्रकीर्त्तितम्। राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः। संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणाञ्च निगद्यते॥ सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः। तेष्वेव योग संसिद्धा गमिष्यंति परां गतिम्॥

अग्नि अरु शिवको माहात्म्य तामसपुराणमें कह्यो, राजस पुराणमें ब्रह्माको माहात्म्य कह्यो है, संकीर्ण पुराणमें सरस्वतीको माहात्म्य कह्यो, सात्त्विकमें श्री-हरिको माहात्म्य कह्यो, ताही (सात्त्विकपुराण) करकै योगसिद्ध पुरुष परमगतिको जावेंगे। तैसेंही कूर्मपुराणमें भी कह्योहै। "ब्रह्माके कल्प असंख्यात हैं ब्रह्मकल्प, विष्णुकल्प, शिवकल्प इत्यादि, यह पुराणनमें कल्पके ज्ञाता मुनिजन कहतहैं। तिन सात्त्विककल्पमें अधिक माहात्म्य श्रीविष्णुको है। तामसमें शिवको माहात्म्य है। राजसमें प्रजापति ब्रह्माको माहात्म्य है" इत्यादि तातें विष्णु, पाद्मपुराणादिक सात्त्विक हैं। तिनमें समग्र अलुप्त यथार्थज्ञान है। ब्रह्म, शिवपुराणादि राजस, तामस हैं। तातें विक्षेपावरणस्वभाव हैं, अतः परतत्त्वको आवरक हैं। तातें निर्बल हैं। प्रबलकरकै निर्बलकी बाधा योग्य है, क्योंकि राजसादिपुराण विपरीततत्त्वके ज्ञापक हैं अरु संशय विपर्ययके हेतु हैं। तातें राजसतामस शास्त्र मुमुक्षुको हेय हैं और सात्त्विकशास्त्र मोक्षके हेतु हैं, ताको मुमुक्षु सदा अभ्यास करै। भगवान्मनुनें भी कह्योहै "जे वेदबाह्य स्मृति हैं अरु कुतर्क हैं ते सब

---

१ असंख्यातास्तदा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः। कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः॥ सात्त्विकेषु चकल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः॥ २ तामसेषु शिवस्योक्तं राजसेषु प्रजापतेः।

निष्फल हैं सरकै नरकको कारण हैं" इति । यहां पुराण-शब्द उपलक्षण है । उक्त लक्षण एक श्लोक अथवा अर्द्ध अथवा पाद सात्त्विक होय तो ग्रहणकरै, राजस, तामस, संकीर्णको त्यागकरै, यह सिद्धांत है । तहां शंका-जो सात्त्विक शास्त्र सेव्य हैं तो सब सात्त्विकोंको क्यों न सवत हैं इति । सो नहीं। तिनकैं पाप प्रतिबंधक हैं । तातें सात्त्विक धर्मकी निष्ठा होतनहीं, सो अन्वयव्यतिरेककरकै श्रीमुख गायो है । "हे अर्जुन ! दुष्कृती मूढ मेरी शरण नहीं होत हैं, ते नरनमें अधम हैं मायाकरकै ज्ञान जिनको हर्यो है ते असुरभावकों प्राप्तभयेहैं" यह अन्वय है । "जिन प्राणिनैंको पाप पुण्य विशेषकरकै नाश भयो है, ते द्वंद्वमोहतें छूटके दृढव्रत होयकै मोकों भजत हैं, हे पार्थ ! उदारबुद्धि पुरुष दैवी प्रकृतिके आश्रय हैं, ते अनन्यमन होयके सब भूतनको कारण अविनाशी जानके मोकों भजत हैं" यह व्यतिरेकहै । "मनुष्यनकैं सहस्रनमें कोई एक सिद्धिके अर्थ यत्न करतहै" यह गीताके वाक्यते जन्मांतर सहस्र पुण्यपुंजपुरुष

---

१ या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः । सर्वास्ता निष्फलाः प्रोक्तास्तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ २ न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ ३ येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ महात्मानस्तु मां पार्थ ! दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः । भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ ४ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

श्रीकृष्ण भगवान्‌की भक्तिको अधिकारी होतहै। "जन्मांतर सहस्रमें तप, दान समाधिकरकै जिनके पाप क्षीण भये तिन नरनको श्रीकृष्णभक्ति[1] होतहै" यह स्मृति है। तहां "जन्मसमय जाको भगवान् कृपा[2]कटाक्ष करैं अरु देखैं सो सात्त्विक होय, सात्त्विकनको संग करकै सात्त्विकशास्त्र विचारकै मोक्षको अधिकारी होतहै। जो जन्म समय ब्रह्मा अथवा रुद्र कटाक्षकर देखैं तो राजसी ताम[3]सी होइकै संसारी होतहै" यह मोक्षधर्ममें कह्योहै। "सात्त्विक पुरुष विष्णु[4]को सेवतहैं, राजस पुरुष ब्रह्माको सेवतहैं, तामसी जन शंकरको सेवतहैं, संकीर्ण पुरुष सरस्वतीको सेवतहैं" यह अन्यत्र कह्योहै। तहां शंका--गायत्रीमें सवितृशब्द प्रत्यक्ष है सो सूर्यमें रूढ है, रूढीवृत्ति योगवृत्तितें प्रबल है, तातें गायत्रीमंत्रको विषय सूर्य ही है। जो गायत्रीको विषय सोई वेदांतको विषय है। तातें सूर्य पर[5]म कारण है इति। सो नहीं। यद्यपि योगवृत्तितें रूढीवृत्ति प्रबल है

---

१ जन्मान्तरसहस्रेषु तपोदानसमाधिभिः। नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते। २ जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः। सात्त्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः॥ ३ पश्यत्येनं जायमानं ब्रह्मा रुद्रोऽथवा पुनः रजसा तमसा चैव मानसं समभिप्लुतम्॥ ४ सात्त्विकैः सेव्यते विष्णुस्तामसैरेव शङ्करः। राजसैः सेव्यते ब्रह्मा सङ्कीर्णैश्च सरस्वती॥ ५ इससे श्रीकृष्ण परम कारण बने नहीं यह शंकाका तात्पर्य है।

तथापि तात्पर्यके बाधकरकै विपरीत होतहै, सो आकाश प्राणादि अधिकरणमैं सूत्रकारनैं निर्णय कर्योहै । सो छांदोग्यमैं शालावति जैबलिके संवादमैं पाठ है कि-"या लोक[1]की कोण गतिमैं है यह प्रश्न है। आकाश गति है यह उत्तर है, आकाशको लक्षण कहो ? आकाशतैं सब्ब भूत उत्पन्न होतहैं, आकाशमैं अस्त होतहैं, आकाश सबते वडोहै, आकाश परायण है" इति । तामैं संशय है कि, आकाशशब्द भूताकाशको वाचक है, अथवा ब्रह्मको वाचक है ? तहां पूर्वपक्ष–भूताकाशको वाचक है जातें रूढि है, तातें योगवृत्तितैं प्रबल है, इति । तामैं सूत्र[2]को सिद्धांत--आकाश परमात्मा है, भूताकाश नहीं । परमात्माके लिंग तामैं हैं जगत्कारणता, अरु सबतें ज्येष्ठता ये परमेश्वरके असाधारण लिंग हैं आकाशमैं बनैं नहीं । उस भूताकाशको वायु आदिकी कारणता होतेसंते सर्व कारणता बनै नहीं, अरु भूताकाशकी श्रुतिपरको कार्य कहत है। "आत्मातैं आकाश उत्पन्न[3] भयो" इति। "परमात्माको

---

१ अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते, आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवेभ्यो ज्यायान् आकाशः परायणमिति । २ आकाशस्तल्लिङ्गात् । १ । १ । २२ । अत्र वाक्ये आकाश आकाशशब्दार्थः परमात्मैव । कुतः ? तल्लिङ्गात् तस्य परमात्मनो लिंगं तल्लिङ्गम्, सर्वभूतोत्पादकत्वज्यायस्त्वपरायणत्वादि । तस्मात्परमात्मासाधारणधर्मादिति सूत्रार्थः । ३ आत्मन आकाशः सम्भूतः । ४ य आकाशमन्तरो यमयति ।

आकाश नियम्य है" यह श्रुति कहतहै। तातें आकाशको अर्थ परमात्मा है। सब ओर प्रकाश करै सो आकाश है, यह निरुक्ति है।[1] "जाके प्रकाशकरके सब जगत्प्रकाशैहै"[2] यह श्रुत्यन्तर भी यामें प्रमाण है। और हू छांदोग्यमें वाक्य है[3] "सो देवता कोण है? यह प्रश्न है तहां उत्तर है, प्राण देवता है। ता प्राणको लक्षण? सब भूत प्राणमें प्रवेश करतहैं, प्राणहीते निकसतहैं, सोई देवता है" इति। तहां संशय है-प्राणशब्द वायुवृत्तिको वाचक है, अथवा परमात्माको? तहां पूर्वपक्ष-वायुवृत्तिको वाचक है, जाते ताको रूढ अर्थ प्राणमें है, सो जगत्में प्रसिद्ध है, इति। तहां सूत्रको[4] सिद्धांत-यहां प्राणशब्दको अर्थ परमेश्वर है। क्योंकि, सर्वभूत प्रवेशनादि परमेश्वरके असाधारण लिंग हैं। ते वायुवृत्ति प्राणमें बनत नहीं। यह समन्वयाध्यायके प्रथमपादमें सूत्रकारको निर्णय है। तैसे-दार्ष्टांतमें सवितृशब्द रूढिवृत्तिकरकें सूर्यको वाचक है। तथापि बुद्धिनियमनादि परमात्माके असाधारणलिंग सूर्यमें वृत्तिसे बनै नहीं, तातें सवितृशब्दको अर्थ योग श्रीपुरुषोत्तम निश्चय करते हैं, आदित्य-

---

१ सर्वमभिव्याप्य काशत इत्याकाशः। २ तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्। ३कतमा सा देवतेति? प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति, प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्तेति। ४ अत एव प्राणः। १।१।२४। प्राणपदाभिधेयः परमात्मैव। कुतः? अत एव-सर्वभूताभिसम्वेशनादिपरमात्मलिङ्गादेवेति सूत्रार्थौ मञ्जूषायां भाषितो भगवत्पुरुषोत्तमाचार्यैः।

परमात्मनियम्यत्व अरु जन्यत्व अरु परांग अरु परप्रकाश्यत्व श्रुतिसिद्ध है। तातें आदित्य जीव है, जीवलिंग तामें प्रत्यक्ष है, "जा अक्षरकी[1] आज्ञामें सूर्य चन्द्र वर्त्तें हैं, ताके भयतें वायु चलत है ताके भयतें सूर्य उदय होत है, ताके चक्षुतें सूर्य जन्मत भयो, सूर्य चन्द्रकों विधाता पूर्वकी तुल्य सिरजतभयो, ताके सूर्य चन्द्र दोऊ चक्षु हैं, जाके तेजतें सूर्य वढो है प्रकाशैहै, यामें सूर्य, चन्द्र, तारागण, नहीं प्रकाशतहैं, जहां सूर्य नहीं प्रकाशे है वायु न चलेहै" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। तातें सर्वज्ञ सर्वशक्ति स्वाभाविक अचिंत्य अनन्त गुणसागर श्रीभगवान् पुरुषोत्तम रमानिवास गायत्रीमन्त्रको विषय है, यह सिद्धांत है। तहां शंका "एक[2] अद्वितीय ब्रह्म होतभयो, तामें नाना नहीं जो यामें नाना देखै, सो मृत्युके अनन्तर मृत्युको पावै, निर्गुण है, निष्कल[3] है, निर्दोष, निरंजन है, ज्ञाताको ज्ञात[4] नहीं, जानें न जान्यों तानें जान्यों, जानें जान्यो

---

१ एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि ! सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः, भीषाऽस्माद्वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः, चक्षोः सूर्योऽजायत, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्, अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ, येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः, न यत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्, यत्र न सूर्यस्तपति, यत्र वायुर्न वाति २ एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन, मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति । ३ निर्गुणं निष्कलं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् । ४ यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः, अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातमविजानताम् ।

तानें न जान्यों। जातें वाणी अरु मन नहीं पायकें[1] निवृत्त होतहैं, जो वाणी करकै नहीं कहनेमैं आवै जो वाणीको प्रकाशक है।" इति श्रुतिनमैं ब्रह्मको एक निर्गुण अरु ज्ञानको अविषय शब्दाद्यगोचर प्रतिपादन करयोहै। यातें सगुण शक्तिमान् ब्रह्म शास्त्रको विषय कैसे बनै? अन्यथा निर्गुण अद्वितीय श्रुति निर्विषय भई, ताको कोप होयगो इति। सो तुच्छ है। सर्वश्रुतिनको हमारे सिद्धांततें विरोध नहीं सो कहतहैं। सत् आकाश प्राण ज्योति आत्मा ब्रह्म नारायणादि शब्दनको अर्थ विश्वको कारण एकही हमारै अंगीकार है, ताकों (कारणको) सब वेदके वाक्य एकहोना प्रतिपादन करत हैं। तातें एकशब्द जगत्कारणको एकत्व कहतहै, एवकार[2]

---

१ यतो वाचो निवर्त्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह, यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन, मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। अस्यार्थः। एकशब्दो जगत्कारणस्यैकत्वं विदधाति। अन्ययोगव्यवच्छेदार्थकेनावधारणेन (एवकारेण) च तत्साम्यं निराक्रियते। अद्वितीयपदेन च तदाधिक्यमिति बोध्यम्। "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इति श्रुत्यन्तरात्। एवं सदाद्यनेकशब्दप्रयोगात्तदर्थे कारणे नानात्वसम्भावनावारणायाह—इह जगत्कारणे नानाशब्दवाच्येऽपि नानात्वं नास्ति, तस्यैकत्वात्। नानात्वदर्शनस्य फलमाह—मृत्योः स मृत्युमाप्नोति। सदैव जन्ममरणादिदुःखात्मकसंसारभाग् भवति। नानात्वदर्शनमास्तां, नानेव दर्शनस्यैतावत्फलमित्यर्थ इति कैमुत्योक्त्या महादोषः सूचितः। यद्वा क्वचिच्चतुर्मुखादीनां कारणत्वश्रवणात्तत्र तथात्वशंकावारणायेदं वाक्यम्—इह जगत्कारणे नाना चतुर्मुखत्रिनयनादिभेदो नास्ति। कारणस्यैकत्वावधारणात्। तेषाञ्च नियम्यत्वादिश्रवणात्।

ताके समानको निषेध करतहै, अद्वितीय पदकरकै तातें अधिकको निषेध है, "ताकी तुल्य अरु अधिक कोई नहीं" यह श्रुत्यन्तर यासें प्रमाण है । तहां शंका--कारणके वाचक नानाशब्द हैं, कारण नाना होयगो इति। सो नहीं नानाशब्दको वाच्य कारण है सो सांच परन्तु ता (कारण) सैं नाना नहीं क्योंकि कारण एक ही है, जो कारणसैं नाना देखै सो मृत्युके अनन्तर मृत्युको पावै, अर्थात् सदा जन्ममरणादि दुःखको भागी होतहै नाना दर्शन दूर रहो, जो नानाकी सदृश देखै ताकों संसार फल है यह कैमुत्यन्याय है। या श्रुति-करकै कहीं एक चतुर्मुख त्रिनयनकों कारण सुन्यो ताको निषेध जानना । जगत्कारणमें नाना चतुर्मुख त्रिनयनादि भेद नहीं, जगत्कारण एक परमेश्वर श्रीपुरुषोत्तम वासुदेव है । ब्रह्मा शिवादि ताके नियम्य हैं। यह पूर्वमें निर्णय किया है । अरु निर्गुणश्रुति हेयगुणविशेषको निषेधक हैं, यातें सिद्धान्तमें विरोध नहीं। तहां शंका--निर्गुण सामान्यपदको श्रुतिमें प्रयोग है, तातें धर्ममात्रको अपवाद जानना इति। सो नहीं। तिन गुणको श्रुतिनै स्वभाविक कह्योहै, स्वभाविकको निषेध बनै नहीं। जासे अग्निमें दहन प्रकाशनधर्मको निषेध कोई नहीं करसकै जो करै तो मूर्ख है । अन्यथा अस्थूलादि वाक्यकरकै स्वरूपकोहू निषेध तुम्हारे

मतमें प्राप्तभयो, क्योंकि दोऊ श्रुति स्वाभाविक समान हैं। तातें हेयगुणको निषेधक निर्गुणवाक्य हैं, स्वभाविकके नहीं, यह सिद्धांत है। ज्ञानको विषयनिषेधक श्रुतिहूं विरुद्ध नहीं, क्योंकि ताको इयत्ता निषेधविषय है। जा पुरुषको परमेश्वरके स्वरूप गुणादिकी इयत्ताको ज्ञान है, तानें नहीं जान्यो, क्योंकि वो परिच्छिन्नदर्शी है। जानें इयत्तापरिच्छेदकरके नहीं जान्यो ताकों ज्ञात है, क्योंकि भगवान्‌के स्वरूप गुणादि अचिंत्य अनन्त हैं, श्रुति ताको अनन्त कहतहै "जो पृथिवीके परमाणु[1]की गणाना करै सोऊ विष्णुके पराक्रमको कहसकै नहीं, हे विष्णु! जो तुम्हारे स्वरूपगुणादिके अन्तको पावै सो जन्म्यो नहीं अरु जन्मैगो नहीं, सो अनंतमहिमा है" यह श्रुति प्रमाण है। ऐसैं और वाक्योंकी भी व्याख्या जानना। अन्यथा "ताहीको जानके मृत्युकों[2] अतिक्रमण करत है, और कोई मार्ग आश्रय नहीं, जो ऐसैं जानै सोई मुक्त होतहै। जा समैं चर्मकी तुल्य आकाशकों[3]

१ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रावोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। न ते विष्णोर्जायमानो न जातो देवस्य महिम्नः परमं तमाप। सहस्रधा महिमानः सहस्रः

२ तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय, य एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति। ३ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः। तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यांतं निगच्छति।

मनुष्य लिपेटै, ता समैं देव (परमात्मा) को नहीं जानकै दुःखके अंतको पावै" इत्यादि वाक्यको व्याकोप होयगो। अरु ज्ञान विना अनिर्मोक्षप्रसंग भयो । वहां ताही वाक्यके शेषसें "विज्ञात है"[1] । यां पदकरकै परमात्माको ज्ञानको विषय कह्यो है। "जा सर्वज्ञ सर्वशक्ति ब्रह्मतें[2] ताके आनंदादि गुणनको अंत नहीं पायके मनसहित वाणी निवृत्त होतहै" क्योंकि आनन्दादिगुण अनंत हैं। जैसे समुद्रतीरवासी जन समुद्रके जलमें स्नानादि करकै दिष्टादिष्ट फलकरकै पूर्ण होतहैं, परंतु समुद्रके जलकी थाह पावत नहीं, तैसें वेदवाणी ब्रह्मके स्वरूपगुणादि प्रतिपादनकरकै जीवके पुरुषार्थको साधन बोधकरकै ताके स्वरूपगुणादिको अंत नहीं पायकै निवृत्त होतहैं, यह श्रुतिको अर्थ है । अन्यथा ताके उत्तरार्द्धमें ब्रह्मके आनंदको जाणके[3] काहूतें भय न करै। यह "विद्वान्" पदको प्रयोग व्यर्थ भयो । "हम उस उपनिषत्[4]प्रतिपाद्य पुरुषको पूछतहैं, कि, सब वेद जाको प्रतिपादन करत हैं" इत्यादि शास्त्रसों विरोध भयो। सब उपदेशशास्त्रकों तिलांजलि दई, उपदेशसंप्रदाय व्यर्थ भयो, तातें कह्यो

---

१ मतं तस्य, विज्ञातमविजानताम् । २ यतो वाचो निवर्त्तन्ते। ३ अन्यथा, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चनेति श्रुत्या तदीयानन्दस्य ज्ञानविषयत्वं भयनिवृत्तिफलकत्वञ्चोक्तं विरुद्ध्यते । ४ तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामः, सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति ।

लक्षण जाको सोई ब्रह्म गायत्रीप्रतिपाद्य है, अरु सर्व वेदांतको विषय है, यह सिद्धांत है। सोई श्रीसूत्रकारने शास्त्रयोनिसूत्रमें कह्योहै। जे कोई कहै ब्रह्म निर्विशेष है सो तुच्छ है, क्योंकि जो सब प्रमाणको विषय नहीं सो शशशृंगकी तुल्य है, सो कहतहै । तहां प्रमाण तीन प्रकार हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द। इंद्रियें अरु विषयके संबधतें भयो जो ज्ञान सो प्रत्यक्ष प्रमाण है, इंद्रियसंबंध प्रत्यक्ष प्रमाण है। श्रीगुरुकों मैं चक्षुकरकै देखतहूं, हरिगाथा श्रोत्रकरकै सुनतहूं, तुलसीसुगंध घ्राणकरकै सूंघतहूं, इत्यादि। १। व्याप्तिबुद्धिकरकै जन्य जो ज्ञान सो अनुमिति है, जैसैं यह पर्वत अग्निमान् है, धूमवान् होनेसे। जो धूमवान् है सो अग्निमान् है, जैसैं रसोईको स्थान। इंद्रियमनबुद्ध्यादि आत्मा नहीं, जातें करण हैं, दंडादिकी नाईं। ताको करण अनुमान है। २। आप्तको वचन शब्द प्रमाण है। तहां भ्रमकारण चार हैं। बुद्धिमंदता अरु इंद्रियोंको अपाटव, विप्रलिप्सा, दुराग्रह। जो यथार्थ ज्ञान न जानैं सो बुद्धिकी मंदता है, असमर्थ इंद्रियको अपाटव कहतहैं, स्ववचनपालनकी विशेष इच्छा विप्रलिप्सा है, अन्यथा कुतर्कको पक्षपात सो दुराग्रह है। इन दूषणकरकै रहित जो यथार्थ वक्ता

---

१ शास्त्रयोनित्वात्। १। १। ३॥ २ इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। ३ व्याप्तिधीजन्यं ज्ञानमनुमितिः। ४ आप्तप्रयुक्तं वाक्यं शब्दः।

सो आप्त है । सो तारतम्यके भेद करकै त्रिविध है । तामैं आप्ततम वेद हैं, ताको वाक्य आप्ततम है, अपनो मूल आप है, जो अन्यकी अपेक्षा नहीं । श्रुति अर्थको स्मरणकर्त्ता मनु आदिक आप्ततर हैं, तिनको वाक्य आप्ततर है, ताको मूल श्रुति है, श्रुतिके सापेक्ष होनेतें । श्रुति स्मृतिके व्याख्याकार आप्त हैं, तिनके वाक्यका प्रमाण श्रुति स्मृतिमूलक होनेसे है, क्योंकि दोऊके सापेक्ष है । तासैं प्रत्यक्ष अरु अनुमान ये दोऊ प्रमाण हैं, परंतु स्वतंत्र नहीं, क्योंकि प्रत्यक्षमें मायामस्तकको व्यभिचार है, प्रत्यक्ष है, किन्तु प्रमा नहीं । तत्काल, अग्निके नाशसमय वृष्टिकरके चिरकाल धूमको उठतें पर्वतसैं धूम विद्यमान है अरु अग्नि नहींहै, तातैं अनुमानसैं व्यभिचार है, याते ये दोऊ शब्दके सापेक्ष हैं, शब्द स्वतः प्रमाण है यातें अन्य निरपेक्ष है । ३ । उपमानादि अन्य प्रमाणोंको याहीमैं अंतर्भाव है । क्योंकि विलक्षण नहीं है । तहां निर्विशेष ब्रह्मसैं प्रत्यक्ष प्रमाण बनै नहीं जातें निर्विशेष ब्रह्म अतींद्रिय है । अनुमानहूं बनै नहीं, जातें लिंगशून्य है "ब्रह्मकों इन्द्रिय अरु अनुमान विषय करै नहीं" यह श्रुति है । शब्दको विषयहूं बनै नहीं क्योंकि सर्वधर्मशून्य वस्तुको शब्दकी वृत्ति, विषय करै नहीं । सो कहतहैं । शब्दवृत्ति दो प्रकार है,

१ नेन्द्रियाणि, नानुमानम् ।

मुख्या अरु असुख्या। मुख्या शक्ति है। तहां या शब्द-तें येह अर्थ जाननों यह ईश्वरको संकेत है, यह शक्तिको लक्षण तार्किक कहत हैं। अर्थकी प्रतीति करावणेकी सामर्थ्य स्वाभाविकसंबंध शक्ति है, यह लक्षण मीमांसक कहतहैं। इंद्रियमैं विषयप्रकाशनसामर्थ्यकी तुल्य शब्दमें अर्थप्रकाशनकी योग्यता संबंधशक्ति है, यह लक्षण वैयाकरण कहत हैं। अघटघटनामैं चतुर ब्रह्मशक्तिकी सदृश शब्दमें अर्थप्रकाशनकी योग्यताशक्ति है, यह वैदिकनको सिद्धांत है। सर्वथा अर्थप्रकाशनयोग्यता शब्दकी शक्ति यह साधारण लक्षण है। सो तीन प्रकार है, रूढि, योग, योगरूढि। अवयवसमुदायमें शक्ति रूढि है। जैसैं हरि, नारद इत्यादि। सो दो प्रकार है, पर्यायरूप, अनेकार्थ। तामैं हस्त, कर, यह पर्यायरूप हैं। हरि, सैंधवादि अनेकार्थ है। शब्दके अवयवमें शक्ति सो योग

---

१ अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इति ईश्वरेच्छासङ्केतः शक्तिरिति तार्किकाः।
२ अर्थप्रतीतिजननसामर्थ्यलक्षणः स्वाभाविकः सम्बन्धः शक्तिरिति मीमांसकाः।
३ चक्षुरादिवृत्तिविषयप्रकाशनयोग्यत्वच्छब्दस्य तत्तदर्थप्रकाशनयोग्यतालक्षणसंबन्धः शक्तिरिति शाब्दिकाः। ४ अघटघटनापटीयसी ब्रह्माश्रितस्वाभाविकी, शक्तिमच्छब्दाश्रिता तदर्थप्रकाशनार्हताऽभिन्ना शक्तिरिति ह्यौपनिषदाः।
५ सर्वत्र जनपदेष्वपि प्रतिपन्नप्रयोगेण घटाद्याकृतिवाचकत्वेन वृत्ती रूढिः, सा च समुदायशक्तिरित्यप्याख्यायते। ६ अवयवशक्तिर्योगः।

हैं, जैसें माधव, रमाकांत, शौरि, शास्ता, वासुदेव, इत्यादि । समुदाय[1] अरु अवयव दोऊमैं वर्त्तै सो योगरूढि है । जैसें सोम रूढिकरकै चन्द्रको कहतहैं, अरु योगकरकै शिवको वाचक है, उमासहित होय सो सोम है । असुख्या दो प्रकार है, लक्षणा, गौणी । शक्यके[2] संबन्धवृत्ति लक्षणा है । सो तीन प्रकार है, जहत्स्वार्था, अजहत्स्वार्था, जहदजहत्स्वार्था । तहां गंगामें घोष है, यहां गंगाशब्दको अर्थ प्रवाह है, ताको त्याग[3] करकै गंगासंबंध तीरमैं वर्त्तै है । अरु मंच पुकारत है, यहां मंचको अर्थ खाटको त्यागकरकै ताको संवन्ध पुरुषमैं वर्त्तै हैं, यह जहत्स्वार्था है । काकनतें दधिकी रक्षा करणा, यामें काकको अर्थ नहीं त्याग करकै तातें इतर दधिघातक मार्जारादिमैं वर्त्तै सो अजहत्स्वार्था[4] है । शक्यके एकदेशको त्यागकरकै एकदेशमैं[5] वर्त्तै सो जहदजहत्स्वार्था है । जैसें यह देवदत्त है, या स्थानमें पूर्व दूरदेश अरु भूतकाल अरु वर्त्तमान देश अरु कालको अन्वय बनै नहीं । तातें उभयविध देशकालको त्यागकरकै देवदत्तके पिंडमात्रमें वृत्ति है । शक्यवृत्ति[6]

१ उभयविधशक्तिका योगरूढिः । २ शक्यसम्बन्धो लक्षणा । ३ वाच्यार्थस्य सर्वांशत्यागेनान्यत्र वृत्तिर्जहत्स्वार्था। ४ शक्यार्थापरित्यागेनान्यत्र वर्त्तमाना अजहत्स्वार्था । ५ शक्यैकदेशत्यागेन तदेकदेशवृत्तिर्जहदजहत्स्वार्था । ६ शक्यवृत्तिलक्ष्यमाणगुणसम्बंधो गौणी, " लक्ष्यमाणगुणैर्योगाद् वृत्तेरिष्टा तु गौणता" ।

लक्ष्यमाण जे गुण तिनको संबन्ध गौणी है, जैसैं देवदत्त सिंह है, यामैं सिंहवृत्ति क्रूरतादिक गुणकी लक्षणाकरकै देवदत्तमैं वृत्ति है, सोई लक्षितलक्षणा है। तहां सर्वविशेषशून्य वस्तुमैं रूढिवृत्ति बनै नहीं, जातैं जाति, गुण, क्रियादि करकै शून्य है। अरु योगवृत्ति हूं बनै नहीं, क्योंकि निर्विशेष वस्तुमें धातु प्रत्ययको अर्थ अंगीकार नहीं। अरु लक्षणावृत्तिकी भी प्रवृत्ति बनै नहीं, क्योंकि निर्विशेष वस्तुमें संबन्धशून्य है। गौणी वृत्तिहू बनै नहीं, जातैं निर्गुण है। अतः सर्वप्रमाणशून्य होनेसों श्रेयअर्थिको इस पक्षकी उपेक्षा करणो। यातें सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, वेदांतवेद्य, परब्रह्म, श्रीपुरुषोत्तम विश्वजन्मादिको अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है, यह सिद्धान्त है। तहां शंका-अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहीं प्रसिद्ध नहीं, तातें प्रमाण नहीं, इति। सो तुच्छ है। घट अरु ईश्वरके संयोगमें ईश्वरको अरु जीवके ज्ञानोत्पत्तिमें जीवको तार्किकनें अभिन्ननिमित्तोपादान मान्यो है, तातें अप्रसिद्ध नहीं। ता दृष्टांतकरकै अनुमान बनत है। यथा जगत्को अभिन्ननिमित्तोपादान कारण ब्रह्म है, जातैं [1]तादृश शक्तिमान् है।

---

१ ब्रह्म (पक्ष) जगदभिन्ननिमित्तोपादानं (साध्य) भवतुमर्हति। तादृशशक्तिमत्त्वात् (हेतु)। जीवगतज्ञानादौ जीववत्, घटेश्वरसंयोगे ईश्वरवत् (दृष्टान्त)।

जीवके ज्ञानमैं जैसैं जीव। घट ईश्वरके संयोगसैं जैसैं ईश्वर। यह अनुमान प्रमाण है। "प्रकृति (उपादान) अरु निमित्तकारण जगत्को ब्रह्म है" यह सूत्रभी प्रमाण है। तहां वादीकी शंका-जगत् ब्रह्मको कार्य है सो सत्य है, परन्तु कोन प्रकारको कार्य है, संघातरूप है? अथवा आरब्ध है? अथवा परिणाम है? अथवा विवर्त्त है? संघात तो नहीं कह सकते हो, क्योंकि नास्तिकको पक्ष है। आरब्ध हूं नहीं, जातैं शास्त्रप्रमाणशून्य न्यायको पक्ष है।

---

१ प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्। १।४।२३। चकारो निमित्तसमुच्चयार्थः। प्रकृतिरुपादानं निमित्तञ्च ब्रह्मैव। कुतः? प्रतिज्ञेति। प्रतिज्ञा च दृष्टान्तश्च तयोरनुपरोधात्सामञ्जस्यात्। प्रतिज्ञा च "उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्" इत्युपादानकारणविज्ञानेन सर्वकार्यविज्ञानविषया। कार्यस्य तदनतिरिक्तत्वात्। दृष्टान्तोऽपि "यथा सौम्य! एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्" इत्यादिरूपः। उपादानकारणविज्ञानेन सर्वकार्यविज्ञानगोचर एव। ब्रह्मणो निमित्तमात्रत्वे तु कुलालादिज्ञानेन मृन्मयाज्ञानवज्ज्ञानेन सर्वकार्यविज्ञानं न स्यादेवेति तयोर्बाध एव स्यात्। "उत तमादेशमप्राक्ष्यः" इत्यत्रापि निमित्तोपादानयोरैक्यस्य प्रतीयमानत्वाच्च। तथाहि आदिशतीत्यादेशः "बाहुलकात्कर्तरि घञ्। यद्वा भावार्थघञन्तादादेशशब्दात् "अर्श आद्यच्" उभयत्रापि प्रशासितृत्वाविकरणेनैवादेशशब्दस्य युक्तम्। तथा च अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्, एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि!, प्रशासिता सर्वेषाम्" इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यामादेशशब्देन प्रशासनरूपव्यापाराश्रयः कर्त्ता विवक्षितः। तमादेशमादेष्टारं परमात्मानमप्राक्ष्यः पृष्टवानसि, येन गुरुमुखात् श्रुतेनाश्रुतमपि श्रुतं भवति। अमतं मतं भवति। अविज्ञातं विज्ञातं भवतीति श्रुत्यर्थो भाष्ये भाषितः श्रीश्रीनिवासाचार्यचरणैः।

परिणामहूं बनै नहीं, क्योंकि आकाशसदृश विभु ब्रह्मको परिणाम बनै नहीं। यहां ब्रह्म[1] परिणामयोग्य नहीं, जातें विभुपरिमाण है, अरु निरवयव है, जैसें आकाश। यह अनुमान प्रमाण है। तातें ब्रह्मविवर्त्त जगत् है, इति। सो तुच्छ है। निरवयव विभुकोभी परिणामनशक्तिसामर्थ्यतें परिणाम बनतहै। तहां शंका--सावयव क्षीरादिको परिणाम देखतेहैं, निरवयवको नहीं, तातें दोषको उद्धार भयो नहीं, इति। सो तुच्छ है। क्षीरके परमाणुमैं तुम्हारे कथनको व्यभिचार है, सो कहतहैं। वस्तुके परिणाममैं सावयवत्व प्रयोजक नहीं, किंतु वस्तुगतशक्ति प्रयोजक है। अन्यथा जलभी सावयव है, तातें दधि परिणाम होय जाको निवारक कोई नहीं है। अरु क्षीरके अवयव निरवयव हैं, तिनको परिणाम प्रसिद्ध है। यहां यह भाव है, कि द्रव्यके परिणाममैं अवयवीकी शक्ति कारण है, अथवा अवयवकी? अवयवीकी तो बनै नहीं, क्योंकि जलादि द्रवद्रव्यमैं भिन्न अवयवी तुम्हारे मतमैं अंगीकार नहीं। जो कहौ, अवयवकी शक्ति कारण है, तो विकल्प नहीं सहता है। तहां क्षीरके अवयव सावयव हैं, वा निरवयव हैं? ये विकल्प है। अनवस्था-

---

१ ब्रह्म पक्ष है, परिणामाभाव साध्य है, विभुपरिणामकत्व और निरवयवत्व हेतु है, आकाशवत् यह दृष्टान्त है।

असंगतें सावयव तो बनै नहीं क्योंकि क्षीरसागरको कुंडपरिमाणापत्ति होयगी, जातें अवयवधारा अनंत है। जो निरवयव कहो तो हमें इष्टापत्ति है, किन्तु निरवयवको परिणाम बनै नहीं, यह तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग भई अरु निरवयत्व हेतु स्वरूपासिद्ध भयो। अरु जो कह्यो विभुको परिणाम बनै नहीं, सोऊ तुच्छ है। क्योंकि विभु आकाशको वायुरूप करकै परिणाम देखिय-तहैं। "आकाशतें वायु[1] भयो" यह श्रुति प्रमाण है। या करकै द्वितीय हेतु विभुत्वको भी सत्प्रतिपक्ष निर्णय भयो। यामें ब्रह्म परिणाम[2] योग्य है, जातें विभु है, जैसें आकाश, यह अनुमान प्रमाण है। तातें निरववय विभु ब्रह्मको परिणामरूप कार्य जगत् है, अचिंत्यशक्तिके योगतें, यह सिद्धांत है। "याकी परा[3] शक्ति नानाप्रकार की सुनत है, स्वाभाविकी ज्ञान बल अरु क्रिया" यह श्रुति प्रमाण है। "सब भावनकी[4] शक्ति अचिंत्य ज्ञानको विषय है, सो असंख्यात है, जगत्सर्गादिको कारण भावरूप है, जैसें अग्निमें उष्णता स्वाभाविक है"। तहां शंका–निरवयव विभु ब्रह्मको अचिंत्यशक्तिके बलकरके

---

१ आकाशाद्वायुः। २ ब्रह्म, परिणामयोग्यं, विभुत्वात्, आकाशवत्। ३ पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। ४ शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः। शतशो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः। भवन्ति तपतां श्रेष्ठ! पावकस्य यथोष्णता॥

परिणाम कह्यो सो सांच, तथापि परिणाम पक्षमैं विकारी ब्रह्म भयो, सो वडो दोष है । तहां यह विचार करणो--ब्रह्मपरिणामपक्षमैं संपूर्ण ब्रह्मको परिणाम भयो? अथवा ब्रह्मके एकदेशको? तहां संपूर्णपरिणामपक्षमैं सर्वब्रह्म जगदाकार परिणाम भयो, मुक्तनको प्राप्य रह्यो नहीं, अरु ब्रह्म अनित्य भयो, जातें परिणामी है । जो कहो ब्रह्मको एकदेश परिणाम भयो तोभी अनित्यता दोष बन्यो रह्यो, अरु निरवयव[1] श्रुतिको व्याकोप भयो । तातें परिणामवाद समीचीन नहीं इति । सो तुच्छ है। आकाश जैसें निरवयव अरु विभु है, उसको वायु अरु शब्दरूप परिणाम होतेंसंतें विकारी नहीं है । तैसैंही "आकाशकी[2] तुल्य सर्वगत अरु नित्य है" यह श्रुतिसें आत्माको आकाशकी उपमा कही है, तातें निरवयव विभु ब्रह्मको जगद्रूप परिणाम होतेंसंते निर्विकारता निर्विवाद है, तादृश शक्तिके योगतें । यह परिणामवाद अंगीकार करके समाधान कह्यो । अब अपनो सिद्धांत कहत हैं, वास्तव तो श्रुतिसूत्रमें[3] परिणामशब्दको शक्तिविक्षेप अर्थ है, ब्रह्मके स्वरूपमें परिणामको अंगीकार नहीं । तातें ब्रह्मके स्वरूपविषयमें दोषकल्पनाको अवकाश नहीं । जैसे मकरी तंतुको विस्तार करके भी अप्रच्युत स्वरूप

---

१ निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनमित्यादि । २ आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः । ३ आत्मकृतेः परिणामादित्यादौ ।

निर्विकार रहत है, अरु दोषको संबंध नहीं देखते, तैसें दार्ष्टांत जानैं । "जैसें ऊर्णनाभि तंतुसंतान करै है अरु समेटत है, जैसे सद्रूप पुरुषतैं केशलोम होतहैं, जैसें पृथिवीतें जव व्रीही औषधि उत्पन्न होतहैं तैसें अक्षर परमात्मातें विश्वको संभव होतहै" यह श्रुति प्रमाण है । "तैसें विश्वको परिणाम करके हरि सृजत हैं" यह स्मृति है । तहां शंका--शक्तिविक्षेपरूप परिणाम है, यामें प्रमाण नहीं, इति । सो तुच्छ है। शास्त्रप्रमाणयुक्त होनेतें । "हरि अपनी इच्छाकरके प्रकृति पुरुषमें प्रवेश करके प्रकृतिको क्षोभ करावत भयो" यामें क्षोभशब्द विक्षेपको दूसरो नाम है । "कूर्म जैसें अपनें अंगनको पसारके समेटत है, तैसें सर्वभूतात्मा भूतनकों सृजत है अरु समेटत है" यह भीष्मजीको वचन प्रमाण है। तातें हमारो सिद्धांत निर्दोष है। तहां उपादानको लक्षण, सूक्ष्मावस्थाको प्राप्त अपनी स्वाभाविक चेतनाचेतन शक्तिनकों, शक्तिमें वर्त्तमान सद्रूप कार्यनकों स्थूलरूप करके प्रकाश करणो, यह उपादान है इति । निमित्तको लक्षण अपने अपने

---

१ यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च, यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि, यथा पृथिव्या औषधयः सम्भवन्ति, तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् । २ तथैव परिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः । ३ प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरिः । क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ । ४ प्रसार्य च यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः । तद्वद्भूतानि भूतात्मा सृष्टानि ग्रसते पुनः ॥

अनादि संस्कारके वशीभूत अत्यंत संकुचित स्मरणके अयोग जिनको ज्ञान, ऐसे चेतननको कर्मफलभोगके योग्य ज्ञानप्रकाशकरकै ताता कर्मफल भोगके साधन देहादिकको संयोग करावणो। तिन दोऊको अभेद अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है। सो कारण स्वरूप लक्षण है। "जातें इन भूतनको जन्म होतहै"[1] इत्यादि श्रुति यामें प्रमाण है। तहां शंका-जो जगत्कारणत्वको स्वरूपलक्षण मानों तो द्वितीय लक्षण सत्यादि[2] व्यर्थ भयो इति। सो तुच्छ है। कारणत्व स्वरूपलक्षण है, सो सत्य, परंतु ताको निरूपण कार्यके सापेक्ष है, अरु सत्यादिलक्षण अन्यनिरपेक्ष है, तातें निर्दोष है। पूर्व जो कह्यो ब्रह्मको विवर्त्त जगत है, सो तुच्छ है। क्योंकि, विवर्त्तवाद प्रमाणशून्य है। तहां शंका "हे सौम्य! आगे सत्यही[3] होत भयो, सोई सत्य है, सोई ऋत है, सोई परम ब्रह्म है" इत्यादि श्रुतिमें एकहीको अवधारणपूर्वक सत्य कह्यो सो अन्यके मिथ्या विना बनै नहीं, यह श्रुतिमैं अवधारणशब्द (एवकार) विवर्त्तवादमैं प्रमाणहै, जातें अद्वितीय ब्रह्ममैं आरोपित जगत् है। जातें आरोपित है तातें असत् है इति।

१ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। २ सत्यं ज्ञानमित्यादि। ३ सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, तदेवर्त्त तदु सत्यमाहुस्तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम्।

सो तुच्छ है। असत्‌को आरोप बनै नहीं। क्योंकि एक स्थानमें सत्यको अन्यमें आरोप नियम है, अत्यन्त असत् शशशृंगादिको कहीं आरोप देख्यो सुन्यो नहीं। जो कहो, आरोपमें विषयकी प्रतीतिमात्र प्रयोजक है, विषयकी सत्ता प्रयोजक नहीं इति। सो नहीं, असतकी प्रतीति ही बनै नहीं। तहां शंका-जैसे रज्जुमें सर्पकी प्रतीति तैसे प्रपंचकी प्रतीतिमें दोषमात्र कारणकी अपेक्षा है, विषय सत्ताकी अपेक्षा नहीं, इति। सो नहीं। दोषरूपी कारणहू तो तुम्हारे पक्षमें असत् है, अरु असत्तें प्रतीतिरूप कार्यकी उत्पत्ति बनै नहीं, क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति कारणसत्तातें होत है। असत् कारण कहीं हूं देख्यो नहीं। जो कहो रज्जुमें आरोपित असत् सर्पतें भयकंपादिकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है यातें कार्यकी उत्पत्तिको कारण सत्ताकी अपेक्षा, यह नियम भंग भयो, इति। सो नहीं। स्वरूप करकै जो असत् तामें कार्यके उत्पत्तिकी शक्ति ही नहीं बनै। भ्रमस्थानमें हू भयादि-कारण असत् सर्प नहीं, किंतु भयादिको जनक सर्प-विषयक ज्ञान है। जो ऐसे न मानो तो सर्पके ज्ञानका अत्यंत अभाववान् बालक ताकों भय कंपादि हुवा चाहिये सो तो नहीं दीखता है। और उलटा सत्य सर्पहूकों अपने हस्तकरकै स्पर्श करते बालकक् देखतेहैं। अन्यथा

कारणमात्रको असत् माननेतें कार्योत्पत्तिकी कथा नहीं बनत है। जो कहौ असत् रज्जुसर्पतें जैसें सर्पको ज्ञान-होतहै तैसें भयकंपादिकी उत्पत्ति बनती है, तातें असत् कारणता सिद्ध भई इति। सो नहीं। असत्सर्पके ज्ञानको कारण सद्रूप दोष है, सर्प नहीं। अन्यथा तमरूप दोषके अभावमें भी रज्जुमें सर्पज्ञान किससे वारण करोगे, क्योंकि तुम्हारो अभिमत असत्कारण विद्यमान है। तातें असत् कारण नहीं। तहां शंका-भूत भविष्यत् वृष्टिकें ज्ञानको कारण जैसें असत् वृष्टि है, तैसें प्रपंचको हू असत् कारण होत है इति। सो तुच्छ है, अतीत वृष्टिके ज्ञान-को कारण सद्रूप वर्त्तमान अन्नादि विद्यमान हैं अरु भविष्यत् वृष्टिमें ताको द्योतक वर्त्तमान ज्योतिष शास्त्र विद्यमान है। तातें असत् पदार्थको काहू प्रकार करकै कारणत्व बनै नहीं, यह सिद्धांत है। यातें असत्को आरोप नहीं होनेसे विवर्त्तवाद अप्रमाणमूलक है यह सिद्ध भयो। तहां वादीकी शंका-अज्ञानाध्यस्त ब्रह्म जगत्को कारण है, शुद्ध नहीं, इति। सो तुच्छ है। क्योंकि ब्रह्ममें अध्यास असंभव है, सो कहत हैं। जासें अज्ञानाध्यासकी कल्पना सो अध्यासाधिष्ठान निर्विशेष अनुभवमात्र ज्ञानरूप ब्रह्म अज्ञानको विरोधी है, वा नहीं? विरोधी तो कहतें बनै नहीं, क्योंकि अज्ञान ज्ञान अत्यंत

विरोधीको तम प्रकाशकी नाईं अध्यास विरुद्ध है। जो कहौ विरोधी नहीं तो निवर्त्तक विना निवृत्ति न होइगी, अरु ज्ञान अज्ञानको विरोधी नहीं यह केवल उपहासमात्र कथा है। दोऊके स्वरूपकी हानि भई। जो अज्ञानको विरोधी नहीं सो ज्ञानहूं नहीं, जो ज्ञानको विरोधी नहीं सो अज्ञानहूं नहीं। तहां शंका-यद्यपि स्वरूपज्ञान अज्ञानको विरोधी नहीं, तथापि प्रमाणजन्यवृत्तिज्ञान ताको विरोधी है, ता करकै अज्ञानकी निवृत्ति होतहै, इति। सो-कथन तुच्छ है। क्योंकि भिन्नविषय है। तहां विकल्प, प्रमाणजन्य ज्ञानको विषय शुद्ध ब्रह्म है? अथवा इतर है? शुद्ध तो नहीं, क्योंकि तुम्हारे पक्षमें अंगीकार नहीं अरु जो शुद्धको विषय मानो तो प्रमयत्वयोगसे मिथ्या भयो। शुद्ध ब्रह्म मिथ्या है, जातें प्रमाणको विषय है, तुम्हारे मतमें जैसें घट, यह अनुमान प्रमाण है, अरु अपसिद्धांत भयो। अरु वृत्तिप्रतिबिंबित चेतनप्रमाणवाद हू तुच्छ है, जातें बनै नहीं सो पूर्वमें कह्यो है। अरु वृत्ति स्वरूपतें जड अज्ञानरूप सो अज्ञानकी विरोधिनी यह अत्यंत असंभव है। जो कहो वृत्ति जड है, तामें फलित चेतन करकै ज्ञानको उपचार करत हैं, सो तुच्छ है। ज्ञान औपचारिक

---

१ शुद्धं ब्रह्म मिथ्या, प्रमाणविषयत्वात्, तव मते घटादिवत्। २ औपचारिकज्ञानको वास्तवज्ञान न होनेतें मुख्याज्ञानका निवर्त्तक होना असंभव है, यह तात्पर्य है।

कल्पना करकै अज्ञानको विरोधी, यह अत्यन्त असंभव है। जैसें असूर्य यूपमैं आदित्यकी कल्पनातें अंधकार निवृत्त होत नहीं तैसैं दार्ष्टांतमें वृत्तिकरकै अज्ञानकी निवृत्ति होत नहीं। जो कहो, शुद्धतें इतर प्रमाणको विषय है, सोऊ तुच्छ है। जातें भिन्न विषयहै, घटविषय-ज्ञानतें पटादि अज्ञानको नाश देख्यो सुन्यो नहीं, अरु जो कहै सो उन्मत्त है, क्योंकि अज्ञान अरु ताके विरोधी ज्ञानको एकविषयत्व नियम है, सो प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध है। अन्यथा देवदत्तके ज्ञानते यज्ञदत्तके अज्ञानकी निवृत्ति होवे, यह अतिप्रसंग भयो। अरु अध्यस्त अज्ञानको प्रयोजक कौण? अपणो आप है? अथवा ब्रह्म है? अथवा इतर है? आप तो बनै नहीं, क्योंकि आत्माश्रय दोष है, अरु एक अज्ञानको प्रयोज्य प्रयोजकता भई। जो कहो ब्रह्म प्रयोजक है, सो नहीं। क्योंकि प्रयोजक ब्रह्म नित्य है, ताको प्रयोज्य अज्ञान हूको नित्यताप्रसंग भयो। जो कहो इतर प्रयोजक है,। सो नहीं क्योंकि ज्ञान अज्ञान उभयतें इतर वस्तु तुम्हारे अंगीकार नहीं। अन्यथा ताको अन्य प्रयोजक, ताहूको अन्य प्रयोजक, ऐसे अनवस्था होयगी। अरु अज्ञाननें ब्रह्मस्वरूप आवरण कर्यो, अथवा धर्मविशेष? स्वरूपावरण तो बनै नहीं, क्योंकि जगदांध्यप्रसंग होवे, धर्मका आवरण हू नहीं बने, क्योंकि तुम्हारे

ब्रह्ममें धर्मांगीकार नहीं, अन्यथा सिद्धांत भंग होयगो । तहां शंका-यद्यपि निर्विशेषश्रुतिबाधके भयतें धर्म हमारे अंगीकार नहीं सो सांच है; तथापि स्वरूपको आनन्दांशमात्र अज्ञानकरकै आवृत भयो, सत्यादि अंशको आवरण नहीं, तातें कहे दोषको प्रसंग आवे नहीं, इति । सो तुच्छ है, क्योंकि आनन्दादिधर्म ब्रह्ममें तुम्हारे अंगीकार नहीं । अरु निरवयव निर्विशेष वस्तुमें अंशकल्पना अत्यन्त असंभव अरु अन्याय है । जो कहौ सावयव है, तो ब्रह्म मिथ्या भयो । शुद्ध ब्रह्म मिथ्या, जातें अंशवान् है; जैसें घटादि । यह अनुमानप्रमाण है । अरु निरवयवश्रुतिको व्याकोप भयो । अरु अज्ञानको आश्रय ज्ञानमात्र ब्रह्म है ? अथवा जीव है । अथवा अन्य है? ज्ञानमात्र तो बनैं नहीं, स्वप्रकाशवस्तु अज्ञानको आश्रय यह अत्यन्त असंभव है । जैसे सूर्यमें अन्धकार उन्मत्त विना कौन कहै । जीव हू नहीं, क्योंकि जीव अज्ञानको कार्य है, यातें अज्ञानके उत्तरभावी है । अन्यहू बनै नहीं, क्योंकि अज्ञान अरु ब्रह्मतें अन्य चेतन तुम्हारे मतमें है नहीं । अरु अज्ञानको विषय कोण है, शुद्ध अनुभवमात्र है? अथवा अन्य है? शुद्ध तो बनै नहीं, क्योंकि शुद्ध ब्रह्मको तुमने ज्ञानको विषय

---

१ शुद्धं ब्रह्म मिथ्या, सांशत्वात्, तव मते घटादिवत् । निरवयवशास्त्रव्याकोपान्निर्विशेषत्वहानेश्च ।

नहीं माना है। अरु माननेतें ज्ञानका विषयभी मानना पडेगा, क्योंकि जो ज्ञानको विषय सोई अज्ञानको विषय यह नियम है, अन्यथा अज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं। अरु ज्ञानका विषय होनेसे मिथ्या होगा। अन्यहू नहीं ज्ञान अज्ञान उभयतें भिन्न तृतीय पदार्थ ता कालमें विद्यमान नहीं। क्योंकि अन्यपदार्थ तुम्हारे पक्षमें अज्ञानको कार्य है। तहां शंका--जैसें गृहमें रहे अन्धकारको आश्रय अरु विषय गृह ही है, सो प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है। तैसें शुद्ध ब्रह्म अज्ञानको आश्रय अरु विषय बनत हैं, सो मैं अज्ञ हूं, मैं जानत नहीं, इत्यादि प्रतीतिकरकै सिद्ध है, इति। सो तुच्छ है। जातें दृष्टांत विषम है, सो कहतहैं, गृह अरु अन्धकार दोऊ अज्ञान हैं यातें परस्पर विरोधी नहीं क्योंकि सजातीय हैं, दोऊ प्रकृतिके कार्य हैं। दार्ष्टांतमें तो ज्ञान अरु अज्ञान अत्यन्त विजातीय है, यातें परस्पर विरोधी हैं। सूर्य (शुद्धब्रह्मस्थानीय) अन्धकारको आश्रय अरु विषय है यह कोटि चतुर्मुख हू प्रतिपादन करणेकों समर्थ नहीं। अरु सामग्री विना अध्यास भी बनै नहीं। तहां भ्रमकी सामग्री तीन हैं। सादृश्य, संस्कार; दोष। तहां रजतके भ्रममें रजतसादृश्य शुक्तिमें है। अरु संस्कार अरु दोष पुरुषमें है। दार्ष्टां-

---

१ शुद्धं ब्रह्म मिथ्या, अज्ञानविषयत्वे सति, ज्ञानविषयत्वात्, घटादिवत्।

तमैं ब्रह्म निरवयव नीरूप है, यातें ताको सादृश्य बनै नहीं । "तांको सदृश कोई नहीं" यह श्रुति प्रमाण है, तातें सादृश्य नहीं । संस्कार अरु दोषहू बनै नहीं, जातें ताको आश्रय कोई ज्ञाता नहीं । तहां केवल निर्विशेष अधिष्ठानमात्र तुम्हारे अंगीकार है । जो कहौ अधिष्ठानही ताको आश्रय है, सो नहीं । निर्विशेषवस्तुको आश्रय होना देख्यो सुन्यो नहीं, क्योंकि ज्ञाताही भ्रमको आश्रय, यह नियम है । ज्ञानमात्र अज्ञानाश्रय बनै नहीं । तहां शंका-भ्रममैं भ्रमकी जनकसमाग्री अपेक्षित है सो सांच, परन्तु सादिभ्रममैं सामग्रीकी अपेक्षा है, अनादिमैं नहीं । अरु हमारे सिद्धांतमैं भ्रम अनादि है तातैं दोष नहीं इति । सो तुच्छ है । अनादि होतसंतें भावरूप है, यह तुम्हारो सिद्धांत है, सो अनादि भावरूपकी निवृत्ति संभव नहीं, यातें अनिर्मोक्षप्रसंग भयो । अज्ञान ज्ञानकरकै निवृत्ति होनेका योग्य नहीं जातें अनादि भावरूप है, जैसैं ब्रह्म, यह अनुमान है । जो कहौ भावरूप नहीं, किन्तु ज्ञानको अभावरूप है, सोभी बनै नहीं, जातें ज्ञान अरु अभावको अध्यास अत्यन्त असंभव है, ज्ञानमैं ज्ञानाभावकी कल्पना उपहासमात्र है । जो कोई देवतनकोप्रिय तर्कनिपुण अभाव अंगीकार करै तो

---

१ न च सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य ।

कार्यकी उत्पत्ति सर्वथा बनै नहीं, यातैं भावरूप द्रव्यको अभावरूप उपादान कहूं देख्यो सुन्यो नहीं। भावरूप जो अज्ञान सो उपादानकारण बनै नहीं। जातैं अवस्तु है, जैसैं शशश्रृंग, यह अनुमान है। अरु अज्ञानको नाशक नहीं, तातैं अनिर्मोक्षप्रसंग भयो। सो कहत है, यह रजत है या प्रतीतिमैं शुक्ति अधिष्ठान है, सो शुक्ति इदंतासामान्यधर्मविशिष्ट होयके भ्रमको साधक है। शुक्तित्वविशेषधर्मविशिष्ट ज्ञान ताको बाधक है। दार्ष्टांतमैं निर्विशेष ज्ञानमात्र तुम्हारे अंगीकार है, सो अधिष्ठान बनै नहीं। तथापि जैसैं तैसैं जो भ्रमको साधक मानौ तो ताको निवर्त्तक विशेषधर्मविशिष्ट ज्ञान नहीं, कि जाके साक्षात्कारतें निवृत्तहोय, याते सर्वथा अज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं, अरु अधिष्ठान निर्विशेषमात्र ताको विरोधी नहीं, यह तुम्हारो सिद्धांत है, सो उलटो

---

१ अध्यासाधिष्ठानस्य तत्साधकबाधकोभयविधधर्मत्वनियमादपि निर्विशेषे कथमप्यध्यासासिद्धेः। तथाच यथेदं रजतमित्यत्र प्रतीतौ तदधिष्ठानभूताया शुक्तेरुभयधर्मवत्त्वेनैव तत्साधकबाधकैकतरसामान्येदन्तावच्छिन्नतया भासमानायां तस्यां तद्विरोधिद्वितीयशुक्तित्वरूपविशेषधर्मावच्छिन्नाधिष्ठानस्वरूपावरणे च तत्प्रतीतिसिद्धेः। पुनश्च तद्विरोधिशुक्तित्वावच्छिन्नाधिष्ठानभूतशुक्तिविषयकप्रत्यक्षज्ञानेनैव, नेदं रजतमपि तु शुक्तिरेवेत्याकारकेण तद्बाधनियमात्। २ शुद्धस्वरूपस्य त्वयाऽज्ञानाविरोधित्वाऽभ्युपगमेन कथञ्चित्कूटकल्पनयाऽध्यासाङ्गीकारेऽपि विशेषधर्मानंगीकारात्तद्बाधकविशेषधर्मावच्छिन्नाधिष्ठानविषयकप्रत्यक्षज्ञानाभावेन सर्वथाऽपि तन्निवृत्त्यभावादनिर्मोक्षप्रसङ्गो दुर्वारः।

भ्रमको साधक है। धर्म अंगीकार करो तो द्वैतापत्ति, अरु अपसिद्धांत, ब्रह्ममैं जो भ्रम सो नाशयोग्य नहीं, क्योंकि उसका नाशक कोई नहीं। व्यतिरेकमैं रजत-भ्रममैं जैसैं शुक्तिज्ञान, यह अनुमान है। ब्रह्माज्ञान-वादमें प्रमाण कोई नहीं, याते असंभव है। तहां शंका, मैं अज्ञ हूं कछु जानत नहीं, यह प्रत्यक्षप्रतीति यामैं प्रमाण है। तब कैसैं असंभव इति। सो नहीं। कही प्रतीतिको विषय भिन्न है, हमारे सिद्धांतमैं तो उसका विषय जीव है, तुम्हारे सिद्धांतमैं अहंकार विषय है। दोऊके मतमैं ब्रह्म उसका विषय नहीं। अन्यथा ब्रह्म अज्ञ है, ज्ञान अज्ञ है, आत्मा अज्ञ है, यह प्रतीति होयगी, सो तो होती नहीं। जो कहो अहमर्थ आत्मा है, ब्रह्म है। तातें ता प्रकार प्रतीति होतहै, इति सो नहीं। सो तो अहमर्थ स्वरूप भयो, अरु मुक्त प्राप्य भयो, हमारे हू इष्टापत्ति है। परंतु तुम्हारो सिद्धांत सर्वथा भंग भयो। तहां शंका--प्रत्यक्ष प्रतीति तामैं प्रमाण मत हो किंतु श्रुति यामैं प्रमाण है "असत् न होत भयो, सत् नहीं होतभयो किंतु तम[1] होत भयो"

---

१ नासदासीन्नोऽसदासीत्तम आसीत् । असच्छब्दोऽत्र महदादिसूक्ष्मवस्तुप्रतिपादनपरः, सच्छब्दश्च महाभूतादिस्थूलकार्यप्रतिपादनपरः, तमःशब्दस्तयोर्हेतुभूतप्रकृतिवाचकः । तथा तदानीमसत्सूक्ष्मं महदादि नासीत्, सत्स्थूलमाकाशादिकं नासीत्, किन्तु मूलकारणरूपा प्रकृतिरासीदिति श्रुत्यर्थः ।

यह सत् असत् अनिर्वचनीय अज्ञानमैं प्रमाण है इति। सो तुच्छ है। श्रुतिमैं स्थूलसूक्ष्मतैं भिन्न ताको कारण मूलप्रकृति परमेश्वरकी अचेतनशक्ति तमश्शब्दको अर्थ है, तातैं तुम्हारी अज्ञानकल्पना प्रमाणशून्य है। अरु अज्ञानको लक्षण भी बनै नहीं। ताहू हेतुतैं असंभव है। सो कहत हैं। जो कहो मिथ्याज्ञान अज्ञानको लक्षण है, तो वनै नहीं। क्योंकि मिथ्याको लक्षण बनै नहीं। विषय विना जो प्रतीति है सो मिथ्या, यह असंभव है। गगनकुसुमकी तुल्य असद्वस्तुकी प्रतीति होय नहीं, सो पूर्वमैं विस्तारकर कह्योहै ।१। याहीतै मिथ्याज्ञानको संस्कारहू अज्ञानको लक्षण नहीं। क्योंकि संस्कार अनुभवपूर्वक होतहै।२। ज्ञानको प्रागभाव हू अज्ञानको लक्षण नहीं बनै, जातैं प्रतियोगीको ज्ञान नहीं, अरु प्रतियोगीके ज्ञान विना अभावको ज्ञान असिद्ध है। जो कहौ प्रतियोगीको ज्ञान है तो ताको अभाव कैसैं बनै। अरु जो ज्ञानके विद्यमान हू अभाव अंगीकार है तो मुक्तको भी संसारकी प्राप्ति भई। जातैं तुल्य न्याय है।३। ज्ञानकरकै जो निवृत्ति होय सो अज्ञान है, सोऊ नहीं। धारावाहीके प्रथमज्ञानमैं अतिव्याप्ति भई।४। जो कहो सर्वको उपादान सो अज्ञान है, इति। सो नहीं। अद्रव्यको उपादान कहीं देख्यो

सुन्यो नहीं, अरु ब्रह्ममैं अतिव्याप्ति भई। ५। तातें (इन दोषोंसे) अज्ञानकारणवाद अत्यंत असंभव है। अरु मिथ्याको लक्षण नहीं बनै, अरु जो कहौ, सत्तें विलक्षण सो मिथ्या, सो नहीं। जातें शशश्रृंगादिमैं अतिप्रसंग भयो। अन्यथा ताहूकी प्रतीति होय सो तो कहूं होत नहीं। १। असत् विलक्षण सो मिथ्या यह कहसकौ नहीं, क्योंकि ब्रह्ममैं अतिव्याप्तिप्रसंग भयो, ब्रह्म हू असत्तें विलक्षण है यातें। २। सत् असत् उभयविलक्षणकोभी मिथ्या कहसको नहीं। सत् असत् भिन्न पदार्थ कोऊ नहीं, अत्यंत असंभव है। ३। सत्त्वको अनधिकरण होयके जो असत्त्वको अधिकरण न होय सो मिथ्या यह कहत बनै नहीं, क्योंकि निर्धर्मकब्रह्ममैं अतिव्याप्ति भई। ४। अपनें समानाधिकरण जो अपनो अत्यंताभाव सो मिथ्याहै, यह भी बनै नहीं, क्योंकि संयोगादिमैं अतिव्याप्ति भई। ५। तातें मिथ्याको लक्षण बनैं नहीं, तो मिथ्या प्रपंच हू नहीं, यह वैदिकनको सिद्धांत है सो पूर्व कहौहै। तातें उक्तलक्षण ब्रह्म श्रीवासुदेव जगत्कारण है। "तन्निष्ठकों[1] मोक्ष है। ताकों तव ताही चिर है जब[2]

---

१ तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात। १। १। ७॥ २ "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये" इति श्रुत्या तस्य मोक्षे चिरमित्यनेन कालप्रतिबन्धकता, न विमोक्ष्ये इत्यनेन मोक्षाभावः, अथ सम्पत्स्ये इत्यनेन भविष्यत्काले तद्भाव्यता च स्पष्टं कण्ठरवेण पठ्यते।

ताही छूटै नहीं, अथ प्राप्तहोयगो" यह श्रुति प्रमाण है कोईक या श्रुतिकरकै जीवन्मुक्ति कहत हैं सो तुच्छ है। क्योंकि "चिर है होयगो" इत्यादि प्रयोगकरकै मुक्तिको अभाव श्रुति कहतहै। तातैं ब्रह्मसाक्षात्कारसमयमैं निःशेष कर्मादिकी निवृत्तिसे मोक्ष होत है, यह वैदिक सिद्धांत है। यामैं यह भाव है, तुम्हारे पक्षमैं ब्रह्मसाक्षात्कारतैं मूलाज्ञानको नाश अंगीकार है, अथवा नहीं? नाश पक्ष तो बनैं नहीं, कारण नाश होत संतैं कार्यकी स्थिति कैसैं बनै, क्योंकि भावरूपकार्यकी निरुपादान स्थिति नहीं है। जो कहौ उपादानकारणसहित कार्य रहत है, इति। सो नहीं। तहां उपादान ब्रह्म है, अथवा और है? जो ब्रह्मकों उपादान मानो तो ब्रह्म नित्य है कारणके विद्यमान होतैं कार्यकी अनिवृत्ति होयगी अरु अनिर्मोक्षप्रसंग होवेगो। सो पूर्व कह्यो है। जो कहौ और कारण है, सो नहीं। अविद्या अरु उसके कार्य विना अन्य पदार्थ कोई है नहीं, प्रारब्ध अविद्याको कार्य है, अविद्याके नाशमैं प्रारब्धकी स्थिति बनै नहीं, तंतु विना जैसैं पटकी स्थिति नहीं है। जो कहौ प्रारब्धभोगके निर्वाहार्थ कछु काल अविद्या रहत है, इति। सो नहीं। विद्या उत्पत्तिके उत्तर जो अविद्या रहै तो अविद्यानाशक जो विद्याको स्वभाव सो त्याग भयो। जो कहौ प्रारब्ध

भोगोत्तरकाल नाशक है, तत्काल नहीं इति । सो नहीं; एकको दो स्वभाव असंभव है । जो कहौ आवरणप्रधान अज्ञान नाश भयो, विक्षेपप्रधान अज्ञानकी अनुवृत्ति प्रारब्धभोगनिर्वाहके अर्थ है, इति । सो नहीं । अज्ञान दोय नहीं । जो कहो एक अज्ञान दोय शक्तिविशिष्ट है, इति । सो नहीं । एक अविद्याकी युगपत् स्थिति अरु निवृत्ति अत्यन्त-असंभव है । जो कहौ शक्तिकी निवृत्ति ही निवृत्तिशब्दको अर्थ अंगीकार है, इति । सो नहीं । शक्ति शक्तिमान्को अभेद है । भेद मानौ तो अज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं, क्योंकि निवर्त्तक कोई नहीं । जो कहौ प्रारब्धकी समाप्ति ताको निवर्त्तक है, इति । सो नहीं । कार्यके नाशकरके कारणको नाश असंभव है, अरु अप्रमाण है । जो कहौ पूर्वज्ञानही ताको निवर्त्तक है । सो नहीं । पूर्वज्ञान आवरणशक्तिको निवृत्तकरके उपक्षीण भयो । जो कहौ ब्रह्मको स्वरूपज्ञान ताको निवर्त्तक है, सो नहीं । तुम्हारे मतमैं ब्रह्मस्वरूपज्ञान तो अज्ञानको साधक है । तासों अज्ञानको विरोधी अंगीकार नहीं । अरु जो द्वितीय पक्ष मानो कि ज्ञानकरके अज्ञान निवृत्ति नहीं होय, इति । सो नहीं । क्योंकि ज्ञानको निरर्थकताप्रसंग भयो, अरु अनिर्मोक्षप्रसंग भयो । तातें ब्रह्मसाक्षात्कारतें निःशेषकर्मकी निवृत्ति अरु सद्योमोक्ष, यह वैदिक-

सिद्धांत है। अन्यथा प्रारब्धके विद्यमान होनेपर मुक्ति संज्ञामात्र है, जैसें अन्धेको नाम कमलनयन, जन्मदारिद्रको नाम लक्ष्मीधर, मूकको नाम वागीश। कर्मके अनाकारतें ताको कार्य कामक्रोधादिक अवश्य हैं। तब हम मुक्त हैं यह केवल अभिमानमात्र है, मूर्खनकी वंचनाके अर्थ, यह सिद्धांत भयो। तहां शंका--जीवन्मुक्तिके नहीं अंगीकार करे वेदांतसम्प्रदायको उच्छेद प्राप्तभयो, अज्ञानी बद्धाचार्यकरकै ज्ञानको उपदेश बनै नहीं। अन्यथा अन्धपरंपरान्याय भयो, इति। सो तुच्छ है। सिद्धांतमैं वेदांतके प्रवर्त्तकाचार्य मुक्तनके अवतार हैं, यातें परमेश्वरकी तुल्य अनेकरूपावतारकी सामर्थ्य तिनकी श्रुतिसिद्ध है। "सो एक प्रकार होय सहस्र प्रकार" इति, सो पूर्व कह्यो है। तहां शंका--जो ज्ञानोत्तर प्रारब्धकी अनुवृत्ति न मानैं तो सूत्रविरोध भयो। "ज्ञानके प्राप्त

---

१ स एकधा भवति, सहस्रधा भवतीत्यादि। २ तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।४।१।१३। एवम्भूतेन ध्यानपरिपाकेन ध्रुवास्मृत्याख्यज्ञानाधिगमे सिद्धे सति उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ उपपद्येते। तत्रोत्तरभाविनः क्रियमाणस्य पापस्याश्लेषः, तत्प्राग्भूतस्य सञ्चितस्य तस्य नाशः। कुतः ? तद्व्यपदेशात्। "एवम्विदि पापं कर्म न श्लिष्यते, एवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते" इत्यादिव्यपदेशात्। "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" इति शास्त्रं कर्मणां फलजनने सामर्थ्यं द्रढयति, "एवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते" इति शास्त्रं तु विद्यायास्तत्सामर्थ्यनिवारणशक्तिपरमिति द्वयोः शास्त्रयोर्भिन्नविषयत्वान्न विरोधः। यथाऽस्तेजसोः शीतजननतन्निवारणशक्तिविषययोर्द्वयोः प्रमाणयोरपि विषयभेदात्प्रामाण्यमेवमिहापीति सूत्रार्थः।

हुये पूर्व उत्तर कर्मको अस्पर्श अरु विनाश होत है" यह सूत्रार्थ है, इति । सो नहीं । सूत्रमैं ज्ञानसमय पूर्व उत्तर कर्मको नाश कह्यो सो सांच, परन्तु निदिध्यासनपरिपाकसों भयो जो दृढ परोक्षज्ञान सो सूत्रमैं कह्यो है, साक्षात्कारको ग्रहण नहीं। साक्षात्कारके उत्तर प्रारब्धकी स्थिति बनै नहीं, सूर्यके उदयमैं अन्धकारकी नाईं । परोक्षज्ञानकरकै पूर्व उत्तरकर्मको अस्पर्श विनाश होत है यामैं प्रमाण क्या ? यह जो वादी शंका करै तो श्रुति ही यामैं प्रमाण है "सत्त्व शुद्ध हुये ध्रुवा स्मृति होत है, ध्रुवास्मृतिके होनेतें सर्वग्रंथिनकी विप्रमोक्ष होत है" इत्यादि श्रुति है । तहां शंका- साक्षात्कारके उत्तर जो जीवन्मुक्ति न मानो तो श्रुतिव्याकोप होयगो । "यहां ही ब्रह्मसुख करत है" यह श्रुति कहत है, सो नहीं। यहां हीको अर्थ ध्यानसमाधि है, यातें ध्यानसमाधिमैं आविर्भूत ब्रह्मको सुख भोग करत है, यह श्रुतिको अर्थ है, तातें जीवन्मुक्ति बनै नहीं यह वैदिक सिद्धांत है। या प्रकार प्रसंगतें प्राप्त भयो अध्यास ताकी अनुपपत्ति वर्णनकरी, तामैं जीवन्मुक्तिको शास्त्र निर्मूलता अरु अयुक्ति विस्तारकरकै निरास कर्यो । अब प्रकरणप्राप्त त्रिवर्तवादकी प्रमाणहीनता कहत हैं । विवर्तमैं

---

१ आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।

प्रमाण नहीं यह सिद्धांत सुनकै वादी शंका करत है, कि वाचारंभण[1] श्रुति विवर्त्तमैं प्रमाण है । तामैं सब विकारको नाममात्र कह्यो है । तातें कथनमात्र प्रपंच है सत् नही, इति । सो तुच्छ है । क्योंकि श्रुतिमैं विकारशब्द साक्षात् विद्यमान है, सो विकार परिणामद्रव्यको होत है, विवर्त्तमैं नहीं । अन्यथा वाचारंभणश्रुतिमैं भ्रांति नामधेय है, विवर्त्त नामधेय है, ऐसें पाठ होता सो नहीं है । तातें कही श्रुति विवर्त्तमैं प्रमाण नहीं । अरु तुम्हारे मुखपठित रज्जु, सर्प, शुक्ति, रजतादि विवर्त्तवादिदृष्टांत श्रुतिपाठमैं देखे सने नही । अरु छांदोग्यमैं कही श्रुतिमैं प्रतिज्ञाको बाध भयो, सो कहतहे । उत[2]तम जो आदेश ताहि शिष्य पूछतभयो, जा श्रवणकरकै नहीं सुन्यो सुन्यो होय, नहीं मनन कर्यो मनन होय, जाके जानैं अज्ञात जान्यो जाय" इति । तहां कारणके ज्ञानकरकै सर्वकार्यको ज्ञान होत है, यह समाधान कह्यो । "एक मृत्पिंडके ज्ञानतैं सर्व मृन्मयको ज्ञान होत है" इत्यादि श्रुतिकरकै । तहां जैसें मृत्पिड-

१ वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् । २ उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति, कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति । ३ यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद् यथैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यादित्यादिना कारणविज्ञानेन कार्यविज्ञानं प्रतिपादितम् ।

ज्ञानकरकै मृन्मय घटादिको ज्ञान होतहै, तैसैं शुक्तिज्ञानतें रजतमात्रको ज्ञान, रज्जुज्ञानतें सर्पमात्रको ज्ञान, वालुकाज्ञानतें जलमात्रको ज्ञान देख्यो सुन्यो नहीं अरु बनै नहीं। तातें विवर्त्तवाद श्रुतिप्रमाणशून्य है। तहां वादीकी शंका "यह प्रपंच आगै असत् होत भयो" यह श्रुति प्रपंचको असत् कहत है, सो प्रमाण है इति। सो नहीं। ताकों विकारी सत्ताकरकै श्रुति असत् कहतहै, स्वरूप करकै नहीं। सो विष्णुपुराणमें कह्यो है "हे मुनिवर मैत्रेय! यह जगत् अक्षय है परंतु आविर्भाव तिरोभाव, जन्म, नाश विकल्पवान् हैं।" कार्य सद्रूपही कारणतें व्यक्त होतहै। अन्यथा सिकता तें तैलकी, अग्नितें यवादिके अंकुरकी उत्पत्ति होय, सो देखी सुनी नहीं, तातें अव्यक्त नाम रूप सूक्ष्म कार्यको असत् शब्दकरकै श्रुति कहत है। व्यक्त नाम रूप भयेसंतें सत् कहतहै। यातें उभयश्रुतिविरोध नहीं। यह विष्णुपुराणमें ध्रुवजीनें कह्यो भी है कि "अल्प बीजमें जैसें वडो वटवृक्ष रहतहै तैसें प्रलयमैं सूक्ष्मरूप जगत् तुम्हारे विषे रहतहै। बीजतें जैसे अंकुर होतहै, तातें वडो वट क्रमकरकै होतहै, तैसें तुम्हतें यह जगत् सृष्टि समयमैं

---

१ असद्वा इदमग्र आसीत्। २ तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्। आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत्। ३ न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः। संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि।

विस्तारकों पावत है" इति। जैसें पट लपेट्यो नाम रूपकरके ग्रहण नहीं होयहै परंतु सत् है । फैलानेतें नाम रूपसाहित प्रत्यक्ष प्रमाणकरके ग्राह्य है । तैसे अव्यक्त नाम रूप जगत्कों पृथक् प्रलयसमयमें ग्रहण नहीं होत है, परंतु सत् है। सृष्टिसमय व्यक्त नामरूपकरके प्रत्यक्ष आगम प्रमाणकरके ग्रहण होतहै। यह सूत्रकारको सिद्धांत है । तहां शंका- प्रपंच मिथ्या है, जातें दृश्य है, जो दृश्य है, सो मिथ्या है, शुक्ति रूप्यकी नाईं । यह अनुमान प्रपञ्चके मिथ्यात्वमें प्रमाण है, इति। सो तुच्छ है। जातें हेत्वाभास है। दृश्यत्व हेतुको साध्याभाववान् ब्रह्ममें अतिव्याप्ति होनेतें असाधारणानैकांतिक है । ताही (दृश्यत्व) हेतुकरके ब्रह्मको मिथ्यात्व सिद्ध होतहै । ब्रह्म मिथ्या, क्योंकि दृश्य है, जो दृश्य है सो मिथ्या, तुम्हारे पक्षमें जैसें प्रपंच। यह अनुमान है, "अरे मैत्रेयि! आत्मा द्रष्टव्य हैं, जा समैं अन्य ईशको देखतहै, अग्र सूक्ष्मबुद्धि करकें

---

१ बीजादङ्कुरसम्भूतो न्यग्रोधः सुसमुत्थितः। विस्तारञ्च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत्। २ पटवच्च। २।१।१८॥ यथा सङ्कुचितः पटः पटत्वेना-गृह्यमाणोऽपि पट एव, प्रसारणे तु स्पष्टतया गृह्यत एव। तथा तिरोभावावस्था-यामनभिव्यक्तमपि कार्यं नामरूपाभ्यामगृह्यमाणमपि सदेव। आविर्भावावस्थायान्तु प्रत्यक्षागमाभ्यां सत्त्वेन स्पष्टं गृह्यते। इति सूत्रार्थमाज्ञापयामासुर्वेदान्तरत्नमञ्जूषा-यां श्रीभगवत्पुरुषोत्तमाचार्याः। ३ ब्रह्म मिथ्या, दृश्यत्वात्, तव मते प्रपञ्चवत्।

देखतहै, सदा सूरि देखत हैं" इत्यादि श्रुति ब्रह्मके दृश्यत्वमैं प्रमाण हैं। तहां वादीकी शंका "जाको चक्षुकरके ग्रहण नहीं, जाके रूपमैं उपमा नहीं, जाको चक्षुकरकै कोई नहीं देखत है" इति। तामैं जो "परमात्मा है सो नित्य, निर्गुण है, जाको देवता अरु मुनि अरु मैं ब्रह्मा अरु शंकर नहीं जाणैहैं सो विष्णुको परमपद है" इत्यादि श्रुतिस्मृतिमें निर्गुण ब्रह्मको ज्ञानाविषय कह्योहै यातें पूर्वपक्षकी दृश्यत्वश्रुतिको मायावछिन्न ब्रह्म विषय है। मायावाच्छिन्न ब्रह्मके मिथ्यात्वकी हमें इष्टापत्ति है इति। सो तुच्छ है, क्योंकि परात्परको श्रुति स्मृति दर्शनको विषय कहत है। "परतें परै पुरीमैं शयनकरै ताहि देखत है, ताके अनंतर निष्कलको देखत है, ध्यान करंत संते" इति मुक्तिविधायक श्रुति दर्शनको विषय परब्रह्मको कहत है। अन्यथा मुक्ति बनै नहीं, अथवा मिथ्याकी प्राप्ति तुम्हारी मुक्तिमैं भई, "प्रधान पुरुषाव्यक्त का

१ आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः, यदा पश्यत्यन्यमीशम्, दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या, सदा पश्यंति सूरयः। २ न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा, न सदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्, तत्र यः परमात्मा तु स नित्यो निर्गुणः स्मृतः। ३ यं न देवा न मुनयो न चाहं न च शङ्करः। जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ४ स एवास्माज्जीवघनात्परात्परं पुरुषमीक्षते, ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः। ५ प्रधानपुरुषाव्यक्तकालानां परमं हि यत्। पश्यन्ति सूरयो नित्यं तद्विष्णोः परमं पदमित्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यो दर्शनविषयस्यैव परत्वाभिधानात्।

लतें जो परै ताहि सूरि नित्य देखतहैं" या स्मातिमैं शुद्ध-हीको दर्शनको विषय कह्यो। यातें दर्शनाविषय श्रुति-स्मृति संस्कारशून्य दर्शनायोग्य चक्षुरादिको निषेध करत है। सो श्रीमुख गायोहै। "हे अर्जुन! इन नेत्रकरकै तू मोकों देखनेकों समर्थ नहीं, यातें दिव्य चक्षु मैं देतहूं सो मेरे ऐश्वर्यको तू देख" इति। तातें पूर्वोक्त असत् हेतुक तुम्हारो अनुमान प्रणाम नहीं, जातें सत्कार्यवाद सि-द्धांत श्रेष्ठ है। "सौम्य! यह कार्य आगे सत् होत भयो, प्रकृति अनादि अनंत है, ऊर्द्ध जाको मूल, नीचे जाकी शाखा है, ऐसो यह अश्वत्थ सनातन है, प्राण सत्य है, ताहूको यह सत्य हैं, अज्ञ या जगत्कों असत्य कहत हैं, जे हरिकी पराशक्ति नहीं जानत हैं, जो सत्यरूप जगत्कों सृजके सत्यकर्मा होतभयो, जाको सत्यकर्मा कहतहैं, जातें सत्य विश्वकों यह सृजै है, जाकों नित्यकर्मा कहत है, जातें यह नित्य विश्वको करतहै, प्रकृति अष्टरूपा

---

१ न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्। रसदेव सौम्येदम्र आसीत्, गौरनाद्यन्तवती, ऊर्द्धमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्, प्राणा वै सत्यम्, तेषामेष सत्यम्, असत्यमाहुर्जगदेतदज्ञाः शक्तिः हरेर्न विदुर्ये परां हि। यः सत्यरूपं जगदेतदीदृक् सृष्ट्वा त्वभूत् सत्यकर्मा महात्मा। अथैनमाहुः सत्यकर्मेति सत्यं ह्येवेदं विश्वमसौ सृजते, अथैनमाहुर्नित्यकर्मेति नित्यं ह्येवासौ कुरुते, अष्टरूपामजां ध्रुवाम्।

है अजा ध्रुवा है" इत्यादि श्रुति है । "अवर कार्य सत्य है" इत्यादि सूत्र प्रमाण है । "ऊर्द्ध मूल है, नीचै जाकी शाखा है, ऐसो यह अश्वत्थ अव्यय है, जे असुर हैं ते जगत्को असत्य अरु निराधार कहत हैं, अरु कर्त्ता ईश्वरकरकै शून्य कहतहैं" । इति भगवद्वचन प्रमाण है। इतने ग्रंथकरके सब दोषसंबंधशून्य, अचिंत्य, अनंत, स्वाभाविक, कल्याणगुणसागर, जगज्जन्मादिकारण, सर्वशास्त्रवेद्य, सबको उपास्य, मोक्षदाता, मुक्तजनप्राप्य, परब्रह्म, भगवान् श्रीपुरुषोत्तम है यह प्रतिपादन करयो । अब लक्ष्मी गोपिकादि शक्तिको ता सहित नित्य संबंध प्रतिपादन करत हैं ।

अङ्के तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥ ५ ॥

अचिंत्यशक्ति भगवान् श्रीपुरुषोत्तमके वामांगमें रुक्मिणी-नाम लक्ष्मीको स्मरण करत हैं। तहां लक्ष्मीको

---

१ सत्त्वाचावरस्य ।२।१।१६। अवरस्य कार्यस्य कारणे सत्त्वात् यत्र यस्याभावो न तत्तत उत्पद्यते । यथा अग्नेर्व्रीह्यंकुरादिः, सिकताभ्यस्तैलमित्यर्थः । यथा च कारणं ब्रह्म त्रिषु कालेषु सत्त्वं न व्यभिचरति, तथा कार्यरूपं विश्वमपि त्रिषु कालेषु सत्त्वं न व्यभिचरतीति सूत्रार्थः । २ ऊर्द्धमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्, असत्यमप्रतिष्ठञ्च जगदाहुरनीश्वरम् ।

स्वरूप कहत हैं। भगवान्के विग्रह गुणादिके अनुरूप विग्रहगुणादियुक्त है। सो श्रीपराशरजीने कह्योहै "देवता अवतारमें देवतादेहरूपी लक्ष्मी है, मानुषावतारमैं मानुषी है, विष्णुके देहके अनुरूप यह लक्ष्मी अपनों रूप करत है। रघुवंशी रामावतारमैं यह सीता होतभई, श्रीकृष्णावतारमैं यह रुक्मिणी होतभई, अन्य अवतारनमेंभी यह विष्णुकी अनपायिनी है" इति। अब ताकों विशेष कहत हैं--देवी है। गायत्रीमैं कह्यो जो देव ताकी पत्नी देवी। "लक्ष्मी देवीको हम आवाहन करत हैं" यह श्रुति है। देवीशब्दको योगवृत्तिकरके ताके गुण कहत हैं। अनेकावतार करकै जो क्रीडा करै सो देवी। "विष्णुके अनुरूप अपनो तनु करत है" यह स्मृति है।१। देवनके शीलगुण अपहारकरकै जो जीत्यो चाहै सो देवी है। "हे देवि जाकों तू पराङ्मुख भई ताके शीलादि गुण तत्काल विपर्यय होत हैं" यह स्मृति है।२। अनेक रूप अनेकप्रकारकरकै जो व्यवहार करै सो देवी है। "विष्णु अर्थ है यह वाणी है, विष्णु न्याय है, लक्ष्मी नीति

---

१ देवत्वे देवदेहेयं मानुषत्वे च मानुषी। विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्॥ राघवत्वे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि। अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषाऽनपायिनी। २ श्रियं देवीमुपह्वये। ३ विष्णोर्देहानुरूपां वै विधत्ते ह्यात्मनस्तनुम्। ४ सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः। पराङ्मुखी जगद्धात्रि यस्य त्वं विष्णुवल्लभे॥

है। विष्णु बोधरूप है, यह बुद्धिरूपा है। विष्णु धर्म है, यह सत्क्रिया है"। ३। गुणनकरकै जो प्रकाशे सो देवी, "सर्वभूतनकी ईश्वरी है, यशकरकै लोकमें प्रकाशे है" यह श्रुति है। ४। देवतनकी स्तुतिको विषय सो देवी, "सर्वभूतनकी ईश्वरी है ताहि हम नमस्कार करत हैं। लक्ष्मी प्रफुल्लितकमलसमान जाके नेत्र विष्णुके वक्ष-स्थलमैं स्थिति" यह इंद्रादिको स्तोत्र है। ५। सर्वत्र जो व्यापै सो देवी है। "लक्ष्मी जगन्माता नित्य है जैसैं सर्वगत विष्णु है हे मैत्रेय! तैसैं सर्वगत लक्ष्मी है"। ६। मोद करै सो देवी है। "आनंदमूर्त्ति है, सदानंद ब्रह्मके आश्रयहै, सूर्या है, हिरण्यमयी हैं सर्वभूतनकी ईश्वरी है" यह श्रुति हैं। ७। विशेषांतर कहत हैं। सहस्रपरिचा-रिका सखी जाकी सेवा करत हैं। सेवाको प्रयोजन कहत है। चतुर्विध भक्तनको चतुर्विध पुरुषार्थकी दाता अधिकारके अनुकूल सकल वांछित इष्टकी दाता, "यज्ञ-विद्या तू है, महाविद्या अरु गुह्यविद्या अरु आत्मविद्या है,

१ अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः। बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्। २ ईश्वरीं सर्वभूतानां, यशसा ज्वलंतीं श्रियं लोके देवजुष्टा-मुदाराम्॥ ३ नमस्ये सर्वभूतानां जननीमब्जसम्भवाम्। श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णोर्वक्षस्थलाश्रिताम्॥ ४ नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी। यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तमाः!॥ ५ सूर्यां हिरण्मयीम्, ईश्वरीं सर्वभू-तानाम्। ६ यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने। आत्मविद्या च देवि! त्वं विमुक्तिफलदायिनी॥

देवी तू है, मुक्तिफलकी दाता है" यह स्मृति है। या प्रकार लक्ष्मीकों संबंध विधानकरकै व्रजस्त्रीनमैं प्रधान-भूत श्रीवृषभानुजाको नित्य संबंधको विधान करते हैं। वृषभानुजाको नित्य हम स्मरण करत हैं। ताके (राधिकाके) स्वरूप गुण द्योतनार्थ विशेष कहत हैं। भग-वान् श्रीकृष्णके वामांगमैं आनंद करकै विराजमान है। वामांगशब्दकरकै याको लक्ष्मीकी तुल्य पत्नीत्व कह्यो। जैसे लक्ष्मी अनपायिनी हैं, तैसे यह श्रीराधिकाजीभी अनपायिनी हैं। अरु निरतिशय प्रेमानंदमूर्ति हैं, अरु प्रेमकी अधिष्ठात्री हैं। प्रेम, कारुण्य, दयादिगुणकरकै प्रकाशै है। ऋक्परिशिष्टश्रुतिमैं कह्यो है "श्रीराधा सहित श्रीमाधव[1] देव अरु माधव सहित राधिका विराजत हैं" इति। या श्रुतिकरकै परस्पर साहित्य कह्यो अरु नित्यसम्बंध अरु प्रेमको उत्कर्ष कह्यो। प्रेमकी अधि-ष्ठात्री श्रीराधिकाके चरणस्मरण प्रेमको दाता है। तातें याके चरणोंका स्मरण मुमुक्षु करै। "कृष्णात्मिका जगत्की धात्री मूलप्रकृति[2] रुक्मिणी है, जननमैं प्रसिद्ध जे श्रुति तिनके प्रमाणकरकै रुक्मिणी तथा व्रजस्त्री-

१ राधया माधवो देवो माधवेन च राधिका। २ कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृतिरुक्मिणी। व्रजस्त्रीजनसम्भूत श्रुतिभ्यो ब्रह्मसंगतः। जनेषु सम्भूताः प्रसिद्धा याः श्रुतयस्ताभ्यः प्रमाणभूताभ्य आभ्यां रुक्मिणी व्रजस्त्रीभ्यां श्रीगोपालाख्यस्य ब्रह्मणः संगतो नित्यसम्बन्धः इति मन्त्रार्थो मञ्जूषायामुक्तः श्रीभगवत्पुरुषोत्तमदेशिकैः।

सहित श्रीगोपालमूर्त्ति परब्रह्मको नित्य सम्बंध है" यह श्रीगोपालोत्तरतापिनी श्रुतिमैं कह्यो है।याही श्रुतिमैं सत्यभामाको भी उपलक्षणतैं जानना । रुक्मिणी, सत्यभामा, व्रजस्त्रीविशिष्ट श्रीभगवान्पुरुषोत्तम वासुदेव वैदिक सत्संप्रदायी वैष्णवनकों सदा सेव्य है । द्विभुज अथवा चतुर्भुज अपनी प्रीतिके अनुसार क्योंकि उभयविध उपासन भक्तिको असाधारण उपाय है । यह गोपालतापनीकी श्रुतिमैं सिद्धांत है । "मथुरामैं मेरो सदा ध्यान करै, इत्यादिमैं कहके चतुर्भुज ध्यान कह्यो। उत्तरतापिनीमैं श्रीवत्सचिह्न जाके हृदयमैं, कौस्तुभमणि कण्ठमें है, चार जाके भुजा, शंख, चक्र, शार्ङ्ग, गदा, पद्म करके युक्त, हिरण्मय, सौम्यमूर्त्ति, भक्तनकों अभयदाताको मनमें ध्यान करै । अथवा वेणु शृंगधारीको ध्यान करै सो मोक्षभोक्ता है, इति पूर्वतापिनीमैं द्विभुज कह्यो, सुन्दर पुण्डरीकसमान जाके नेत्र हैं, श्याम घन-

---

१ "मथुरायां मां ध्यायन् मोक्षमश्नुते" इत्यारभ्य श्रीवत्सलाञ्छनं हृत्स्थंकौस्तुभप्रभया युतम् । चतुर्भुजं शंखचक्रशार्ङ्गपद्मगदान्वितम् २ हिरण्मयं सौम्यतनुं स्वभक्तायाभयप्रदम् । ध्यायेन्मनसि मां नित्यं वेणुशृङ्गधरं तु वेति । सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्। द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्ः । गोपीगोपगवावीतं सुरद्रुमलताश्रयम्। दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम्। कालिन्दीजलकल्लोलङ्गिमारुतसेवितम् । चिन्तयँश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेरित्युभयविधस्यापि ध्यानस्य मोक्षहेतुत्वश्रवणादुभयस्य तुल्यफलत्वाद्ध्येयत्वाविशेष इति साम्प्रदायसिद्धान्तः ।

चत् जाकी वर्णाभा है, विद्युत् समान अम्बर है, द्विभुज ज्ञान मुद्राकरकै संपन्न, वनमालाधारी, ईश्वर, गोपी गोप गौवनकरक वष्टित, कल्पद्रुमतलमैं स्थित, दिव्यालंकार, संपन्न, रत्नपंकजमें प्राप्त, कालिंदी जलकी तरंगनकरकै सेवित, जो वायु ताकरकै सेवित, ऐसे ध्यान करकै संसारतें मुक्त होतहै" इति। तातें उभयविध ध्यानको फल एक है। मुमुक्षु अपनी रुचिअनुसार ध्यान करै, यह संप्रदायको सिद्धान्त है।

इति परमात्मतत्त्वनिरूपण।

सोरठा-परमात्मको ध्यान, श्रुतिस्मृति बहु गाइयो॥
संप्रदाय परमाण, ध्यावै सन्त सुजान नित॥

इति श्रीश्रुतिसिद्धांतरत्नाकरे पं० किशोरदासेन श्रुत्यादिक-
टिप्पणीनिवेशनादिद्वारा परिवर्द्धिते पदार्थनिरूपणं
नाम प्रथमपरिच्छेदः समाप्तः॥ १॥

अथ द्वितीयपरिच्छेदः ।

सोरठा-श्रुतिप्रमाण निर्धार, भाष्यो सनत्कुमार जिम ॥
अब वाक्यार्थविचार, चित्त दे सन्त सुजान सुन॥

प्रथमपरिच्छेदमैं शास्त्रसंप्रदाय प्रमाणकरकै तत्त्वं-पदार्थ निरूपण कर्यो । अब द्वितीय परिच्छेदमें संप्रदायकी परंपराविचारपूर्वक वाक्यार्थ निरूपणकरत हैं । तहां प्रथम पूर्वोक्त उपासनामें विधिवाक्य प्रमाण कहत हैं ।

उपासनीयं नितरां जनैः सदा
प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं
श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे ॥ ६ ॥

पूर्व निर्णय कर्यो जो श्रीपुरुषोत्तमको स्वरूपादि तत्त्व सो जननको सदा उपासनीय है । यह उपासन विधि है । "सो जिज्ञास्य है, सो निदिध्यासन विषय करणीय है । तातें श्रीकृष्ण पर देव है, ताहि सदा ध्यान करै, रसनकरै, यजनकरै, भजनकरै" यह श्रुति प्रमाण है । अरु सदा कालको परिच्छेद उपानसमें करै नहीं ।

---

१ स विजिज्ञासितव्यः, निदिध्यासितव्यः । २ तस्मात्कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्, तं रसयेत्, तं यजेत्तं भजेदित्यादित्रिविधिश्रवणादुक्तलक्षणं परं ब्रह्म सदोपासनीयम् ।

यामें श्रीव्यासको वचन प्रमाण कहत हैं, "सर्व शास्त्र मंथनकर[1] अरु वारंवार विचारनेसे यह एकही सिद्धभयो कि नारायण सदा ध्येय है" इति। "श्रीविष्णुको सदा निरन्तर स्मरण[2] करै, अरु विस्मरण कबहू न करै। जितने शास्त्रमें विधि निषेध हैं ते इन दोय विधिनिषेधके किंकर हैं" यह स्मृति प्रमाण है। निरन्तर नाम गंगाप्रवाहकी समान क्षणादि कालको विच्छेद करै नहीं, अन्यथा दोषभागी है। "जा मुहूर्त्तमें जा[3] क्षणमें वासुदेवको स्मरण न करै सोई हानि है, सोई बडो छिद्र है, सोई भ्रांति हैं, सोई जडता है, सोई मूकता है" इत्यादि स्मृति है। या करके परमात्माकी ध्रुवास्मृति कही। "आहारशुद्धितें अन्तः[4]करणकी शुद्धि होत है, अन्तःकरणशुद्धितें ध्रुवा स्मृति होत है" यह श्रुति प्रमाण है। श्रीभगवान्‌की उपासनाको अधिकारी सर्वसाधारण सूचनके अर्थ जनपदको प्रयोग है।तहां त्रिवर्ण द्विजातिको वैदिक उपासनाको अधिकार है। चतुर्थ वर्णको पौराणिक उपासनामें अधिकारहै, यह विवेक जानना। उपासनको

---

१ आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा। २ स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्। सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥ ३ यन्मुहूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते। सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिः सा च विक्रिया॥ ४ आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।

प्रयोजन कहतहैं-अनादिकर्मरूप अज्ञान जो तम सो श्री-पुरुषोत्तमप्राप्तिको प्रतिबन्धक ताके संवन्धध्वंसके अर्थ अर्थात् प्रकृतिसंबंधकी निवृत्ति उपासनको प्रयोजन है। "ध्रुवास्मृतिके पाये सर्व ग्रंथिनको खलन होतहै" यह श्रुति प्रमाण है। "जे जन अनन्य होयकें मेरो चिंतवन करत संतें उपासन करत हैं तिनको योगक्षेम प्रापक मैं हूं, तिनकी अनुकंपाके अर्थ अज्ञानको कार्य जो तम सो मैं नाश करतहूं, तिनके हृदयमें बैठके प्रकाशरूप ज्ञानदीप करकै" यह श्रीमुख गायोहै। तहां वादीकी शंका-"जो वाणीकरकै कथनके योग्य नहीं, जाकरकै वाक्को प्रकाश होतहै, सो ब्रह्म है, जो उपासना करतहैं सो ब्रह्म नहीं" इत्यादि श्रुतिमें उपासनकें विषयको ब्रह्मत्वको निषेध सुनतहै, तातें उपासना बनै नहीं, अरु उपासनाको विषय ब्रह्म बनै नहीं, इति। ताके समाधानमें संप्रदायको प्रमाण दिखावते संतें संप्रदाय अनादि अरु वैदिक है यह कहतहैं। सनंदनादिक मुनिननैं ता प्रकार कह्यो है। सो सनकादिक साक्षात् भगवान्को अवतार हैं यातें तिनके वचनमें प्रमाणांतरकी अपेक्षा नहीं अरु तिनमें

---

१ स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः। २ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ ३ यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।

भ्रमको कारण प्रमादादि नहीं, क्योंकि वे आप्ततम हैं। यह मुनिशब्दको तात्पर्य है। उपदेशको अधिकारी अत्यंत उत्तम है, तातें अप्रमाणकी शंका बनै नहीं यह कहतहै। श्रीनारदजीसों श्रीसनत्कुमारनें जैसे कह्यो सोई श्रीनारदजूने मोकों उपदेश कर्यो, सोई मैंनें कह्यो। श्रीनारदजीको विशेषण कहत हैं। सर्वतत्त्वके प्रत्यक्ष द्रष्टा सर्वज्ञ "यह महोपनिषद चतुर्वेदकरकै युक्त[1]

या भारतके वचनतें सर्ववेदनको अर्थभूत श्रीपंचरात्रके प्रवर्त्तक हैं, यह भावार्थ है। तहां वादीकी शंका- "हे भगवन्[2]! मैं शोचत हूं मोकों शोकतें पारकरो" इत्यादिक श्रुतिमें श्रीनारदजीनें अपनों शोक अपनें मुखतें कह्यो, ताहि सर्वज्ञता कैसें बनै, इति। सो तुच्छ है। जातें आचार्यको वचन उपदेशके उत्तरकालीन है। श्रीनारदजीको श्रीसनत्कुमारके उपदेशतें पूर्व शोक भयो सो सांच, परंतु श्रीसनत्कुमारके प्रसादतें कारणसहित शोककी निवृत्ति अरु सर्वज्ञता सिद्धभई, यह ताके (छांदोग्यके) वाक्यशेषमें सुनियत हैं "मृदितकषाय श्रीनारदको तमको पार दिखावत भये श्रीभगवान् श्रीसनत्कुमार"[3], इति श्रुति सर्वज्ञतामें प्रमाण है। अथवा श्रीनारदजू भगवान् परमेश्वरको अवतार हैं, तिनमें अज्ञान अरु शोक-

१ इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम्। २ सोऽहं भगवः शोचामि तं मां शोकस्य पारं दर्शयतु। ३ तस्मै मृदितकषायाय तमसः पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः।

तीनकालमें बनैं नहीं, तथापि गुरु उपसत्तिको प्रकार जगत्‌मैं मुमुक्षुनकों ग्रहण करानेको अनुकरणमात्र है। जैसे साक्षात् भगवान् श्रीपुरुषोत्तम कृष्ण लोकलीलाके अर्थ शोकमोहादिको अनुकरण करतहैं। ताकी नाई जानिये। यहां यह भाव है।"जाहि उपासनं करै सो ब्रह्म नहीं" या श्रुतिकरके ब्रह्मकी उपास्यता निषेध करी सो सांच। किंतु यह निषेध परिच्छिन्नोपासनाविषयक है। विश्वात्मा वासुदेव परब्रह्मविषयक उपासनको निषेध नहीं, यह निश्चय करत हैं। क्योंकि याही प्रकरणके आदिमें अनेक परिच्छिन्न उपासन विधानकरकै अंतमें अपरिच्छिन्न भूमाविषयक उपासनाको उपदेश करत भये, भगवान् श्रीसनत्कुमार। सो छांदोग्यमें कह्यो है" श्रीनारदजी विधिपूर्वक श्रीसनत्कुमारकी शरण जात भये, हे भगवन्! शोकतरणको उपाय शिक्षाकरो, यह प्रार्थना करतभये, अपनैं उपसन्न नारदसों श्रीसनत्कुमार कहत भये कि, तुम अध्ययनकरकै जो विद्या संपादन करतभये सो कहो, ताके उत्तर जो अधीत नहीं

---

१ नेदं यदिदमुपासते। २ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद, ततस्त ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामीति, सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वाणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पविद्यां देवयजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।

है सो कहूंगो । या प्रकार गुरुप्रेरणाकरकै श्रीनारदजू अपनी विद्याको वर्णन करतभये। हे भगवन्! ऋग्वेद मैं अध्ययन कर्‍यो अरु यजुर्वेद अरु सामवेद अरु चतुर्थ अथर्वणवेद, इतिहास, पुराण, पंचमवेदनमैं वेद, पितृराशि, दैवनिधि, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्प, देव-यजनविद्या, इतनी विद्या मैं पढ्यो हूं, सो मैं शोच करतहूं कि, शोक मोकों छोडत नहीं" तहां शंका-इतनी विद्याकरकै शोक न गयो, याको कारण कहो इति । तहां उत्तर "मैं केवल मंत्रवेत्ता हूं आत्मवेत्ता नहीं, तुमसे [1] समर्थनतैं मैंने सुन्यो है कि, शोकको आत्मवेत्ता तरै हैं। सो मैं आत्मावेत्ता नहीं तातैं शोचत हूं । सब विद्याके होतसंतेंहू आत्मज्ञानविना शोक छूटत नहीं" इति। या प्रकार प्रार्थनाके उत्तर करुणानिधि श्रीसनत्कुमार कहत भये कि "जो जो तू अध्ययन करत

---

१ सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि, नात्मवित्, श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति, सोऽहं भगवः शोचामि तं मां भगवान् शोकस्य पारं तारयत्विति । २ तं होवाच यद्वै किंचिदध्यगीष्ठा नामैवैतदित्युक्त्वा, नाम वा ऋग्वेद इत्यादिना नाम्न एव सर्वविद्यारूपतां विधाय, नामोपास्स्वेति नामोपासनमुपदिश्य, यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवतीति फलं चोपदिष्टम् । एवमेव वाङ्मनःसङ्कल्पादिविशेषकोपासनानामुत्तरोत्तरभूयस्त्वं तत्फलानामपि तथात्वं चोक्त्वाऽवसाने भूमोपासनमुपदिष्टवान् ।

भयो सो संपूर्ण नामही है, तातें नामकी जिज्ञासा करौ, नाम ब्रह्म है ऐसें उपासन करो, ताको फल जहांतक नामकी गति है तहांतक या उपासककी गति होतहै" इति । तहां नारदजीको प्रश्न-भगवन् ! यातें अधिक उपासन कौन है इति । तहां उत्तर-यातें अधिक उपासन वाणीको है। या प्रकार प्रश्नोत्तरकरकै अनेकविधपरिच्छिन्नोपासन फलसहित निरूपणकरकै अंत मैं अपरिच्छिन्नविषय, अपरिच्छिन्नफल भूमोपासन, वर्णन करतभये "जो भूमा[1] सोई सुख अल्पमैं सुख नहीं। तातें भूमाकी जिज्ञासा कर्त्तव्य है।" भूमा ब्रह्मको पर्याय है। ताहीको सूत्रकारनें ब्रह्मजिज्ञासा कह्यो । सख आनंद को पर्याय है " विज्ञान आनन्दरूप[2] ब्रह्म है, आनन्दतें ये भूत उत्पन्न होतहैं, आनन्दके जिवाये जीवत हैं, आनंदमैं लय होतहैं, आनन्दकों मुक्तावस्थामैं प्राप्त होतहैं" इति लक्षणवाक्य है। यह सुनके नारदजू बोले--"भूमाकी मैं जिज्ञासा करत हूं भूमाको[3] लक्षण कहो" इति । तहां सनत्कुमार भूमाको लक्षण बोले । या भूमोपासनामैं नामादि उपासनाकी नाईं अन्य

---

१ यो वै भूमा तदेव सुखं नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति । २ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म, आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । ३ भूमानं भगवो विजिज्ञासे इति ।

अवच्छेदक नामादि नहीं देखै, नहीं सुनै, नहीं जानै, सो भूमा है। अर्थात् देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य है सो भूमा है "आकाशादिको आधारभूत है"। यह सूत्र प्रमाण है। अरु जिन नामादिक उपासनमैं अन्य प्रतीक नाम वागादिरूप देखतहै, सुनत है, जानतहै, सो अल्प है, परिच्छिन्न अंतवान् है। जातैं भूमा अपरिच्छिन्न है तातैं अमृत है। अरु जो देशकालादि पारीच्छिन्न है सो अल्प मर्त्य है। तहां प्रश्न-जो पूर्वकी नाईं उपाधि अवच्छेदक ताकै नहीं तो भूमा कहां रहतहै इति। ताको उत्तर अपने महिमामैं रहतहै इति। तहां प्रश्न-आधार आधेय परिच्छेद प्राप्त भयो इति। तहां उत्तर-अथवा महिमामैं नहीं रहत है इति। परिच्छिन्न महिमामैं रहतहै सो मैं नहीं कहत हूं। क्योंकि

---

१ यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति, स भूमा, अथ यत्रान्यत्पश्यति अन्यच्छृणोति, अन्यद्विजानाति तदल्पं, यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। २ भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात्। १। ३। ८। भूमा परमात्मैव, न तु प्राणविशिष्टो जीवः। कुतः? सम्प्रसादादध्युपदेशात्। सम्यक् प्रसादो यस्मिन् स सम्प्रसादो जीवात्मा।"एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" इत्यादिश्रुति-प्रसिद्धः। तस्मात्प्राणशब्दसूचितादधि ऊर्द्धम्, "एष तु वा अति वदति यः सत्येनातिवदति" इति तुशब्देन प्राणोपदेशात्पूर्ववृत्तादुत्तरस्य भूमोपदेशस्य वैलक्षण्यं गम्यते। तस्मात्प्राणोपदेशतो विलक्षणात् भूम्न उपदेशात् प्राणपदार्थाद्भिन्नो हि भूमपदार्थ इति सूत्रार्थमनुजगृहिरे भाष्ये भगवन्तो भाष्यकाराः। ३ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठते? स्वे महिम्नि, यदि वा न महिम्नीति।

ताको महिमा तदात्मक है, तातें अत्यन्त भिन्न नहीं। ताको विवरण कहत हैं, या लोकमैं गौ अश्वादि महिमा कहत हैं, सो जीवनको अश्वादि महिमा तिनतें भिन्न है। जैसे अश्वमैं देवदत्त है, हस्तिमैं यज्ञदत्त है, क्षेत्रमैं, गृहमैं वसत है, यहां आधाराधेयभावकी प्रतीति होत हैं तैसैं यहां नियम नहीं। किंतु अपनों आधार आपही है, यह कहत हैं। जो अन्य अन्यमैं रहत है तैसैं मैं नहीं कहत हूं। किंतु सोई नीचै, सोई ऊपर, सो पश्चिम, सोई पूर्व, सोई दक्षिण, सोई उत्तर, सोई भूमा सर्व जगद्रूप है। विश्वको आत्मा है, सर्वविश्व तदात्मक है। या प्रकार पूर्णोपासन कहकै ताको परिपूर्ण फल कहत हैं। ऐसैं जो देखै, ऐसैं जो मानै, ऐसैं जो जाणै, ताकी रति आत्मा ब्रह्मसैं है, अहंकार ममकारको आस्पद देहादि पुत्रादिमैं नहीं, एवं शब्दादि इंद्रिय विषयमैं अरु वस्त्रालंकारादिमैं नहीं है। आत्मा विष्णुसहित क्रीडा जाकी है, लौकिकलीलाके उपकरणमैं नहीं। आत्मा भगवान् जाको मिथुन है, भार्यादिक नहीं। ब्रह्मकरकैं जाकों

---

१ गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानि इति। नाहमेवं ब्रवीमीति होवाचाऽन्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति। स एवाधस्तात् स एवोपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमिति।

२ स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीडः। आत्ममिथुनः आत्मानन्दः।

आनंद है, बाह्य विषय अरु विषयके साधनकरकै नहीं। आत्मा ब्रह्मकरकै[1] जाको प्रकाश है, इंद्रियादि सूर्यादि करकै नहीं। सार्वज्ञादिक विकाश पायोहै। अथ पूर्णोपासन दृढताके अर्थ परिच्छिन्नके उपासकनकी श्रुति निंदा करत है-जे मूढ परब्रह्मोपासनतें विपर्यय जानत हैं अर्थात् श्रीवासुदेवतें अन्य ब्रह्म, रुद्र, इंद्रादि देवताभी स्वतंत्र उपास्य हैं, ऐसे जिनके निश्चय है, तथा ब्रह्मादि मोक्षदाता अरु स्वतंत्र हैं, अतः मुमुक्षुनके उपास्य हैं, ऐसा जिनको निश्चय है, ते क्षयलोक[2] होतहैं, स्वर्ग पशु पुत्रादि संसारचक्रके कारण परिच्छिन्न फल नाशनशील तिनकों होतहै, जातें तिनको उपास्य ब्रह्मरुद्रादि जीव हैं, ते ईश्वर परतंत्र हैं, यातें मोक्षदानकों समर्थ नहीं। यह घंटाकर्णनें हरिवंशमें शिवको उपदेश अपनों अनुभूत कह्यो है, "मैं कैलासपर्वत[3] जात भयो, वहां वृष-

---

१ स स्वराड् भवति, स्वेनैव भगवता विश्वान्तरात्मना राजते दीप्यते, नेन्द्रियादिभिः सूर्यादिभिर्वा प्रकाशकारणैरिति, तथा सार्वज्ञादिविकासादिति श्रुत्यर्थः। २ अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषां सर्वेषु लोकेषु अकामचारो भवति। ३ अहं कैलासनिलयमासाद्य वृषभध्वजम्। आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम्॥ ततः प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं हरः। ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ॥ मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः। मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः॥ तस्माद्गत्वा च बदरीं तत्राराध्य जनार्दनम्। मुक्तिं प्राप्नुहि गोविन्दान्नरनारायणाश्रमे॥

भध्वज महादेवको आराधन करकै निरंतर स्तुति करत भयो, ताके अनन्तर शिवजी प्रसन्न होकै हमतैं कहत भये, वर मांगो इति, ताके अनंतर शिवजीसों मैं मुक्ति मांगत भयो, मुक्ति मांगनहार मोसों शिवजी बोले कि, मुक्तिको प्रदाता एक सनातन विष्णु ही है, और नहीं, यामैं संशय नहीं, तातैं तू बदरिकाश्रम जायकै श्रीजनार्दनको आराधन करकै मुक्तिको प्राप्त होउ" इति। भारतमैं भी कर्म परतंत्रता तिनकी (ब्रह्मरुद्रादिकी) प्रसिद्ध है । "ब्रह्मा सहस्रकोटियुग विष्णुको आराधन करकै त्रिलोकीको धाता होतभयो यह सुन्यो है" इति । "महादेव महात्मा सर्वयज्ञमैं अपनो शरीर होमकरके दैवश्रेष्ठ होतभयो । सर्वलोकमें कीर्त्तिसों व्यापकें विराजत है, कृत्तिवासा जाको नाम है" इति । "जो अन्य देवताको उपासन करै सो पशु है" यह श्रुत्यंतर है । "जो जो पुरुष जिस जिस देवमूर्त्तिको श्रद्धा कर आराधन करै है, ताको तामैं अचल श्रद्धा मैं बढावत

---

१ युगकोटिसहस्राणि विष्णुमाराध्य पद्मभूः । पुनस्त्रैलोक्यधातृत्वं प्राप्तवानिति शुश्रुमः ॥ २ महादेवः सर्वयज्ञे महात्मा हुत्वाऽऽत्मानं देवदेवो बभूव । विश्वाँल्लोकान् व्याप्य विष्टभ्य कीर्त्या विराजते द्युतिमान् कृत्तिवासाः ॥ ३ योऽन्यदेवतामुपास्ते, अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरिति । ४ यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

हूं। सो ता श्रद्धाकरकै[1] ताको अराधन करकै तातैं कामको पावत है, परन्तु मेरो दियो देत हैं। अरु उनका भक्त अन्तवान् अनित्य फल पावत है। क्योंकि ताके उपास्य ब्रह्मरुद्रादि देवहीको अधिकार ध्वंसयोग्य है, तब उपासकनकी क्या कथा। तातैं ते ब्रह्मरुद्रोपासक क्षुद्रबुद्धि हैं" यह श्रीमुख गायो है। तातैं तुच्छफलक तुच्छ विषयकोपासना मुमुक्षुकों हेय है, इति। सो आगै विस्तारकरेंगे। या करकै अल्पफलक प्रतीकोपासनको हेयत्व सिद्ध भयो। तिन सब उपासनको भूमउपासनमैं अन्तर्भाव[2] है, जैसे वृक्षके मूल सींचन करकै शाखा उपशाखा पत्र फल ये सब सिंचन होतहैं, तैसैं विश्वरूप सर्वात्मा भगवान् श्रीवासुदेवकी उपासनकरकै सर्वोपासनको फल प्राप्त होत है, यह कहत हैं। "भूमाके स्वरूपगुणादिविषयक प्रत्यक्षानुभवाश्रय पुरुष मृत्यु नहीं देखै, रोग नहीं देखै, दुःख नहीं देखै, है, अरु इन्द्रियताडनाको भी नहीं देखै है। सर्वदर्शन विषयक ज्ञानवान् होता है, सबको सबप्रकार[3] प्राप्त होत है। यहां मृत्युको अर्थ प्रमाद है, रोग अध्यात्मकादि-

---

१ स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते। लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हितान्। अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्॥ २ तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत इत्यारभ्य आत्मन एवेदं सर्वमित्यन्तेन सर्वेषामुपासनानामत्रैवान्तर्भाव उक्तः। ३ न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताम्।

ताप, दुःख कामक्रोधादि जन्य इन्द्रियताडनाको नाम है। यह त्रिविध नरकको द्वार है, अरु आत्माके नाशको कारण है, यातें काम क्रोध अरु लोभको मुमुक्षु त्याग करै" यह श्रीमुखवचन हैं। तहां शंका-"जहां द्वितीय नहिं देखै" या श्रुतिसैं सामान्य द्वितीय वस्तुमात्र-दर्शनादिको निषेध कह्यो है, यहां अन्यथा व्याख्या कस बनै इति। या शंकाको निरस्तकरत संतें उपासक-की सर्वज्ञता अरु आप्तकामता कहत हैं। "यह द्रष्टा सर्व-वस्तु देखत है, सर्वप्रकार सर्व वस्तुकों पावत है" [1] ताकी शक्तिको आविर्भाव कहत है। "एकप्रकार रूपै [2] धारै तीन-प्रकार, पञ्चप्रकार, सप्तप्रकार, नवप्रकार, एकादशप्रकार, शतप्रकार, सहस्रप्रकार, इक्कीससहस्रप्रकार, तथा भग-वान्के अनुरूप संकल्पमात्रकरकै अनन्तमूर्त्ति धारण करत है।" तहां साधनकी परंपरा कहत हैं, आहारकी शुद्धितें अन्तःकरणकी शुद्धि होत है, अंतःकरणकी शुद्धि ध्रुवास्मृति साक्षात्कारको असाधारण साधन है। "ध्रुवा[3]-स्मृतिकरकै सब ग्रंथिनको नाश होत हैं" इत्यादि। अब प्रकरणार्थकी समाप्ति करत हैं। "नष्टहुये[4]हैं स्वभावतें

---

१ सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वशः। २ स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशधा स्मृतः। शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः। ३ आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः। स्मृति-लम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः। ४ तस्मै मृदितकषायाय तमसः पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः।

कषाय जाके ऐसे श्रीनारदजूकों भगवान् श्रीसनत्कुमारजी तमको पार दिखावत भये" इति। यासैं यह भाव है, आरोपको[1] निषेध बनत है, प्रमाणसिद्ध वस्तुको निषेध नहीं होत है यह न्याय सर्ववादिनके संमत है। जैसैं अन्य नदी सरोवरमैं श्रीगंगाको आरोप करके यह गंगा नहीं ऐसे निषेध बनैं है, किंतु साक्षात् विष्णुपादोदकी भागीरथीमैं गंगाको निषेध बनै नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष अरु शास्त्रप्रमाणकरकै सिद्ध है, ता निषेधकर्त्ताकों सब कोई बालबुद्धि कहत हैं, यह लौकिक दृष्टांत है। अरु जैसैं छांदोग्यमें पञ्चाग्निविद्यामैं "यह पुरुष है गौतमाग्नि है, यह स्त्री है गौतमाग्नि है"[2] इत्यादि श्रुतिकरकै उपासनके अर्थ पुरुष स्त्रीमैं अग्निको आरोप कह्यो, जो ताको निषेध कहै तो बनैं है, क्योंकि आरोप है। अरु अग्निहोत्र अग्निमैं अग्निनिषेध काहू प्रकार बनै

---

१ आरोप्यस्यैव निषेधविषयत्वं न प्रमाणसिद्धस्य वस्तुनः, इति न्यायस्य सर्ववादिसम्मतत्वात्। २ यथा च पुरुषो वाव गौतमाग्निर्योषिद्वाव गौतमाग्निरित्यग्निविद्यायां योषित्पुरुषयोरुपासनार्थमग्नित्वमारोपितं रूपकरीत्या, तन्निषेधश्चेदर्ह एव। न तु प्रसिद्धेऽग्निहोमाऽग्नौ तन्निषेधस्पर्शः। प्रत्यक्षमानसिद्धत्वात्। तथा प्रकृतेऽतद्वस्तुषु "नाम ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादिश्रुत्युक्तेषु वागादिषु आरोपितब्रह्मत्वनिषेधो, न तथा सर्वेश्वरे साक्षात्परब्रह्मणि पुरुषोत्तमे तत्स्पर्शावकाशः। तत्तु "नेदं ब्रह्म" इतीदंकारेणैव द्योतमानत्वान्नाऽश्रुतार्थकल्पनाप्रसंगोऽत्र सम्भाव्यः। इदङ्कारास्पदनामादिप्रपञ्चात्यन्तविलक्षणं ब्रह्मेति वाक्यार्थः।

नहीं, क्योंकि अग्नि प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध है। यह वैदिक दृष्टांत है। तैसैं दार्ष्टांतमैं "मन ब्रह्म है, ऐसैं उपासन करै वाग् ब्रह्म है, ऐसैं उपासन करै" इत्यादि श्रुतिमैं उपासनके अर्थ मनआदिकमैं ब्रह्मको आरोप करकै उपासन कह्यो, ताहीको "यह ब्रह्म नहीं जो उपासन करत हैं" इत्यादि श्रुतिमैं निषेध करत हैं, ये नामवागादि ब्रह्म नहीं जाको उपासन करतहैं, यह श्रुतिको तात्पर्य है। किंतु सो निषेध सर्वेश्वर सर्वात्मा श्रीपुरुषोत्तमकी उपासनाको छूवै नहीं, क्योंकि पुरुषोत्तमोपासन प्रमाणसिद्ध यथार्थ वस्तु है। यह अर्थ इदंकारकरकै प्रत्यक्ष दीखे है, यातें अन्यथाकल्पनाको अवकाश नहीं। "इदंकारको विषय नामादिप्रपंचतें ब्रह्म अत्यन्त विलक्षण है" यह श्रुतिको अर्थ है। अन्यथा अन्तमैं निरतिशय अपरिच्छिन्न अनन्तफल भूमोपासनको उपदेश बनै नहीं, तातें सर्वज्ञ सर्वशक्ति अनन्तकल्याणगुण देशकालादि परिच्छेदशून्य सर्वोपास्य ब्रह्म प्रतिपाद्य है, इति। अति विस्तारसों पूर्ण करत हैं। इति उपासननिर्णय। या प्रकार इतने ग्रन्थकरकै तत्त्वमादिपदार्थ जीव ईश्वर प्राकृत अप्राकृत काल इनको वर्णन कियो अरु उपासनको विधिनिषेधप्रकार मुखकरकै निर्णय कह्यो। आगै तत्त्वमस्यादिवाक्यको अर्थ वर्णन करत हैं, 'सर्वं हि' या श्लोक करकें।

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः ।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं
त्रिरूपताऽपि श्रुतिसूत्रसाधिता ॥ ७ ॥

वेदांतशास्त्रको विषय जगत्कारण ब्रह्म है । यह पूर्व कह्यो, सो ब्रह्म विषय कोण प्रकार हैं? तहां औपाधिक भेदाभेदवादी भास्करभट्टके अनुगामी कहत हैं "हे सौम्य ! आगे सत् होतभयो, एक अद्वितीय" इत्यादि श्रुति-करकै स्वरूपतें एक सर्वज्ञ सर्वशक्ति ब्रह्म अद्वितीय है। सो अनादि सद्रूप उपाधिकरकै अवच्छिन्न जीवभावकों प्राप्त-भयो सो तत्त्वमस्यादि वाक्यजन्य अद्वितीय ज्ञानकरकै भेदकी निवृत्ति होतहै, इति । तहां मायावादी (अद्वैत-वादी) ताको खण्डन करत हैं । सो बनै नहीं, जातें विकल्पको सहै नहीं, उपाधिकरके छिन्नभयो ब्रह्मको खण्ड जीवात्मा है, सो बनैं नहीं, क्योंकि ब्रह्म अच्छेद्य है, अरु जीवको जन्यत्व प्रसंग भयो, एवं जीवानादि[2]वाचक श्रुतिको व्याकोप प्रसंग भयो । जो कहो छिन्न तो नहीं भयो, परन्तु अणुरूप उपाधिसंयुक्त ब्रह्मको प्रदेशविशेष जीवात्मा है, इति । सो नहीं। ब्रह्मके एक देशमैं उपाधि अंगीकारतें उपाधिकृत दोष सब ब्रह्ममैं प्राप्त भये, उपाधिके गमनसमयमैं उपाधिकरकै ब्रह्मको प्रदेश आकर्षण-

१ सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । २ न जायते म्रियते वा विपश्चित् ।

योग्य नहीं, यातें क्षण क्षणमैं उपाहित ब्रह्म भिन्न भिन्न भयो, तथा क्षण क्षणमैं अरु पदपदमैं बंध मोक्षकी प्राप्ति भई, एवं नित्यमुक्त चेतन प्रदेशको अकस्मात् विना कारण बंधन भयो, अरु अनादि बद्ध प्रदेश साधन विना स्वतः ही मुक्त भयो। जो कहौ उपाधिगमनसमय चेतन चलत है सो बनै नहीं, सम्पूर्ण ब्रह्मको आकर्षण भयो अरु विभुत्वकी हानि भयी, अच्छिन्न ब्रह्म प्रदेशोंमैं सब उपाधि संसर्गकरके सब जीव ब्रह्मके देश भये, तातें सर्वको सर्व जीवनको अन्तर बाहरके सुखदुःखादिके अनुसंधानप्रसंग भयो। जो कहौ प्रदेशभेद यामैं नियामक है, सो नहीं, एकहूकों अपने उपाधिगमनसमय सोई मैं हूं यह प्रतिसंधान नहीं होइगो, जातें प्रदेशको भेदहै। अरु जो कहो उपाधिसंयुक्त ब्रह्मको स्वरूपही जीव है, सो बनै नहीं। क्योंकि ब्रह्मही उपाधिकरकै जीव भयो तातें भिन्न उपाधिशून्य ब्रह्मको अभाव भयो। जो कहौ उपाधिसंयुक्त चेतनांतर जीव है। सो नहीं। क्योंकि और चेतन तुम्हारे मतमैं अंगीकार नहीं। जो अंगीकार करो तो परमतप्रवेश भयो, औपाधिकभेदकी प्रतिज्ञा भंग भई। यामैं तीन दोष कहे। चेतन दूसरेको अभावकी प्रतिज्ञा भंग, औपाधिकभेदको सिद्धांत भंग, अरु परपक्षप्रवेश, इति। जो कहो उपाधिही जीवहै, सो नहीं। बाह्यमतमैं प्रवेश भयो, तातें औपाधिकभेद बनै नहीं

अरु ब्रह्मस्वरूपको उपाधि संबंध हेतुकरकै है ? अथवा निर्हेतुक है ? जो कहौ सहेतु है, सो नहीं। जातें अप्रसिद्ध है, अरु जो कहौ कारण है, तो ताको कारण और, ताको और, ऐसें अनवस्थाप्रसंग भयो। जो कहौ निर्हेतुक है तो मुक्तकों पुनः बंधन प्राप्तभयो। जातें निर्हेतुक बंधन तुम्हारे अंगीकार है, तातें सर्वथा तुम्हारो मत बनै नहीं। या प्रकार परमतनिरास करकै अपनो सिद्धांत मायावादी कहत हैं। तातें क्षराक्षरके[1] विवर्त्तको अधिष्ठान, देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य, निर्विशेष, नित्यमुक्त, अनुभवमात्र ब्रह्म वेदांतको विषय है। तामैं घटतें घटांतरभेद सजातीयपरिच्छेद है। पटतें घटादिको भेद विजातीयपरिच्छेद है। एक शरीरमैं कर चरणादि अवयवभेद अरु रूपगुणादिभेद स्वगतपरिच्छेद हैं, ये तीन परिच्छेद ब्रह्ममैं नहीं। तामैं जातें चेतनांतर नहीं तातें सजातीयभेद नहीं, अरु अचेतनकी मिथ्या प्रतीति है परमार्थ है नहीं, तातें विजातीयभेद नहीं। अरु ब्रह्म निरवयव निर्विशेष है, तातें ब्रह्ममें स्वगतपरिच्छेद नहीं। यह मायावादीके सिद्धांतको भेदवादी खण्डन करत हैं कि तुम्हारो सिद्धांत बनैं नहीं, जाते भेदप्रतिपादक सहस्र वाक्यतें विरुद्ध है। उन वाक्योंको दीखावत हैं।

---

१ क्षराक्षरात्यन्ताभिन्नं सजातीयविजातीयस्वगतभेदत्रयशून्यं सर्वविशेषविनिर्मुक्तमनुभूतिमात्रं ब्रह्म सर्ववेदान्तप्रतिपाद्यम्।

"भोक्ता भोग्य नियंताको मानकै, आत्मा अरु नियंताको पृथक् जानकै, जा समय ब्रह्मादिकरकै सेवित आपतें भिन्न परमेश्वर देखत है, यह सर्व त्रिविध ब्रह्म कह्यो, प्रधान क्षेत्रज्ञको पति है, गुणनको नियंता है, संसार-बंध स्थिति मोक्षको हेतु है, नित्यनमें नित्य है, चेतननमैं चेतन है, बहुतनमैं एक है, दो हैं, सुपर्णतुल्य देहतें भिन्न हैं, सदा संयुक्त हैं, सखा हैं, समान वृक्षस्थानीय देहमैं रहत हैं, गौ प्रकृति है, आदि अरु अंत जाको नहीं। अजा है सात्त्विक राजस तामस गुणवती है" इत्यादि श्रुति है। "ईश्वर जीवतें अधिक है जातें भेद कह्यो। भेद कह्यो यातें जीव ईश्वरतें अन्य है" इत्यादि सूत्र हैं। "या लोकमैं दो पुरुष हैं एक क्षर एक अक्षर, सर्वभूत क्षर हैं अरु कूटस्थ जीवात्मा

---

१ भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा, पृथगात्मनं प्रेरितारञ्च मत्वा, जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्, प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः, संसारबन्धस्थितिमोक्षहेतुः, नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनाम्, ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ, द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते, गौरनाद्यन्तवती। २ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्। ३ अधिकन्तु भेदनिर्देशात्। २। १। २१। सुखदुःखभोक्तुः शारीरादधिकमुत्कृष्टं ब्रह्म जगत्कर्तृ ब्रूमः। "य आत्मानमन्तरो यमयति" इत्यादिश्रुतौ भेदव्यपदेशात्। ४ भेदव्यपदेशाच्च। १। १। १८। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवतीति श्रुत्या लब्धृलब्धव्ययोर्भेदव्यपदेशाज्जीवोऽन्यः। ५ द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षरमेव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरमुच्यते॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

अक्षर है, अरु उत्तम पुरुष परमात्मा दोऊतें भिन्न है, जो तीन लोकमैं प्रवेश करकै भरण पोषण करतहै। अव्यय है। जातें क्षरको मैं अतिक्रमण कर्यो है तथा अक्षरहूतें उत्तम हूं तातें लोक अरु वेदमें मोकों पुरुषोत्तम कहतहैं" इत्यादि स्मृति हैं। इन श्रुति स्मृति सूत्रको व्याकोप भयो इति भाव है।तहां शंका--शास्त्रमैं दो प्रकारके वाक्य हैं सो सांच, किन्तु अभेदके वाक्य प्रवल हैं अरु भेदके वाक्य निर्वल हैं। निर्वलतामैं हेतु कहत हैं-भेद वाक्यको विषय जीवेश्वरको भेद प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध है। तातें भेद वाक्य स्वार्थमैं प्रमाण नहीं। तहां शंका-जो स्वार्थमैं प्रमाण नहीं तो तिनको बाध भयो इति।सो नहीं--कल्पितभेदके प्रतिपादन करके तिनको बाध नहीं, कल्पित भेद तिनको विषय है। तहां अनुमान प्रमाण है, भेदके वाक्य स्वार्थ विषैं प्रमाण[१] नहीं,क्योंकि प्रत्यक्षसिद्ध भेदके प्रतिपादक हैं। जैसैं अग्नि शीतको ओषध इत्यादि वाक्य। और भी हेतु कहतहैं। अभेदके वाक्य स्वार्थमैं प्रमाण हैं, जातें तिनको और कोऊ विषय नहीं। यामैं अनुमान प्रमाण है, अभेदके वाक्य स्वार्थमैं प्रमाण हैं, जातें अनन्यविषयक हैं,

---

१ भेदविषयकाणि वाक्यानि न स्वार्थवन्ति, तद्विषयस्य जीवेश्वरभेदरूपस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, यद्वाक्यं प्रमाणान्तरसिद्धविषयकं, तन्न स्वार्थपरम्, अग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादिवत्।

जैसैं विधिवाक्य, इति । तामें और हेतु कहत हैं-जातें उपक्रमादि षट्‌लिंग करके युक्त है, उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति । ये षट् तिनके नाम हैं । सो छांदोग्यमैं कह्योहै यथा "हे सौम्य! आगे एक अद्वितीय होत भयो" यह उपक्रम है । "तद्रूप सर्व जगत् है, सो सत्य है, सो आत्मा है, सो तू है" यह उपसंहार है ।१। " सो तू है" यह नवप्रकार अभ्यास है ।२। "अभेद प्रमाणांतरकरकै प्राप्त नहीं" यह अपूर्वता है।३। "जा करके अश्रुत श्रुत-होत है" यह अर्थवाद है ।४। मृत् लोह तप्त परशु ग्रहणादि दृष्टांत तहां उपपत्ति है ।५। "आचार्यवान् पुरुष ब्रह्मको जाणैहै, ताको तब ताईं चिर है जब तांईं नहीं छूटै, ताकेअंतमैं प्राप्त होयगो" यह फल है । ६ । तातें अत्यंत अभिन्न अद्वितीय ब्रह्म वेदांतको विषय है । यह पूर्वपक्ष है । ताहि निरास करत हैं। तुम्हारो सिद्धांत बनैं नहीं । क्योंकि भेद अरु अभेदके दोऊ वाक्य तुल्यबल हैं । सो कहत हैं-जो कह्यो जीव

---

१ अभेदविषयकवाक्यानि स्वार्थपराणि, अनन्यविषयकत्वात्, विधिवाक्यवत् । यद्यद्वाक्यमनन्यविषयकं तत्तत्स्वार्थपरम् । २ उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलं । अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥ ३ सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाऽद्वितीयमित्युपक्रमः । ऐतदात्म्यमिदं सर्वं, तत्सत्यं, स आत्मा, तत्त्वमसीत्युपसंहारः । तत्त्वमसीति नवकृत्वोऽभ्यासः । अभेदस्य प्रमाणान्तरानवगतत्वादपूर्वता । येनाश्रुतं श्रुतं भवतीत्यादिरर्थवादः । मृल्लोहतप्तपरशुग्रहणादिदृष्टान्ता उपपत्तयः । आचार्यवान्पुरुषो वेद, तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये इति फलम् ।

ईश्वरको भेद प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध है, सो तुच्छ है। क्योंकि जीवेश्वर दोऊ अतींद्रिय हैं। "ब्रह्ममें इंद्रिय अरु[1] अनुमान प्रमाण नहीं" यह श्रुति है। अरु भेदको प्रत्यक्ष प्रतियोगीप्रत्यक्षजन्य है, या प्रकार जीव ईश्वरको भेद प्रत्यक्षासिद्ध नहीं बनें। तातें भेदवाक्य स्वार्थमें प्रमाण हैं, अनुवाद पर नहीं। तथा भेदप्रतिपादक वाक्य दुर्बल हैं यह तुम्हारो हेतु स्वरूपासिद्ध है, यातें प्रमाण योग्य नहीं। अरु अभेदके वाक्य स्वार्थमें प्रमाण हैं। यह द्वितीय हेतु हू अनैकांतिक है। क्योंकि स्वार्थप्रमाणता भेदवाक्यमैंभी समान है। अरु जो कह्यो अभेदके वाक्य षट्लिंगसहित हैं तातें प्रबल हैं, इति। सो तुच्छ है। षट्लिंग सहित हैं ताकरकै तुम्हारी इष्टसिद्धि असंभव है। क्योंकि भेदवाक्यनको हू षट्लिंगोपेतता तुल्य है। अरु षट्लिंगोपेत अभेदवाक्यको वाच्य ब्रह्म है? वा नहीं? यह विचारणो, वाच्य, तो न बनै, क्योंकि सजातीयादि भेदशून्य सर्वधर्महीन निर्विशेष ब्रह्म शब्दको वाच्य तुम्हारे अंगीकार नहीं, वाक्यमात्रको किंचित् धर्मावच्छिन्न वस्तु प्रतिपादनको नियम है। अरु जो वाच्य है तो द्वैतापत्ति भई। जो कहो वाच्य नहीं, सोऊ बनै नहीं। क्योंकि सर्वप्रमाणशून्यवस्तुकों शशशृंगतुल्यता भई अरु अवस्तुकोटिमें गयो। वाच्य मानैं तो

१ नेन्द्रियाणि नानुमानम्।

प्रत्यक्षादि प्रमाणको विषय होयगो। सो हमारी इष्टापत्ति भई । अरु हमारे मतमैं प्रवेश भयो । अरु अपसिद्धांत भयो । अरु भेदवाक्य षट्लिंगोपेत हैं यह वृहदारण्यकके अंतर्यामिब्राह्मणमैं प्रतिपादन है, यथा "तू अंतर्यामीको जाणत है" यह उपक्रम है। "यह तुम्हारो आत्मा अंतर्यामी" यह उपसंहार है । १ । " यह तेरो आत्मा" यह इकीस वेर अभ्यास है । २ । "अंतर्यामी रूपकरकै अप्राप्त" यह अपूर्वता है ।३। "सो निश्चय करकै ब्रह्मवित् है" यह फल है । ४ । "तू याज्ञवल्क्यसूत्रको नहीं जानै है, अंतर्यामी ब्रह्मकी अवज्ञा करतहै। मूर्द्धा तेरो गिरैगो" यह निंदारूप अर्थवाद है । ५ । "जाको पृथिवी शरीर है जाको पृथिवी नहीं जानै है" यह उपपत्ति है । ६ । तैसैं और उपनिषदोंमैं भी विचारणो । कह्यो, जो हेतु ताको भेदवाक्यमैं व्यभिचार है. अनैकांतिक तथा हेत्वाभास है, यातें अनुमानको साधक नहीं, किन्तु बाधक है । प्रकरणार्थको उपसंहार करत हैं । तातैं (पूर्वोक्त हेतुतैं) अत्यन्तभेद वेदान्तको विषय है, क्योंकि भेदवाक्य हू प्रबल हैं । तहां शंका—अभेदवाक्यको बाधारूप दोष तुम्हारे सिद्धांत-

१ वेत्थ त्वं काऽप्यन्तर्यामिणमित्युपक्रमः । एप ते आत्माऽन्तर्यामीत्युपसंहारः । एप त आत्मेत्येकाविंशतिकृत्वोऽभ्यासः । अन्तर्यामिताया अप्राप्तत्वादपूर्वता । स वै ब्रह्मविदित्यादि फलम् । तच्च त्वं याज्ञवल्क्यसूत्रमविद्वांस्तवान्तर्यामिणं ब्रह्म गर्वाद्व्रजसे मूर्द्धा ते पतिष्यतीति निन्दारूपोऽर्थवादः । यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी न वेद इत्याद्युपपत्तिः ।

मैं भी समान है, इति। सो नहीं। अभेदवाक्य साम्यके प्रतिपादनकरकै कृतकृत्य हैं। तहां वादीकी शंका-द्वैतापत्तिदोषतें यद्यपि वेदको वाक्य ब्रह्म हमारे अंगीकार नहीं, किंतु लक्षणावृत्तिको विषय है। तातें निष्प्रमाणतादोषको अवकाश नहीं। तहां या प्रकार वाक्यार्थ है। कि, सर्व ज्ञानशक्त्यादिको आश्रय, विश्वनियंता, जगज्जन्मादिकारण ब्रह्म तत्पदार्थ है। बुद्ध्याद्यवच्छिन्न चेतन जीव क्षेत्रज्ञादिशब्दवाच्य त्वंपदार्थ है। उभयानुस्यूत अभिन्न सामान्य सत्ता असि पदार्थ है। या प्रकार तत्त्वंपदार्थको विरुद्धधर्मविशिष्टता करकै अभेद बनै नहीं। सो यथा सोई[1] देवदत्त है, या प्रतीतिमैं काश्यादिदेश अरु भूतकालविशिष्टको वर्त्तमान देशकालविशिष्ट देवदत्तसहित अभेद संबंध बनै नहीं, क्योंकि परस्पर विरुद्ध हैं। तातें भागत्यागलक्षणा करकै ताके पिंडमात्रको ग्रहण है, अरु उभय देशकालविरोधी विशेषणको त्याग है। तैसैं उभयपदार्थवृत्ति परस्पर विरोधी शक्यको एकदेश सार्वज्ञादि अरु अल्पशक्त्यादिविशेषणको त्याग करकै उभयानुगत अखंड चैतन्यकरकै उभयपदार्थको अभेदान्वय है, इति। सो नहीं "जो सर्वज्ञ[2] है, सत्यकाम,

---

१ सोऽयं देवदत्तो यः काश्यां दृष्टः। २ यः सर्वज्ञः सर्ववित्, सत्यकामः सत्यसंकल्पः, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च, सर्वनामा सर्वकर्मा सर्वलिङ्गः सर्वकामः सर्वधर्मः सर्वरूपः।

सत्यसंकल्प है। जाकी स्वाभाविकशक्ति ज्ञान बल क्रिया है, सर्वनाम सर्वकर्म सर्वलिंग सर्वकाम सर्वधर्म सर्वरूप है" इति श्रुतिकरकै तत्पदार्थके " अरे ! यह आत्मा अविनाशी है याके धर्मनको उच्छेद नहीं, द्रष्टाकी दृष्टिको लोप नहीं, जातैं अविनाशी है । श्रोताकी श्रवणशक्तिको लोप नहीं, जातैं अविनाशी हैं, मंताकी मननशक्तिको लोप नहीं, जातैं अविनाशी है" इत्यादि श्रुतिकरकै त्वंपदार्थके धर्म स्वाभाविककरकै कण्ठसों पुकारे। दोऊ पदार्थके वे धर्म त्याग करणेकों शक्य नहीं, क्योंकि ~ मैं प्रमाण कोऊ नहीं । तहां शब्द प्रमाण तो नहीं, क्योंकि अप्रसिद्ध है । जो कहो "यामैं नाना नहीं, मृत्युके अनन्तर मृत्युको पावै, जो यामें नाना देखत है" यह श्रुति प्रमाण है इति । सो नहीं । तिन श्रुतिको निरतशय बृहत्स्वरूप गुण शक्ति ब्रह्मपदार्थ भगवान्को एकत्वविषय है । सो हमारै इष्टापत्ति है । जो कहो ब्रह्मके धर्म निषेधपर यह श्रुति है, "केवल निर्गुण है" या श्रुतिके सहित एकार्थ होनेतैं, इति । सो नहीं । अत्यन्त असंभव है अत्यादरसों नित्य स्वभावसिद्ध गुणनको प्रतिपादनकरकै फेर ताके निषेधमैं सर्वज्ञश्रुतिकी

---

१ अविनाशी वारे ! अयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा, न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । २ नेह नानाऽस्ति किञ्चन, मृत्योः स मृत्युमाप्नोति, य इह नानेव पश्यति । ३ केवलो निर्गुणश्च ।

प्रवृत्ति बनै नहीं, क्योंकि उन्मत्तके वाक्यकी तुल्य श्रुतिकी अप्रमाणता तथा अनाप्तता होयगी। जो कहो अन्यथा निर्गुणवाक्यको विरोधप्रसंग होयगो। सो नहीं। ताको विषय प्राकृतगुणको निषेध है। अरु "यह आनंदकी मीमांसा"[1] यह आरंभकरकै मनुष्य आनंदतें लेकै चतुर्मुखके आनंदपर्यंत उत्तरोत्तर शतगुण आनंदको विस्तारकरकै सबको परिच्छिन्नता निर्णयकरकै "जातें मन संहित वाणी नहीं पायकै निवृत होतहै ऐसो अपरिच्छिन्न ब्रह्मके आनंदगुणको विद्वान् काहूते भय नहीं करतहै" या श्रुतिकरकै ब्रह्मके आनंदरूप गुणको अपरिच्छिन्न कह्यो। अरु सर्वभयनिवृत्तिरूप मोक्षदानकी सामर्थ्य कह्यो तैत्तिरीयोपनिषदमैं। ऐसें गुणनको तुच्छ कहनहार देवतनकोप्रिय पंडितमानी मोक्षविधायक वाक्यकी बाधा क्यों नहीं विचारै है? तातें ब्रह्मके धर्मनिषेधमैं शब्दप्रमाण नहीं है, यह सिद्ध भयो। अरु तर्कहू प्रमाण नहीं है। "यह दुष्टा मति तर्ककरकै नाश करवेकों योग्य नहीं"[2] या श्रुति करकै "अचिंत्य जो भाव है तिनको

१ किञ्च "एषाऽऽनन्दस्य मीमांसा" इत्युपक्रम्य मनुष्यानन्दप्रभृतिचतुर्मुखानन्दावसानमुत्तरोत्तरशतगुणानन्दान्प्रपंच्य,सर्वेषां परिच्छिन्नानन्दाश्रयत्वञ्च निर्णीय, "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन" इति मन्त्रेण ब्रह्मण आनन्दलक्षणगुणस्यापरिच्छिन्नत्वेन तस्य सर्वभयनिवृत्तिरूपमोक्षप्रदानशक्तियोग उक्तस्तैत्तिरीये। २ नैषा मतिस्तर्केणापनेया। ३ अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।

तर्कसों योजना न करै" या स्मृति करकै "ब्रह्ममें तर्ककी प्रतिष्ठा[1] नहीं" या सूत्रकरकै तर्कको निषेध कर्‍यो है । श्रुतिमूलहीन तर्क प्रमाग नहीं । वायुको स्पर्श, तेजको औष्ण्य, जलके शैत्यको कोऊ अनुन्मत्त पुरुष तर्कमें निपुण दूर करणेकों समर्थ नहीं । क्योंकि वे स्वाभाविक धर्म हैं । तैसेही ब्रह्मधर्मनिषेधकरणेको कोई समर्थ नहीं, क्योंकि स्वाभाविक हैं । अरु तत्त्वमादिपदको लक्ष्य पदांतरको वाच्य है? अथवा नहीं ? वाच्य तो बनै नहीं । जातें द्वैतापत्ति प्रसंग भयो । अवाच्यहू बनै नहीं । क्योंकि अप्रमाणताकरकै शशशृंगसदृश तुच्छ भयो । जो कहो, ताहूको लक्ष्य[2] है । सो नहीं, अनवस्थाप्रसंग भयो । अरु दृष्टांतविरुद्ध भयो, 'सोई देवदत्त[3] है' या दृष्टांतमें देशको अनित्यसंबन्ध है,तातें हेय है । पिंडमात्र शक्यको एकभाग अनेक विशेषवान् है,

---

१ तर्काप्रतिष्ठानादित्यादि । २ । १ । ११ ॥ २ न च तस्यापि लक्ष्यत्वान्नोक्तदोष इति वाच्यम्, लक्ष्यस्य लक्ष्यत्वेऽनवस्थापत्तिप्रसङ्गात् । ३ किञ्च 'सोऽयं देवदत्त' इति दृष्टान्ते देशकालयोरनित्यसंबन्धत्वाद्धेयत्वं,पिण्डस्य च शक्यैकभागस्य रूपाद्यनेकविषयवत्त्वात् पिण्डशब्दवाच्यत्वाच्चोपादेयत्वम् । एवं हेयत्वोपादेयत्वयोः संभवाद्भागत्यागलक्षणा कल्पते, ब्रह्मणि प्रकृते तु धर्मधर्मिणोः स्वाभाविकसंबन्धश्रवणान्न हेयता । लक्ष्यभागस्य च निर्विशेषत्वाच्च नोपादेयत्वम् । एवं हेयोपादेययोरभावान्न भागत्यागलक्षणासंभवः, विषमदृष्टान्तत्वात् ॥ वाच्यत्वलक्ष्य त्वयोः सामानाधिकरण्यनियमाच्च ।

पिंडशब्दको वाच्य है, तातें उपादेय है। दृष्टांतमें हेय अरु उपादेयभाग प्रमाणसिद्ध है, तातें जहदजहल्लक्षणा बनै है, सो दार्ष्टान्तमें नहींहै, धर्मधर्मीको सम्बन्ध नित्य स्वाभाविक श्रुतिप्रमाणकरकै सिद्ध है, ताको त्याग बनै नहीं, तातें हेयभागकी सिद्धि नहीं, अरु लक्ष्यभाग सर्व-विशेषशून्य काहू प्रमाणको विषय नहीं, तातें उपादेयभागकी सिद्धि नहीं है। अतः हेयोपादेयभागकी सिद्धि विना जहदजहल्लक्षणा कैसें बनै सो तुम्ही विचारो। तातें सर्वथा विषम दृष्टांत है। लक्ष्यको वाच्यसहित नित्य साहचर्य है, तातें तत्त्वमसिके अर्थमें लक्षणा बनै नहीं। अरु यही न्याय "सत्यज्ञानादि" श्रुतिके अर्थमें तुल्य है। सत्यादिवाक्यको शक्य ब्रह्म है? अथवा नहीं? जो कहो शक्य है, तो न बनै क्योंकि द्वैतापत्तिप्रसंग भयो। तातें दूसरो पक्ष मानकै पूर्वकी नाईं लक्षणा तुमको अंगीकार करणा पडेगा। तहां सत्यादिवाक्यमें कोनसी लक्षणा सो विचारणो, जहल्लक्षणा अथवा अजहल्लक्षणा अथवा जहदजहल्लक्षणा। जहत् तो बनै नहीं, क्योंकि जैसें "गंगामें घोष है" यहां शक्य प्रवाहको त्याग है, अरु गंगातें विपरीत जो तीर ताको ग्रहण है। तैसें सत्यादिवाक्यमें सत्यको

---

१ गंगायां घोषः इत्यत्र शक्यस्य प्रवाहस्य त्यागात्तीरस्याशक्यस्य कल्पनावत् सत्यज्ञानानन्तानां पदार्थानां शक्यभूतानां त्यागादसत्यमज्ञानं परिच्छिन्नं ब्रह्म, इत्येतद्वाक्यार्थोऽभ्युपगतः स्यात् ।

त्यागकर असत्यमें लक्षणा भई । अरु ज्ञानकी अज्ञानमें, अनंतकी परिच्छिन्नमें लक्षणा भई । तब असत्य, अज्ञान, परिच्छिन्न ब्रह्म यह वाक्यको अर्थ तुम्हारे अंगीकार भयो । अजहल्लक्षणाभी बनैनहीं, क्योंकि द्वैतापत्तिप्रसंग भयो अरु परमत प्रवेश भयो । जहदजल्लक्षणाहूं बनै नहीं, क्योंकि पूर्वप्रकारकरकै हेयउपादेयभागकी सिद्धि नहीं । अरु मुख्यतो निर्धर्मक वस्तुमैं संबंध कोऊ बनै नहीं अरु सम्बन्ध विना लक्षणा कैसैं बनैं । जो कहो शाखाचन्द्रन्याय[1]करकै कल्पित संबंध हमारे अंगीकार है, तातें लक्षणा बनैगी । सो नहीं । विषम दृष्टांत है । दृष्टांतमैं शाखा अरु चंद्र दोनोंका सम्बन्ध प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध है । अरु अनेक धर्मवान् है, तातें सम्बन्धकी कल्पना बनै है । दार्ष्टांतमें सर्वविशेषशून्य सर्वप्रमाणको अविषय शशशृंगकल्प वस्तुमें संबंधकल्पना बनै नहीं । अरु सिद्धांतमें तो शाखाचंद्रको संबंध यथार्थ है, कल्पित नहीं । क्योंकि चंद्रकी किरणनसहित शाखाको संयोग प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध है, सो अन्धेको सूझत नहीं । अधिक क्या कहणा, वाक्यके अंगीकार विना सर्वथा

---

१ न च शाखाचन्द्रन्यायेन कल्पितसम्बन्धेनापीष्टार्थसिद्धिरिति वाच्यम्, विषमदृष्टान्तत्वात् । तथा हि शाखासम्बन्धिनोः प्रत्यक्षप्रमाणगोचरत्वेनानेकधर्मवत्त्वेन च सम्बन्धित्वकल्पनायोग्यत्वात् । दार्ष्टान्तिके ब्रह्मणि तु सर्वविशेषशून्यतया सर्वप्रमाणाविषयत्वान्न शशशृंगकल्पे वस्तुनि सम्बन्धित्वकल्पनावकाशः इति । किं बहुना, वाच्यत्वानभ्युपगमे सर्वथा लक्षणानुपपत्तिरेव, वाच्यस्यैव लक्ष्यत्वनियमात् ।

लक्षणा बनै नहीं, क्योंकि वाच्य अरु लक्ष्यको एकाधिकरण नियम है। लक्ष्य निर्वाच्य नहीं, जातें शब्दार्थ है, जो जो शब्दार्थ है सो सो वाच्य है। जैसें गङ्गामें फूले द्रुम, यह अनुमान यामैं प्रमाण है। तातें चेतनाचेतनरूप विश्वतें अत्यन्त भिन्न ब्रह्म शास्त्रको विषय है, इति। तहां विशिष्टाद्वैतवादी ताको खंडन करतहैं। यह सिद्धांत रमणीय नहीं, जातें अभेदश्रुतिनको सर्वथा अर्थ त्यागकरकें बाध प्राप्त भयो। अरु "ताको सर्वधर्म त्यागत हैं जो आत्मातें भिन्न सबकों जाणै" इत्यादि श्रुतिमैं भेदवादीकी निंदा प्रसिद्ध है। ऐसें परमतमें दूषण दिखायके अपनों सिद्धांत प्रतिपादन करतहैं। तातें चेतनाचेतनवस्तुमात्र ब्रह्मको विशेषण है तिनकरकै विशिष्ट एक सर्वज्ञ सर्वशक्ति, अवधि अरु अतिशयरहित अनंतकल्याणगुणाकर ब्रह्म वेदांतशास्त्रको विषय है। अरु चेतनाचेतन दोऊ ब्रह्मके विशेषण तातें भिन्न हैं। तातें तिनके गुणनको सांकर्य नहीं इति। तहां या प्रकार वाक्यार्थ है। तत्त्वंपदके समानाधिकरणकरकै जीवविशिष्ट ब्रह्म कह्यो। तामैं जो पूर्व देहादिको अधि-

---

१ लक्ष्यं, न निर्वाच्यं, शब्दार्थत्वात्। कुसुमितद्रुमा गङ्गेतिवत्। २ तत्सर्वं परादाद्य आत्मनोऽन्यत्र सर्वं वेद। ३ तत्पदं जगत्कारणभूतं सकलकल्याणगुणगणाकरं निर्विकारमाचष्टे, त्वमिति च तदेव ब्रह्म जीवान्तर्यामिरूपेण स्वशरीरं जीवमाचष्टे इत्यादि।

ष्ठातारूपकरकै प्रतीति भयो सो परमात्माको शरीर है, याहीतें ताको (परमात्माको) विशेषण है । तातें (ब्रह्मतें) अपृथक्सिद्ध है । ताकरकै विशिष्ट ताको अंतर्यामी त्वं-पदको अर्थ है। "या जीवकरकै सहित अनुप्रवेशकरकै मैं नामरूप प्रकटकरूं" यह श्रुति है । तदात्मकता-करकै जीवको शरीरी अपने नामको भजनहार है, तत्त्वं ये दोऊ समानाधिकरणकरकै प्रवृत्त दोऊ पदको अर्थ ब्रह्मही वाच्य है। तहां तत्पद जगत्कारण सकल कल्याणगुणसागरको प्रतिपादन करतहै । अरु त्वंपद सो ब्रह्म जीवांतर्यामिरूपकरके स्वशरीर जीवको वाचक है। ता करकै विशिष्ट वाक्यको अर्थ है, इति । या प्रकार ताके मतको अनुवादकरकै अब सिद्धांती निरास करनेको आरंभ करत हैं । यहां हम (सिद्धान्ती) बोलत हैं, यह सिद्धांत रमणीय नहीं जातें सुरस नहीं । सुरस-शून्यताकों प्रकट करतहैं ।अन्य व्यावर्त्तकको विशेषण कहत हैं, यह सर्वमतवादीके संमत विशेषणको लक्षण है । तहां चेतनाचेतन दोऊ ब्रह्मके विशेषणकरके स्वीकार करनेतें तिन दोऊ विशिष्ट ब्रह्म कोणतें व्यावृत्त भयो, क्योंकि दोऊ विशेषणको व्यावर्त्य कौण है,सो आप विचार करैं । चेतनाचेतन अपने आप व्यावर्त्तक हैं ?

---

१ अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि । १ अन्यव्यावर्त्तकत्वं तावद्विशेषणत्वमिति लक्षणस्य सर्ववादिसंमतत्वात् ।

ऐसें जो कहो तो बनै नहीं, अत्यंत असंभव होनेतें । एकको व्यावर्त्त्य व्यावर्त्तकता बनै नहीं, जैसें कर्म कर्तृता । अरु वस्तु अंतर कोऊ है नहीं, जो व्यावर्त्त्य होय । क्योंकि तीन तत्त्वतें अधिक तुम्हारे मतमें अंगीकार नहीं । तहां शंका-चेतनविशिष्टको अचेतनविशिष्ट व्यावर्त्त्य है । अरु अचेतनविशिष्टको चेतनविशिष्ट व्यावर्त्त्य है । तातें दोषको अवकाश नहीं इति । सो नहीं । तुम्हारे मतमें विशिष्ट एक अंगीकार है, अन्यथा विशिष्टाद्वैतको सिद्धांत भंग भयो । अरु चेतन अचेतनको परस्पर व्यावर्त्त्य व्यावर्त्तक माननेतें दोऊको सफलता भई सो सांच, यामें विवाद नहीं, परंतु उभयविशिष्टको व्यावर्त्त्यको अभाव तो कोऊ नहीं यातें दोष बन्यो रह्यो और दोषांतर कहत हैं । अरु भोक्ता भोग्य नियंता तीनोंको स्वभाविक तुम मानते हो, तैसें विशिष्टको अभेद भी मानतेहो, भोक्ता भोग्य नियंताको स्वाभाविक भेद तुम्हारे श्रीमुखकरके सिद्ध भयो । अरु स्वाभाविक-भेदाभेद हमारो सिद्धांत है, सो तुम्हारे मुख सिद्ध भयो, यातें विशिष्टको अंगीकार गौरव मात्र है । स्वाभाविकभेद विशिष्टाद्वैत तुम्हारे सिद्ध भयो । अरु स्वाभाविक भेदा-भेद हमारें अंगीकार है यामें लाघवगौरव आपही विचार करें । जो स्वभाविक भेद न मानो तो तीनों (भोक्ता, भोग्य, नियन्ता) को स्वभावसांकर्य होयगो ।

यथा भोक्तामें भोग्यके धर्मनको सत्त्व, रज, तम, अरु विकारादिकोंको अरु सर्वज्ञान सर्वशक्ति नियंताके धर्मनको प्रवेश भयो।अरु भोक्ताके ज्ञानादि अचेतन भोग्यमें अरु नियंतामैं प्रवेश भये अरु अचेतनके सत्त्वादिगुण अरु परिणामादि दोषोंको जीव अरु ब्रह्ममें प्रवेश भयो अरु ब्रह्मके धर्म सर्वज्ञता नियंतृता शास्त्रयोनितादि जीव अरु अचेतनमें प्राप्त भये, तातें बडे दोषको संघात प्राप्त भयो यह तात्पर्य है। अतः गौरवको त्यागकरकै लाघवको आश्रय करै, यह लौकिक न्यायानुसार भेदको अंगीकार करकै विशिष्टको अंगीकार गौरवमात्र है। तातें स्वाभाविकभेदाभेद लाघव है। अतः चेतनाचेत्तनरूप जगत् भिन्नाभिन्नस्वभाव ब्रह्म वेदांतशास्त्रको विषय है। सोई जिज्ञासासूत्रमैं भगवान् बादरायणको तात्पर्य है। तातें सोई वैदिकनको सिद्धांत है। याको यह भाव है। शास्त्रमैं वाक्य अनेकविध हैं। भेदके अरु अभेदके अरु भेदनिषेधके अरु अस्थूलादि । तामैं "हे सौम्य! आगे एक सद्रूप होत भयो आत्मा एकही आगे होतभयो, एकही नारायण होत भयो, सो तू है, यह आत्मा ब्रह्महै,

१ गौरवं तु परित्यज्य लाघवं च समाश्रयेदिति लौकिकन्यायात्। २ सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, एकमेवाद्वितीयम्, आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, एको ह वै नारायण आसीत्, तत्त्वमस्यमात्मा ब्रह्म, आत्मैवेदं सर्वं, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते, अहं वै त्वमसि देवते, तदात्मानमेवावेदाहं ब्रह्मास्मीति, तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः, इत्यादीनामभेदवाक्यानाम्।

है, यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म है, हे देवते ! तू मैं हूं, मैं तू है, तू आत्माको जाणत भयो, मैं ब्रह्म हूं, कार्य कारणतें न्यारो नहीं, जातें आरंभणश्रुति " प्रमाण है, इत्यादि अभेद वाक्य हैं। "नित्यनमें नित्य है, चेतननमें चेतन है, बहुतनमें एक हैं, एक ज्ञाता, एक अज्ञ है, दो हैं, अरु अजन्मा है, एक ईश है, एक अनीश है, एक अज कर्म सेवन करता हुआ सोवत है, दूसरो अज ईशकृपातें याको त्याग करत है, ब्रह्मादिकके सेव्य ईश्वरको जब आपतें भिन्न देखत है तब शोक नाशकरके ताके महत्त्वको पावत है, आत्माको भिन्न अरु नियंताको भिन्न जानके अमृतको पावैहै, प्रधान अरु क्षेत्रज्ञको पति है, गुणनको नियंता है, अक्षरतें परे है, तामें सब लोक आश्रित हैं, याके भयतें पवन चलत है, याके भयतें सूर्य उदय होतहै, याके भयतें अग्नि अरु चंद्र अरु मृत्यु सदा धावत हैं, जाको धीर (पुरुष) भूतयोनि कहतहैं, यह सर्व स्थावर जंगमकी योनि है, सर्वलोकनको अपनी

---

१ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्, ज्ञाज्ञौ, द्वावजावीशानीशौ, अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः, जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं तन्महिमानमिति वीतशोकः, पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति, प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः, अक्षरात्परतः परः, तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे, भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः, भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः, यद्भूतयोनिं प्रवदन्ति धीराः, एष योनिः सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च, सर्वांल्लोकानीशते ईशनीभिः।

शक्तिसों नियमन करत है। सर्व नियन्ता, सर्वको शरण, सबको सुहृद, ईश्वरनको परमेश्वर, देवतनको परम देव, जाके समान अरु अधिक कोऊ नहीं, जाकी पराशक्ति नानाप्रकार सुनत है, स्वाभाविकी ज्ञान अरु बल अरु क्रिया, सर्वको वशी सबको ईशान है" इत्यादि-श्रुति तथा "वेदविवक्षित गुण ब्रह्ममें बनत हैं, सर्व धर्म तामें बनत हैं, सर्वशक्तियुक्त वह देवता है, जीवतें ईश्वर भिन्न है, जातें भेद कह्यो, जीवतें ईश्वर अधिक है जातें भेद कह्यो है" इत्यादिसूत्र, ये भेदके प्रतिपादक वाक्य हैं। "ताको सर्वधर्म त्याग करै जो आत्मातें सबकों भिन्न देखै" इत्यादि भेद निषेधके वाक्य हैं। "स्थूल नहीं, अणु नहीं, ह्रस्व नहीं, दीर्घ नहीं" इत्यादि निषेधविषयक वाक्य हैं। तिनको परस्पर बाध्यबाधकभाव कहसकत नहीं, क्योंकि सब वाक्य तुल्यबल

---

१ सर्वस्य प्रभुमीशानं, सर्वस्य शरणं सुहृत्, तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते, परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च, सर्वस्य वशी, सर्वस्येशानः, विवक्षितगुणोपपत्तेश्च । १ । २ । २ । सर्वधर्मोपपत्तेश्च । २ । १ । ३६ । सर्वोपेता च सा तद्दर्शनात् । २ । १ । ९ । भेदव्यपदेशाच्चान्यः । १ । १ । २२ । अधिकं तु भेदनिर्देशात् । २ । १ । २१ । इत्यादिभेदपराणाम् । २ सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद, इत्यादि भेदनिषेधपराणाम् । ३ अथात आदेशो नेति नेति, अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात्, अस्थूलमनणु, इत्यादिनिषेधविषयकाणां च वाक्यानां श्रवणात्तेषामितरेतरबाध्यबाधकभावो न वक्तुं शक्यः, तुल्यबलत्वात् ।

हैं। सो भेद अरु अभेदके वाक्य षड्लिंगोपेत हैं, यातें तुल्यबल हैं, यह पूर्व वर्णन कर्यो है। या प्रकार सर्व-वाक्यनकी स्वार्थसिद्धिके अर्थ भिन्नाभिन्न ब्रह्म श्रीसूत्र-कार निर्णय करतभये, अरु ताके घटक (भेदाभेदघटक) सूत्र प्रणयन करत भये, "जीव ब्रह्मको[1] अंश है, जातें नाना है। अरु अन्य शाखावाले याकों ब्रह्मरूप कहतहैं"। "भेदाभेद दोऊको कथन जैसें सर्प अरु कुण्डल[2]" इत्यादि भेदाभेदघटक सूत्र प्रमाण हैं। अब वाक्यार्थ कहत हैं,

---

१ अंशो नाना व्यपदेशात्, अन्यथा चापि दासकितवादित्वमधीयते एके। २। ३। ४२। अंशांशिभावाज्जीवपरमात्मनोर्भेदाभेदौ दर्शयति। परमात्मनो जीवोऽंशः, "ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ" इत्यादिभेदव्यपदेशात्। "तत्त्वमस्ययमात्मा ब्रह्म" इत्याद्यभेदव्यपदेशाच्च। अपि चैके शाखिनः आथर्वणिकाः "ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मेमे कितवाः" इत्येवं ब्रह्मणो दासकितवादित्वमधीयते। इति सूत्रार्थो वेदान्तपारिजाते उक्तः। २ उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत्। ३। २। २७। मूर्त्तामूर्त्तादिसर्वकार्यजातस्य ब्रह्माभिन्नत्वेऽपि तदभिन्नत्वम्। कुतः? उभयव्यपदेशात्, भेदाभेदव्यपदेशात्। "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, यः पृथिव्यां तिष्ठन्" इत्यादिभेदव्यपदेशात्। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्याद्यभेदव्यपदेशात्। तत्र दृष्टान्तमाह-अहिकुण्डलवदिति। सर्वत्र विवक्षितांशमात्रेण दृष्टान्ता उपादीयन्ते। कुण्डलोपादानभूतो रज्ज्वाकारोऽहिः कारणं, तत्स्थानीयं सर्वशक्त्युपेतं जगदभिन्ननिमित्तोपादानकारणं ब्रह्म। वलयाकारं कार्यभूतं कुण्डलं, तत्स्थानीयं कार्यभूतं मूर्त्तामूर्त्तादिकं विश्वम्। तत्र कुण्डलं परतन्त्रं व्याप्यं कार्यं च, अहिस्तदपेक्षया स्वतन्त्रो व्यापकः कारणञ्च। अतस्तयोर्भेदः। अहिव्यतिरेकेण कुंडलस्य स्थितिप्रवृत्त्यभावात्ततोऽभेदश्च। एवं प्रपञ्चस्यापि चिदचिच्छक्तिमद्ब्रह्मकार्यस्य कारणेन ब्रह्मणा सह भेदाभेदौ भवतः। इति सूत्रार्थो भाष्ये भाषितः श्रीभगवद्भाष्यकारैः।

"सो तू है, यह आत्मा ब्रह्म है, यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है" इत्यादि वाक्यमैं चेतनाचेतनको ब्रह्म तादात्म्य कहत-हैं। क्योंकि चेतनाचेतन दोऊ ब्रह्मात्मकहैं। अरु परमात्माके अधीन तिनकी स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति है, अरु ब्रह्मके व्याप्य हैं। तातें अभेदवाक्यकी स्वार्थमैं प्रमाणता सिद्ध भई। तामैं ब्रह्म जाको आत्मा ताकों ब्रह्मात्मक कहत हैं। "यह तेरो आत्मा अन्तर्यामी, यह मेरो आत्मा अन्तर्यामी, यह सर्वभूतनको अन्तर्यामी, यह सर्वभूतनको अंतरात्मा सर्वव्यापी, सर्वभूतांतरात्मा, विश्वको पति अरु आत्मा, अरु ईश्वर नारायण है" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। "ऋषि ब्रह्मको अपना आत्मा अंगीकार करत हैं अरु तैसेंही शिष्यनकों ग्रहण करावत हैं"। यह सूत्र है। "हे गुडाकेश! सर्व भूतमैं स्थित सबको अन्तरात्मा मैं हूं। सर्वक्षेत्रनमैं क्षेत्रज्ञ मोकों जाण" यह भगवद्वचन हैं। "मैं अरु शिव अरु तुम सब नारायणात्मक

---

१ एष मे आत्माऽन्तर्यामी, एष सर्वभूतान्तरात्मा, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा, पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम्। २ आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च। ४। १। ३। "एष मे आत्मा" इति पूर्वे उपगच्छन्ति। "एष ते आत्मा" इति शिष्यान् ग्राहयन्ति। अतो मुमुक्षुणा परमपुरुषः स्वस्यात्मत्वेन ध्येयः। इति सूत्रार्थः। ३ अहमात्मा गुडाकेश! सर्वभूताशयस्थितः। ४ क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि। ५ अहं भवो भवन्तश्च सर्वे नारायणात्मकाः। इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः। वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च।

हैं, इंद्रिय मन बुद्धि सत्त्व तेज बल धैर्य क्षेत्र अरु क्षेत्रज्ञ सब वासुदेवात्मक हैं" इति भारतमें कह्यो है। इन पूर्वोक्तवाक्योंसे चेतन अरु अचेतनरूप जगत् ब्रह्मात्मक है; अर्थात् परब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम सर्वात्मा है, यह सिद्ध भयो । सोई ब्रह्म स्वतंत्रसत्ताको आश्रय है। अपने आधीन याकी स्थिति प्रवृत्ति सो स्वतंत्रसत्त्वहै[1]। नियंतृत्वादिकी तुल्य स्वतंत्र सत्त्व ब्रह्मको असाधारण धर्म है। सो स्वतंत्रसत्त्वका भगवत् ब्रह्म नारायणादिशब्दको वाच्य पुरुषोत्तम श्रीकृष्णमें अन्वय है। सोई सबको नियंता है। अरु नियंतृत्व-स्वतंत्रसत्त्वको सामानाधिकरण्य नियम है[2]। "हे सौम्य! आगे सत्[3] होत भयो, हे गार्गि! या अक्षरके शासनमें सूर्य चंद्रमा सदा वर्तें हैं, याके भयतें पवन चलत है, आत्मा परम स्वतंत्र है, ताके सम अरु अधिक कोऊ नहीं, कारणनको कारण है, अधिपनको अधिप है, ताको जनक अरु अधिप कोऊ नहीं" इत्यादि श्रुति हैं। "सर्वके हृदयमें मैं हीं संनिविष्ट हूं, मोहीतैं स्मृति

---

१ स्वतन्त्रसत्त्वं चात्मतन्त्रत्वे सति स्वायत्तस्थितिप्रवृत्तिकत्वं नियन्तृत्वादिवद-साधारणधर्मविशेषः। २ नियन्तृत्वस्वतन्त्रसत्त्वयोः सामान्याधिकरण्यनियमात् । ३ सदेव सौम्येदमग्र आसीत्,एतदक्षरस्य प्रशासने गार्गि! सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः, भीषाऽस्माद्वातः पवते, आत्मा हि परमस्वतन्त्रोऽधिगुणः, न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते, सकारणं कारणाधिपाधिपः, न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ।

अरु ज्ञान अरु अपोहन[1] होतहै, बुद्धि ज्ञान असंमोह क्षमा सत्य दम शम भूतनकों ये मोहीतें पृथक् होतहैं" यह अन्वयव्यतिरेकके वाक्य हैं।वही पूर्वोक्त सर्वात्मता ग्रहण करकै अभेदवाक्यकी प्रवृत्ति है। या प्रकार सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णको आत्मीय, नियम्य अरु परतंत्रसत्ताको आश्रय, चिदचिद्रूप विश्वहै। पराधीन स्थिति प्रवृत्ति जाकी ताकों परतंत्रसत्त्व कहत हैं। सो परतंत्र सत्ताको आश्रय नियम्यवर्ग है। सो ताको असाधारण धर्म है। "जो होतभयो सो ताके अधीन[2] होत भयो, ताके भानके पीछै सब भान होतहै, ताकी भासा करकै सब भासतहैं" इत्यादि श्रुति प्रमाण है। "सुर असुर[3] गंधर्व यक्ष उरग सहित यह चराचर जगत् श्रीकृष्णके अधीन है, मोहींतें सर्व प्रवृत्त होतहै" इत्यादि स्मृति प्रमाण हैं। परतंत्र सत्ता दो प्रकार है, कूटस्थ अरु परिणामी। जन्मादि[4] विकारशून्य अरु सदा एकरस सो कूटस्थ सत्ता है। ताको अधिकरण क्षेत्रज्ञादिशब्दवाच्य चेतनवस्तु है, (अर्थात् जीव है) यामें "एक अजमायाकों सेवन कर-

---

१ सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च। बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः। भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः। २ यदासीत्तदधीनमासीत्, तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। ३ ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्। जगद्वशे वर्ततेऽदः कृष्णस्य सचराचरम्, मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते। ४ कौटस्थ्यं नाम जन्मादिविकारशून्यत्वे सति शाश्वतम्।

त है, दूसरो अज भुक्तभोगा मायाको त्याग करत है, विपश्चित् जन्मै मरै नहीं" इत्यादि श्रुति तथा—"अज है नित्य है, सदा एक रस है, पुराण है, शरीरके नाशतें याको नाश नहीं होत है" इत्यादि स्मृतिप्रमाण हैं विकारी होयके जो नित्य होय सो विकारी सत्ता कहिये। ताको अधिकरण मायाप्रधानादिशब्दवाच्य अचेतन-वस्तु है। "अजा है एक है,सत्त्व रज तम गुणमयी है, प्रकृति अनाद्यन्तवती है" इत्यादिश्रुति यामें प्रमाण हैं, "त्रिगुण है जगत् योनि है, अनादि अरु अनन्त है। अचेतन है परार्थ है नित्य है सदा विकारी है, हे मुनि-श्रेष्ठ ! यह जगत् अक्षय है नित्य है, आविर्भाव तिरोभाव जन्म नाशादिमान् है" इति स्मृति प्रमाण है। परतंत्र-सत्ताको विषयकरकै भेदशास्त्रकी प्रवृत्ति है। परतंत्रसत्ता तिनको विषय है। ऐसे चेतनाचेतन जगद्वृत्ति स्वतंत्र-

---

१ अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, न जायते म्रियते वा विपश्चित्। २ न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। ३ विकारवत्त्वे सति नित्यत्वं विकारित्वम्। ४ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, गौरनाद्यन्तवती। त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम्।अचेतना परार्था च नित्या सततविक्रिया।तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्।आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत्। ६ तथा च परतन्त्रसत्त्वविषयकत्त्वेन भेदशास्त्रस्य प्रवृत्तिः, तथैव तेषां नैराकांक्ष्यञ्च। ७ एवमेव भेदनिषेधपराणां चेतनाचेतनवृत्तिस्वतन्त्रसत्त्वनिषेधविषयकत्वेन, नेतिनेतीत्यादिनिषेधपराणां ब्रह्मणः सर्ववैलक्षण्यप्रतिपादनेन च तथात्वमिति निरवद्यम्।

सत्ताको निषेध भेदनिषेधवाक्यनको विषय है। अरु ब्रह्मको चेतनाचेतनजगत्सों विलक्षणता नेति नेति इत्यादि वाक्यको विषय हैं। ऐसें सर्ववाक्यनके स्वार्थकी सिद्धि भई, काहूकी बाधा नहीं। तहां तत्त्वमसि या महावाक्यमें सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, विश्वात्मा, परब्रह्म स्वतंत्रसत्ताको आश्रय तत्पदको अर्थ है। ताको आत्मीय तदात्मक परतंत्रसत्ताको आश्रय जीवात्माको वाचक त्वम्पद है। उभयपदार्थको सम्बन्धविधायक असिपद है। सो सम्बन्ध तदात्मक त्वम्पदवाच्यको तत्पदार्थके सहित भेदसहनशील अभेदरूप है। या प्रकार[1] विश्वात्मा परब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्ति स्वतंत्रसत्ताऽवच्छिन्न तत्पदार्थते अभिन्न तदात्मक चेतन त्वम्पदार्थत्वाऽवच्छिन्न सर्वांतर्यामी वासुदेव त्वम्पदार्थ है, यह वाक्यार्थ है। सो वाच्य (शक्य) है। तातें मुख्य है। क्योंकि ब्रह्म सर्वात्मा अरु स्वतंत्रसत्ताको आश्रय सर्वशब्दको वाच्य है। तहां वादीकी शंका, परब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम नारायणादिपदार्थ सर्वात्मा तत्पदको अर्थ है, यामें हमारे विवाद नहीं, क्योंकि यह सिद्धांत वैदिक है।

---

१ इत्थं विश्वात्मपरब्रह्मसर्वज्ञसर्वशक्तिस्वतन्त्रसत्त्वावच्छिन्नतत्पदार्थाभिन्नतदात्मकपरतन्त्रसत्ताश्रयचेतनत्वम्पदार्थावच्छिन्नसर्वान्तरात्मा वासुदेवस्त्वम्पदार्थोऽसीति वाक्यार्थः। स च शक्यत्वान्मुख्य एव, ब्रह्मणः सर्वात्मत्वेन स्वतन्त्रसत्त्वाश्रयत्वेन च सर्वशब्दवाच्यत्वात्।

परंतु जीवांतर्यामी त्वम्पदार्थ है. सो कैसे बनै ? क्योंकि त्वंपदको अर्थ जीवात्मा प्रसिद्ध है, इति । सो नहीं । जातें ब्रह्म विश्वात्मा सर्वशब्दको वाच्य है, सो कहत हैं सुनो । जैसें "अग्निशब्दतें ढक्प्रत्यय होय" या सूत्रमें अग्निपद अकारगकारादिसंघातशब्दको वाचक है । अरु "अग्निमें होम करै" या वाक्यमें अग्निपद हवनीय उष्णप्रकाश धर्माश्रय अग्निको वाचक है । दोऊ अर्थ ताके मुख्य हैं, जातें शक्य है, यह वैयाकरणको सिद्धांत है । तैसें चेतनाचेतनवस्तुमात्रके वाचक शब्द ता ता पदार्थके वाचक होयके तिन सबको अन्तरात्मा परब्रह्म है ताहूके वाचक हैं, यामें विरोध नहीं । अरु जैसे ब्रह्मरुद्रादि-

---

१ यथा "अग्नेर्ढक्" इत्यत्राग्निशब्दोऽकारगकाराद्यवच्छिन्नानुपूर्वीकाग्निशब्दपरः । "अग्नौ जुहोति" इत्यत्र च स एवाग्निशब्दो दहनप्रकाशनादिधर्मावच्छिन्नपदार्थोपस्थापनपरः । एवमुभयार्थप्रतिपादकत्वं शक्यत्वात्तयोर्मुख्यमेवेति शाब्दिकानां राद्धान्तः । तथैवात्रापि सर्वेषां चेतनाचेतनवस्तुजातवाचकानां तत्तत्पदार्थवाचकत्वेऽपि तत्पदार्थान्तरात्मभूतब्रह्मपरत्वमविरुद्धं, सर्वात्मत्वात् । यथा चतुर्मुखादिशरीराणि तत्तदवच्छिन्नाः तत्तच्चेतयितारश्च चतुर्मुखादिशब्दवाच्यास्तेषां शक्या एव तैरभिधीयन्ते स्वशक्तिभिरेव, तथैव तेषां चतुर्मुखादिपिण्डतत्तदवच्छिन्नक्षेत्रज्ञाभिधानपरत्वेऽपि तस्य तत्तदन्तरात्मत्वाद्ब्रह्माभिधानपरत्वं प्रधानमेवेति सुशकं वक्तुमिति भावः । एतदभिप्रायमाश्रित्य वस्तुजातस्य ब्रह्मतादात्म्यमुद्घोषयन्ति श्रुतयः । "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्, नारायणः परो ध्याता ध्यानं नारायणः परः" इत्याद्याः ॥

शब्द चतुर्मुख त्रिनयनादि शब्दके शक्य हैं, अरु चतुर्मुखादिपदवीको अधिकारी चेतन ताही शब्दको शक्य है, मुख्यावृत्तिकरकै। तैसेही चतुर्मुखादि पिंड अरु तिनके शरीरी चतुर्मुखादिकनको अन्तरात्मा सर्वशब्दको अर्थ है, सो शक्यरूप है, लक्ष्यादि गौण नहीं। या अभिप्राय करकै वस्तुमात्रको श्रुतिसमुदाय ब्रह्मके सहित सामानाधिकरण्य प्रतिपादन करत है, सो कहतहै "भोक्ता भोग्य नियन्ताको मानके, सर्व त्रिविध ब्रह्म है, ध्याता नारायण है, ध्यानहूं नारायण है" इत्यादि । तहां शंका, पूर्वदृष्टांतमें कही जो अग्निशब्दकी उभयार्थवाचकता सो तो पाणिनीस्मृति प्रमाणकरकै सिद्ध है, किन्तु दार्ष्टांत तो प्रमाणहीन है, इति । सो तुच्छ है । क्योंकि "सर्व नाम ताही परमात्मामें[1] प्रवेश करतहैं" इत्यादि श्रुति यामें प्रमाण है। "ताहि हम नमस्कार करतहैं[2] जामैं सर्वशब्दकी नित्य प्रतिष्ठा है" यह स्मृति भी प्रमाण है। तातें भगवान् सर्वात्मा है अरु चेतनाचेतन विश्व तदात्मक है, अतः तादात्म्य उपदेश वनत है। अरु ब्रह्माधीनस्वरूपादिकी स्थितिप्रवृत्तिहेतुकरकै जगत्को ब्रह्मको तादात्म्य उपदेश वनत है। जो जाके अधीन है, सो ता सहित अभेद उपदेशके योग्य है, यह व्याप्ति छांदोग्यमैं कही है,

---

१ नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति । २ नमामः सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती।

प्राणेंद्रिय संवादमें । "वाक्, चक्षुः, श्रोत्र, मनको, वाक्[1], चक्षुः, श्रोत्र, मन कहिये नहीं, किन्तु प्राण कहिये है । वागादि संपूर्ण प्राणही है" इत्यादि श्रुतिकरकें । अरु जगत् ब्रह्मको व्याप्य है, तातें ब्रह्मसहित या जगतूको तादात्म्य उपदेश वनत है । "जो या जगतूमैं देखत सुनत हैं, ता सवको व्यापकै नारायण स्थित हैं" इत्यादि श्रुति नारायणकी व्याप्तिमैं प्रमाण है । जो जाको व्याप्य है, सो तातें अभिन्न कहनेकों योग्य है, जैसें पृथिवीते घटादिक ।"जो यह देवताको गण[3] तुम्हारें समीप आयो है सो तुम्हीं हो क्योंकि आप सर्वगत हैं" यह विष्णुपुराणमें ब्रह्माको वचन है । "तुम सबमैं व्याप्त हो तातें सर्व हो" यह अर्जुननें कह्यो है । या प्रकार सामान्यतें कह्यो तत्त्व विशेष सुननेकूं निर्णीतार्थमें शंका उठावतहै कि, स्वाभाविक भेदाभेदपक्षहूमें । ब्रह्मको स्वतः जीवभाव अंगीकारतें गुणकी नाईं[4] दोषहू स्वाभाविक

---

१ न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसीत्याचक्षते, प्राण एवैतानि सर्वाणि भवति । २ यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः । ३ योऽयं तवागतो देव ! समीपं देवतागणः ।. स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्वगतो भवान् ॥ सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः । इति घटकस्मृत्या व्याप्यस्य व्यापकाभिन्नत्वनिर्देशार्हत्वं प्रतिपादितम् । ४ यथा ब्रह्मणो गुणाः स्वभाविकाश्च श्रूयन्ते "स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया च " इत्यादिना, तथा जीवगतदोषा ब्रह्मण्येव स्वाभाविकाः स्युस्तयोरेकत्वादिति शंकातात्पर्यः ।

भये, दोनोंको एक होनेतें इति । सो नहीं । क्योंकि जीव अरु ब्रह्मको स्वरूपतें अभेद हमारे सिद्धांतमें नहीं । सो कहतहैं, ब्रह्म अरु चेतनाचेतनको स्वरूपकरकै भेद है, क्योंकि ये परस्पर अत्यंत विलक्षण हैं, तामैं प्रमाण कहत हैं श्रुति । "स्थूल[1] नहीं, अणु नहीं" इति । तामैं चेतन स्वरूपतें परिच्छिन्न है, तातें अणुकरकै निर्देश करवे योग्य हैं अरु अचेतनवस्तु स्थूलताकरकै निर्देशके योग्य है, जातें विविध रूप है अरु ब्रह्मको स्थूल अणुतें विलक्षण करकै निर्देशकरनेयोग्य है क्योंकि ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्य है । देशपरिच्छेद, कालपरिच्छेद, वस्तुपरिच्छेद, ये तीनप्रकार परिच्छेद हैं । तहां एकदेशमें रहकै देशांतरमैं जाको अभाव होय सो देशपरिच्छेदवान् है, जैसें घटादि । अरु जो एक कालमें होयकै जाको कालांतरमैं नाश होय सो कालपरिच्छेदवान् है, जैसें दीपादिक । जो वस्तुको परस्पर अन्योन्याभाव होय सो वस्तुपरिच्छेदवान् है । तामैं देश अरु वस्तुपरिच्छिन्न जीवात्मा है । अरु देश काल वस्तु परिच्छिन्न अचेतन है । ब्रह्म दोऊतें विलक्षण त्रिविधपरिच्छेदशून्य है । यातें ब्रह्मको अनंत कहत हैं । जीव अणुपरिमाण है, अचेतन जगत् स्थूल है । अरु परमेश्वर उभयविलक्षण है । या करकै भेदको प्रकार कह्यो । अब अभेदको प्रकार कहत हैं ।

---

१ अस्थूलमनण्वित्यादि ।

याही प्रकार ब्रह्मको अरु चेतनको अरु अचेतनको अभेद भी स्वाभाविक है। क्योंकि ब्रह्म सर्वात्मा है, अरु चेतनाचेतन जगत् तदात्मक (ब्रह्मात्मक) है। ब्रह्म सर्वाधार है अरु प्रपंच आधेय है। ब्रह्म व्यापक है अरु जगत् ताको व्याप्य है। ब्रह्म स्वतंत्रसत्ताको आश्रय है अरु जगत् परमेश्वराधीनसत्ताको आश्रय है। तातें ब्रह्मतें प्रपंच अभिन्न है। "यह सब भूतनको अंतरात्मा है, तामैं सब लोक आश्रित हैं। जो या जगत्‌मैं देखिये सुनिये है ता सबके बाहर भीतर व्यापके नारायण स्थित है। परमात्मा स्वतंत्र है, गुणकरकै अधिक है तातें उत्कृष्ट है" यह श्रुतियां क्रमकरके परमात्माके सर्वात्मतादिमैं प्रमाण हैं। अरु व्यतिरेककरकै चेतनाचेतरूप जगत्के तदात्मकतादिमैं प्रमाण हैं। अरु अनुमान हू है। जगत् ब्रह्मतें अभिन्न है, जातें ब्रह्मात्मक है। जो यदात्मक है सो तातें अभिन्न है, जैसैं मृत्तिकातें घटादि। १। जगत् ब्रह्मतें अभिन्न हैं, जातें ब्रह्मको आधेय है, जैसैं आकाशतें घटादि। २। जगत् ब्रह्मतें अभिन्न है, जातें ताको व्याप्य है, जैसैं वह्नितें धूम। ३। जगत् ब्रह्मतें अभिन्न है, जातें ब्रह्मके अधीन

---

१ एष सर्वभूतान्तरात्मा, तस्मिंल्लोकाः श्रिता सर्वे। २ यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः। आत्मा हि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः।

है, जैसैं प्राणतें इंद्रियगण इत्यादि । यहां पृथक् स्थिति प्रवृत्ति होनेके योग्य होय सो भिन्न कहिये है। ता प्रकार ब्रह्मतें भिन्न कोऊ नहीं। या प्रकार सामान्यकरके अभेद कह्यो, अब अपनो हृदयको तात्पर्य कहत हैं। जैसैं घट[2] द्रव्य है, पृथिवी द्रव्य है, यामैं द्रव्यतें घटको अभिन्न अरु पृथिवीको अभिन्न कह्यो है। सो मुख्यार्थ समानाधिकरण है, क्योंकि सामान्यतें पृथक् विशेष नहीं; द्रव्यात्मक होनेसे सामान्यद्रव्यते घट अरु पृथिवी पृथक नहीं, तैसैं सार्वज्ञ सर्वशक्त्यादि अनंत कल्याणधर्माश्रय परब्रह्मको तदात्मक चेतनाचेतनरूप जगत्-सहित सामानाधिकरण्य मुख्य है। यह तत्त्वमस्यादि-वाक्यनको अर्थ है । जैसैं घटत्वधर्मकरकै अवच्छिन्न

---

१ जगद् ब्रह्माभिन्नं भवितुमर्हति, तदात्मकत्वात्।यो यदात्मकः स तदभिन्नो दृष्टो, यथा मृदात्मको घटो मृदभिन्ननिर्देशार्हस्तद्वत् ॥ जगद्ब्रह्माभिन्नं भवितुमर्हति, तदाधेयत्वात् । यो यदाधेयः स तदभिन्ननिर्देशार्हः, यथा भौतिकं स्वकारणरूपाधिकरणमहाभूताभिन्ननिर्देशार्हं, तद्वत् ॥ जगद्ब्रह्माभिन्नं भवितुमर्हति, तदधीनत्वात् । यद्यदधीनं तत्तदभिन्ननिर्देशार्हं, यथा प्राणायत्त इन्द्रियगणस्तदभिन्ननिर्देशार्हस्तद्वत् ॥

२ यथा घटो द्रव्यं पृथिवी द्रव्यमित्यत्र द्रव्यत्वावच्छिन्नस्य घटत्वावच्छिन्नपृथिवीत्वावच्छिन्नयोश्च सामानाधिकरण्यं मुख्यं, विशेषस्य सामान्याभिन्नत्वनियमात् । तथैव सार्वज्ञ्याद्यनन्तकल्याणगुणावच्छिन्नस्यापरिच्छिन्नशक्तिवैभवस्य ब्रह्मणः स्वात्मकचेतनाचेतनवस्त्ववच्छिन्नतदन्तरात्माभिन्नत्वमपि सुव्यक्तम् । एतदर्थकानि तत्त्वमस्यादिवाक्यानीति तात्पर्यार्थः ।

घटादि द्रव्यत्वधर्मावच्छिन्न द्रव्यते पृथक् सिद्ध नहीं।जातें तदात्मक है, मुख्य समानाधिकरण हैं। तैसें सब जगत् ब्रह्महै या प्रयोगमें विश्वको अरु ब्रह्मको समानाधिकरणहू मुख्यहै, जातें शक्य है।ब्रह्म विना जगत्को अवस्थान पृथक् नहीं क्योंकि जगत् ब्रह्मात्मक है। यह याको भावार्थ है। तातें स्वभावहीतें निरस्तसमस्तक्लेशकर्मादिदोष, अनंत अचिंत्य स्वाभाविक नित्यकल्याणगुण शक्ति ऐश्वर्यको आश्रय विश्वके जन्म स्थिति नाशको कारण,शास्त्रप्रमाणकरकै वेद्य, मुक्तनको प्राप्य, परब्रह्म भगवदादिशब्दको वाच्य, भिन्नाभिन्नस्वरूप श्रीपुरुषोत्तम रमानिवास वेदांतशास्त्रको विषय है, यह सिद्धांत है।

दोहा-भिन्नाभिन्न विचार निज, संप्रदाय सिद्धांत ॥
वर्ण्यो या परिच्छेदमें, विषय सकल वेदांत ॥१॥

इति श्रीश्रुतिसिद्धांतरत्नाकरे वृन्दावनवास्तव्य पं० श्रीकिशोरदासकृत श्रुत्यादिटिप्पणीनिवेशनादिना परिवर्द्धिते वाक्यार्थनिरूपणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ २ ॥

---

१ घटो द्रव्यमित्यत्र घटस्य द्रव्यतादात्म्यं शक्यत्वान्मुख्यमेव, घटत्वावच्छिन्नस्य द्रव्यत्वावच्छिन्नं विना पृथक्स्थितिप्रवृत्त्यनर्हत्वात्, द्रव्यात्मकत्वात् । एवं विश्वं ब्रह्मेत्यत्रापि ब्रह्मतादात्म्योपदेशो मुख्य एव—शक्यत्वसाम्यात् । ब्रह्मविरहेण विश्वस्य पृथगवस्थानप्रवृत्तिनार्हत्वायोगाद् ब्रह्मात्मकत्वादिति भावः ।

अथ तृतीयपरिच्छेदः।

सोरठा—साधन कहूं विचार, मंजूषामैं जे कहे ॥
अधिकारी अनुसार, अनुष्ठान कर भव तरैं ॥ १ ॥

या प्रकार प्रथमपरिच्छेदमैं तत्त्वमादिपदार्थ निरूपण कर्यो। द्वितीय परिच्छेदमैं संप्रदायनिर्णयपूर्वक वाक्यार्थ सिद्धांत कह्यो। अब तृतीयपरिच्छेदमैं साधन वर्णन करत हैं। सो साधन अनेकप्रकार हैं, कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति, गुरुकी आज्ञानुवृत्ति, भेदकरकै। तामैं कर्मयोग त्रिविध है, नित्य, नैमित्तिक, अरु काम्य तामैं "प्रतिदिन संध्या उपासन करै, जबलौं जीवै तबलौं अग्निहोत्र करै" इति नित्यकर्त्तव्यकरकै जो कहा विधिमुखकरकै सो नित्य कर्म हैं, संध्योपासन, स्नान, जप, तर्पणादि। यज्ञ, दान, अध्ययन, त्रैवर्णिकाद्विजातिके साधारणधर्म हैं। याजन, अध्यापन, प्रतिग्रह, यह ब्राह्मणके असाधारणधर्म हैं। तामैं निष्काम होयकै जो अनुष्ठानकरै तो नित्य कोटिमैं है, अरु सकाम अनुष्ठान करै तो वृत्ति है, यह विभाग जानना। तहां याजनादिकरकै यावदेहयात्रानिर्वाह ग्रहणकरणो धर्म है, अधिकग्रहण प्रतिग्रहकोटिमैं है। अन्यथा भिन्न प्रतिग्रहको कथन बनै नहीं। याहीतैं षट्कर्मा ब्राह्मण अरु त्रिकर्मा क्षत्री अरु वैश्य, यह विवेक जाणिये। इंद्रियनिग्रह, तीर्थ-

---

१ अहरहः सन्ध्यामुपासीत, यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्।

सेवन, उपवास, फलाहार, देहशोषण, अन्नदानादिक सर्वको साधारण धर्म है । कर्तृत्वाद्यभिमानशून्य मुमुक्षुकरके आचरण किये ये अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानभक्तिके जनक होयकै परंपराकरकै मोक्षके उपयोगी हैं। सकाम अनुष्ठान करै तो सकामकोटिमैं अन्तर्भाव है, यह विवेक है। कोई कालादि विशेषको निमित्तकरकै वेदमैं कह्यो जो कर्म सो नैमित्तिक है, जैसैं श्राद्धादिक। "स्वर्गकी कामनाकरकै[1] पुत्र पशु ऐश्वर्यादिकी कामनाकरकै आचरण कर्यो जो धर्म सो काम्य है। तामैं काम्यको निषिद्धकी तुल्य संसारभ्रमणको साधन होनेतैं मुमुक्षु त्याग करै। अरु नित्य नैमित्तिकको भगवान्‌की आज्ञापालनात्मक भजनरूप होनेतैं अपने अपने वर्णाश्रमके अनुसार अनष्ठान अवश्य करैं। तामैं त्रिवर्णीको वैदिक कर्म कर्त्तव्य है। अरु एकजाति शूद्रको अपणे अधिकारकै अनुसार पुराणोक्त तर्पण अन्नदानादि, यह विशेष है॥ सो श्रीमुख गायो है "ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रनके कर्म विभक्तकरकै[2] शास्त्रमैं कहे हैं, तिनके स्वभावके अनुकूल

१ स्वर्गकामो यजेतेत्यादिना सकाममधिकृत्य विधीयमानानि काम्यानि।

२ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा गच्छति तच्छृणु॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

सत्त्वादि गुणकरकै । अपणे अपणे धर्ममैं रत होयकै मनुष्य सिद्धिकों पावत हैं, सो जैसैं सिद्धिकों पावैं हैं सो प्रकार मोतैं सुन । जातैं सर्वभूतनकी प्रवृत्ति होत है, अरु जानैं यह सब जगत् विस्तारो है, मानव अपणे कर्मकरकै ताहि अर्चनकरकै सिद्धिको पावै है" इति । वर्णाश्रमधर्मको त्याग श्रुतिप्रमाण हीन है यातैं संप्रदायी मुमुक्षु न करैं । सो विष्णुपुराणमैं कह्यो है, "[1] ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी ये चार आश्रम हैं, पंचम कोई बनै नहीं । वर्णाश्रमाचारवान् पुरुष विष्णुको आराधन करै, और विष्णुके तोषको कारण नहीं" इति । "[2] आचारहीनकों वेद पवित्र करै नहीं" यह उद्योगपर्वमैं सनत्सुजातने कह्यो है । "[3] श्रुतिस्मृतिनमैं कहे वर्णाश्रमधर्मको उल्लंघनकरकै स्वेच्छाचारी कूटयुक्तिनसों वरतै हैं ते निषिद्धकर्मके कर्त्ता मूढ युक्तिकहनैमैं दुर्मद हैं । ते पाषंडी दुःशील नरकके अधिकारी हैं" यह विष्णुधर्ममैं कह्यो है । अरु वर्णाश्रमधर्मको वैष्णवलक्षणमैं गणना करी है, यमगीतामैं । "जो अपने

---

१ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथाश्रमी । परिव्राट् च चतुर्थोऽत्र पञ्चमो नोपपद्यते ॥ वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् । विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोषकारणम् ॥ २ नाचारहीनं प्रपुनन्ति वेदाः । ३ श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णाश्रमविभागजम् । उल्लंघ्य ये प्रवर्तन्ते स्वेच्छया कूटयुक्तिभिः । विकर्माभिरता मूढा युक्तिप्रागल्भ्यदुर्मदाः । पाषंडिनस्ते दुःशीला नरकार्हा नराधमाः ॥

वर्णधर्मतें चलै नहीं सुहृद् विपक्ष[1] पक्षमैं समबुद्धि है। काहूको धन मनहूं करकै जो हरै नहीं अरु काहूकी हिंसा करै नहीं, और स्थिर जाको मन है, ताहि तू विष्णुभक्त जान" इति। जो ऐसो नहीं माने तो वैष्णवलक्षणकी हानि है, सो श्रीमुखकरकै स्मृतिमैं कह्यो है, "श्रुतिस्मृति मेरी आज्ञा हैं ताको उल्लंघन करै सो आज्ञोच्छेदी मेरो द्वेषी है मोकों भजतहू वैष्णव नहीं है" इति। "और नित्यकर्मको त्याग बनै नहीं, मोहवशकरकै जो त्याग करै सो तामस त्याग है" यह गान कर्यो है। वेदोक्त निज धर्मत्यागको राक्षसभाग प्रतिपादन कर्यो है, श्रीवामनजीने हरिवंशमैं-" वेदोक्त[4] धर्म-त्यागकरकै जो स्वेच्छाचारी है हे बलि! ताको धर्माचार तेरो भाग मैं दियो" इति। और वर्णाश्रमधर्मत्यागीको विष्णुपुराणमैं नग्नकोटिमैं कह्यो है। "हे मैत्रेय! ऋग्-यजुःसामसंज्ञा वेदत्रयी वर्णाश्रमको आवरण है, ताको

---

१ न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे। न हरति न च हन्ति किंचिदुच्चैः स्थितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम्॥ २ श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे ये उल्लंघ्य प्रवर्तते। आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥ ३ नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते। मोहात्तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः॥ ४ वेदोक्तं ये परित्यज्य धर्ममन्यं प्रकुर्वते। तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र! मत्प्रसादाद्भविष्यति॥ ५ ऋग्यजुःसामसंज्ञेयं त्रयीवर्णावृती द्विज!॥ एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी स्मृतः॥

(वर्णाश्रमको) जो मोहके वशतें त्यागकरै सो नष्ट पातकी है" इति । "और कोई नास्तिक[1]धर्मपरायण वैदिकधर्मके लोपकर्त्ता मूढ अरु मंद पण्डितमानी कलिमैं होयंगे" यह कलिधर्ममैं व्यासनै कह्योहै। यातैं सम्प्रदायी-वैष्णव वर्णाश्रमको त्याग न करैं।तहां शंका-"सब धर्मन-को त्यागकरकै मेरी शरणमैं आव" यहां सामान्यतैं कर्ममात्रको त्याग कह्यौ तब कैसें नित्यनैमित्तिकको अवश्यकर्त्तव्य है, इति । सो नहीं। यहां त्यागशब्द फल अरु कर्तृत्वाभिमानत्यागविषयक है, कर्मको स्वरूप त्याग नहीं । सो आपही गायोहै ।कर्मफलासंग[3]को त्याग करकैं जो कर्मप्रवृत्त होय सो अकर्त्ता है" इति ।"जो कर्मफल[4]त्यागी सो त्यागी है" । तहां आपही श्रीमुखकरकै कर्मको त्याग अरु ग्राह्यको निर्णय कह्यो है । "कर्ममैं संग अरु फलको त्यागकरकै यज्ञदानादि कर्म कर्त्तव्य है, हे अर्जुन ! यह मेरो निश्चित उत्तम मत है" इति । श्रीमुख निश्चय करयो अरु स्वीकार करकैं कह्यो,सोई सिद्धांत श्रेष्ठ है। इति कर्मयोग ।१। अथ ज्ञानयोग । पूर्व कह्यो कर्मयोग

---

१ नास्तिक्यपरमाश्चैव केचिद्धर्मविलोपकाः । भविष्यन्ति नरा मूढा मन्दाः पण्डितमानिनः ॥ २ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥ ३ त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः । कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ४ यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥ ५ एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च । कर्त्तव्यानीति मे पार्थ ! निश्चितं मतमुत्तमम् ॥

ताको अनुष्ठानकरकै भयो जो निर्मल मन ऐसें शास्त्रके अधिकारी मुमुक्षुने श्रवणको कर्यो अभ्यास तातें भयो जो परब्रह्म पुरुषोत्तमस्वरूपगुणादिविषयको अनुभवविशेषपरमेश्वरप्रसादके कारण तिसके साक्षात्कारद्वारा मोक्षको साधन है । २ । अथ भक्तियोग । वर्षाकालके गंगाप्रवाहकी तुल्य अविच्छिन्न प्राणपर्यंत दिनदिनमैं बढ्यो भगवत्स्मरणको प्रवाह सो भक्तियोग है । ३ । अथ प्रपत्तियोग । शास्त्रोक्त ज्ञानादिसाधनमैं अपनेको असमर्थ निश्चय करकैं समीचीन आचार्यके उपदेशकी रीतिकरकै करुणासागर भगवान् श्रीवासुदेवके विषयमें आत्मा आत्मीयको भार समर्पण करणो । ४ । अथ गुर्वाज्ञानुवृत्तियोग । प्रपत्तिके अंगनको कालादिप्रातिबंधबाहुल्यकरकै आपमैं उनके अनुष्ठानकी अयोग्यता जानके श्रीगुरुदेव मेरे कल्याणके उपाय अरु फलरूप हैं, ऐसे दृढ भावनाकरकै गुरुचरणारविंदमैं सर्वभावकरकैं आत्मभारसमर्पण करके अज्ञ बालकी तुल्य ताके वचनका पालनकरणा । ५ । तिनमैं कर्मयोग श्रीभगवच्चरण आद्याचार्यजीनै सदाचारप्रकाशमैं निर्णय करके कह्यो है । ज्ञानयोग पूर्व दोऊ परिच्छेदमैं कह्यो । भक्तियोग आगै कहैंगे । यहां प्रपत्ति अरु गुर्वाज्ञानुवृत्ति कहत हैं ।

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दा-
त्संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात् ।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥ ८ ॥

"जो ब्रह्माकों पूर्व करतभयो अरु जो ताकों वेद देत भयो, जो आत्मवुद्धिको प्रकाशक है ता देवकी मैं मुमुक्षु शरणको प्राप्त होतहूं। जो ब्रह्माको पूर्वकरत भयो, जो ताकी विद्या रक्षा करत भयो, जो आत्मवुद्धिको प्रकाशक है, ता देवकी मुमुक्षु शरण होवे" ये मंत्र श्रुति[1] यामैं प्रमाण है। "सर्वको शरण सबको सुहृद है, या जीवकी[2]

---

१ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तं ह देवमात्मवुद्धि-प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वा विद्यास्तस्मै गोपायति स्म कृष्णः, तं ह देवमात्मवुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणं व्रजेत् ॥ २ सर्वस्य शरणं सुहृत्। तावदार्त्तिस्तथा वाञ्छा तावन्मोहस्तथाऽसुखम्। यावन्न याति शरणं त्वामशेषाघनाशनम्। वृथैव भवतो जाता भूयसी जन्मसन्ततिः। तस्यामन्यतरं जन्म सञ्चित्य शरणं व्रज। अथ पातकभीतस्त्वं सर्वभावेन भारत। विमुक्तान्यसमारम्भान्नारायणपरो भव। शरणं त्वां प्रपन्ना ये ध्यानयोगविवर्जिताः। तेऽपि मृत्युमतिक्रम्य यान्ति विष्णोः परं पदम्। तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत!। तत्प्रसादादवाप्नोपि शाश्वतं पदमव्ययम्। सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः। कर्त्तारमकृतं देवं भूतानां प्रभवाव्ययम्। य एनं संश्रयन्तीह भक्त्या नारायणं हरिम्। ते तरन्तीह दुर्गाणि नात्र कार्या विचारणा॥

आर्त्ति अरु वांछा अरु मोह और दुःख तबताई है, जबताई सकल पापके नाशक भगवान्के शरण नहीं जात है, वृथाई तेरो बहुजन्मको प्रवाह गयो, तामें काहू एक जन्मकी चिंताकरकै शरण होऊ, हे भारत ! जो तू अतिपातकतें भीत है तो सब भावकरकै नारायणपरायण हो । तुम्हारी शरण जे ध्यानयोगादि साधनहीन आये तेऊ मृत्युकों अतिक्रमणकरके विष्णुपदकों प्राप्त होतहैं । हे अर्जुन ! ताही परमेश्वरकी सर्वभावकरके शरण हो, ताके प्रसादतें अविनाशीपदकों पावेगो, सब धर्मनको त्यागकरके मेरी शरण आव, मैं तोकों सब पापनतें छुडाऊंगो, शोक मत करैं । मेरीही शरण जे होतहैं तेई मायाकों तरत हैं । एकबेर जो मेरी शरण आवे अरु मैं तेरो हूं ऐसैं याचे ताकों सब भूतनतें मैं अभयदान देत हूं यह मेरो व्रत है । जे ताकी शरण होत हैं तिन पुरुषनकों मोह नहीं होतहैं, जो देव जन्मकरकै रहित, भूतनके जन्मादिको कर्त्ता, जे या नारायणके आश्रय होतहैं ते सर्व, दुर्गनकों तरतहैं, यामैं विचार करनो नहीं” इत्यादि श्रुतिस्मृति इतिहास पुराणादि वाक्यनको सारार्थ कहतहैं । श्रीकृष्णके चरणारविंद विना जीवनकी और गति श्रुति स्मृतिमैं नहीं देखत हैं । “परम पुरुषते परे[1]

---

१ पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ।

और कछु नहीं, सोई काष्ठा सोई परम गति है" यह श्रुति है। "हे अर्जुन ! मैं सबकी गति हूं, सबको भरण करता हूं, सर्वको प्रभु, सर्वको साक्षी, सर्वको निवास, सबको शरण, और सुहृद् मैं ही हौं । निष्काम कर्मकर्त्ता जे पुरुष तिनकी गति मैं हूं। हे ब्रह्मन्! लोकनकी गति तू है, तुमको कोई जाणसकै नहीं । विष्णुविना और कोई गति नहीं। या प्रकार निरंतर सर्व वेद गान करत हैं, यामैं संशय नहीं, अगतिनकी गति तुमही हो " इत्यादिस्मृति प्रमाण हैं। तामैं करणव्युत्पत्तिकरके अरु कर्मव्युत्पत्तिकरके गतिशब्द उपायोपेय साधनको वाचक है। जाकरके प्राप्ति होई सो गति है, सो भगवान् श्रीकृष्ण है। सो श्रीमुख गायो है "अनन्य होयकै जो मेरो चिंतवन करत है और उपासन करत है, मोमैं नित्ययुक्त हैं, तिनको मैं योगक्षेम वहत हौं, तिनकों संसारसमुद्रतें मैं उद्धार करत

---

१ गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् । अहमेव गतिस्तेषां निराशीःकर्मकारिणाम् । त्वं हि लोकगतिर्ब्रह्मन् न केचित्त्वां विजानते । न हि विष्णुमृते काचिद्गतिरन्या विधीयते । इत्येवं सततं वेदा गायन्ति नात्र संशयः । अगतीनां गतिर्भवान् ॥ २ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् । तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि न चिरात्पार्थ ! मय्यावेशितचेतसाम् । तेषामेवानुकम्पार्थमहम ज्ञानजं तमः । नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता । मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

हूं, जिनने मेरेमें चित्त लगायो है, तिनके अनुकंपाके अर्थ हे पार्थ! अज्ञानतें भयो जो तम सो मैं नाश करत हूं, चित्तमें बैठके प्रकाशरूप ज्ञानदीपकरके। हे अर्जुन! मेरेमें मनकों राख, मेरो भक्त होई, मेरो यजन कर, मोकों नमस्कार कर, मोमें जिनको चित्त है, मोमें जिनके प्राण हैं, और परस्पर मोकों बोधन करत हैं, मोहीकों नित्य कथन करत हैं, ताकरके संतुष्ट होत हैं। मैं तोकों सर्वपापनतें छुडाऊंगो, तू शोक मतकरै" यह अन्वयके वाक्य हैं। "सर्वारंभको जो त्यागी भक्तिमान् सो मेरो प्रिय है, सर्वधर्मनको त्यागकरकै मेरी शरण आव।" इत्यादिव्यतिरेक वाक्य हैं। इतने वचनमें श्रीभगवानूने आपहीकों सर्वपुरुषार्थको साधन अनन्यभक्तनको बतायो। तैसे ही फलरूप हूं भगवानूही है, यह कर्मव्युत्पत्तिकरके जानना। जाकों प्राप्त होय सो गति है, सो श्रीपुरुषोत्तम है। सो आपही निर्णयकरयोहै। "हे अर्जुन! देवके उपासक देवनकों प्राप्त होत हैं, पितरनके उपासक पितरनको प्राप्त होत हैं, भूतनके उपासक भूतनकों प्राप्त होत हैं

१ सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः। सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज॥ २ गम्यते इति गतिः॥ ३ यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे। मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते॥

मेरे यजन करणवारे मोकों प्राप्त होत हैं। मत्परायण तू मोमें चित्तलगायकैं मोहीकों प्राप्त होयगो, मोहीकों प्राप्त होयगो, मैं यह प्रतिज्ञा करत हूं। मद्भक्त यह तत्त्व जानकैं मेरे भावकों प्राप्त होत हैं। मेरे साधर्म्यकों प्राप्त होत भये, मोकों प्राप्त होयके पुनः दुःखको आलय अनित्य जन्मकों नहीं प्राप्त होत हैं, जातें परमसिद्ध मोकों प्राप्त होत भये। हे कौंतेय! मोको प्राप्त होयकें पुनर्जन्म नहीं होत है", इति अन्वयमुखकरके आपकों प्राप्य कह्यो। "हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यंत सब, लोक पुनरावर्त्तिहैं, जे मोकों नहीं जानैं ते तत्त्वतें च्युत होत हैं, मोकों नहीं प्राप्त होयकै अधमगतिकों जात हैं" यह व्यतिरेक वाक्य हैं। और सर्वसंबंधाश्रयहू श्रीकृष्ण हैं। "माता पिता और भ्राता सर्वको शरण सुहृद भगवान् है" यह श्रुति है। " तुम चराचर लोकके पिता हो और या जगत्के पूज्य हो और गुरु हो और गुरुतर हो, हे अर्जुन! या जगत्को पिता मैं हूं और माता धाता पितामह मैं हूं। माता तुम हो, पिता तुम हो, बंधु तुम हो और गुरू तुम हो और परमार्थको

१ मम साधर्म्यमागताः। मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ २ आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन!। न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते। मामप्राप्यैव कौन्तेय! ततो यान्त्यधमां गतिम्॥ ३ माता पिता तथा भ्राता सर्वस्य शरणं सुहृत्॥

उपाय विद्या तुम हो और व्यवहारको साधन द्रव्य तुमही हो मेरे सर्वसंबंधी तुमही हो" इत्यादि स्मृति हैं। "मेरो अंश जीव है, मेरो भक्त याकों जाणकै मेरे भावकों प्राप्त होत है, जो मेरो भक्त सो मेरो प्रिय है, ज्ञानीकों अत्यंत मैं प्रिय हूं, ज्ञानी अत्यंत मेरो प्रिय है, मैं प्रतिज्ञा करतहूं तू मेरो प्रिय है, मेरे साधर्म्यको प्राप्त होत भये", इत्यादि वाक्यकरकै सर्वसंबंधको आश्रयं आपको श्रीमुखकरकै श्रीभगवान्नें कह्यो, षष्ठीविभक्तिके प्रयोगको अभ्यासकरकै। याही करकै प्रपत्तिको स्वरूप कह्यो। "मैं सर्वापराधनको आलय हूं, और अकिंचन हों, अन्यगतिहीन हूं, मेरो पुरुषार्थ उपाय तुम हो।" यह प्रार्थना शरणागतिको लक्षण है। सो प्रपत्ति षड्विध है। अनुकूलको संकल्प अरु प्रतिकूलवर्जन, अरु विश्वास, अरु गोप्तृत्ववरण, और आत्मनिक्षेप, और कार्पण्य, यह षड्विध शर-

---

१ पितासि लोकस्य चराचरस्य, त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् । पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः । त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव । त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥ २ ममैवांशो जीवलोके । मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते । यो मद्भक्तः स मे प्रियः । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः । प्रतिजाने प्रियोऽसि मे । मम साधर्म्यमागताः ॥ ३ अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः । त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः । शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन्प्रयुज्यताम् ॥

णागति है । यह भगवच्छास्त्रमें कह्यो है । तामें सबको आत्मा श्रीपुरुषोत्तम है । यह निश्चयकरके ब्रह्मादि स्थावरपर्यंत प्राणिमात्रके अनुकूल आचरणको निश्चय यह प्रथम अंग है । चर और अचर जे प्राणि हैं तिन सबके आत्मा भगवान् हैं । यातें सबको अनुकूल मोकों कर्त्तव्य है, यह निश्चय इति लक्षण है । भगवान्का सर्वात्मत्व श्रुतिमें सुना है, सो "अन्तःप्रविष्ट हो सर्वजननको शास्ता है" यह श्रुति है । "हे गुडाकेश ! सब भूतनके अन्तःस्थित आत्मा मैं हूं" यह स्मृति है ॥ १ ॥ अनुकूलतें जो विपरीत हिंसा मात्सर्यादि ताको त्याग प्रतिकूलवर्जन शरणागतिको द्वितीय अंग है । सो विरोधीके स्वरूपवर्णनसमयमें विस्तार करेंगे । "हे राजा सगर ! परको अपवाद अरु चुगली और असत्य और उद्वेगको वचन जो न कहै ताकरकै केशव तुष्ट होत हैं । परपत्नी परद्रव्य पर हिंसामें जो बुद्धि नहीं करै ताकरकै

---

१ आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् । रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा । आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥ २ चराचराणि भूतानि सर्वाणि भगवद्वपुः । अतस्तदानुकूल्यं मे कर्त्तव्यमिति निश्चयः । ३ अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानाम् ॥ ४ अहमात्मा गुडाकेश ! सर्वभूताशयस्थितः ॥ ५ परापवादपैशुन्यमनृतं यो न भाषते । अनुद्वेगकरं चापि तोष्यते तेन केशवः । परपत्नीपरद्रव्यपरहिंसासु यो मतिम् । न करोति पुमान् भूप ! तोष्यते तेन केशवः । न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः । यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र ! तोष्यते तेन केशवः ॥

केशव तुष्ट होत हैं । जो प्राणिको ताडन और हनन नहीं करै ता मनुष्यतें केशव तुष्ट होत है" इति सगरसों और्वने कह्यो है । "मेरो कर्मकर्त्ता मत्परायण मेरो भक्त संगसों रहित सब भूतमें वैररहित सो मोकों प्राप्त होत है" यह श्रीमुखवचन है ॥ २ ॥ वात्सल्यादि-गुणको अर्णव है । सबको आधार सबको शरण्य श्रीभगवान्हैं हम ताके प्रपन्न हैं । यातें हमारी रक्षा करै-हीगो, यह निश्चय विश्वासको स्वरूप है। "अनुकूलनकी भगवान् रक्षा करैंगे यह दृढबुद्धि विश्वास है सब पापनको नाशक है" यह लक्षणको वाक्य है । "तिनको योगक्षेम मैं वहत हूं सब पापतें मैं छुडाऊंगो शोक मत करै" इति श्रीमुखवचन यामें प्रमाण है॥ ३ ॥ भगवान् सर्वज्ञ सर्वरक्षाको समर्थ करुणावात्सल्यादि गुणको सागर है, तो भी प्रार्थनाशून्य बहिर्मुखनकी प्रार्थना विना रक्षा नहीं करत है, अन्यथा सर्वमोक्षप्रसंगदोष होय अरु शास्त्रमर्याद भंग होय, यह निश्चयकरकै सदा प्रार्थनास्वभाव सो गोप्तृत्ववरण कहते हैं ।

---

१ मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ! ॥ २ रक्षिष्यत्यनुकूलान् इति या सुदृढा मतिः । स विश्वासो भवेच्छक्र! सर्वदुष्कृतनाशनः ॥ ३ योगक्षेमं वहाम्यहम्, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच इति ॥

"प्रार्थना विना रक्षा नहीं करै है, तातैं सदा प्रार्थना करणी यह बुद्धि गोप्तृत्ववरण है" यह लक्षणवाक्य है। प्रार्थनास्वरूप । "हे श्रीकृष्ण! हे रुक्मिणीकांत! हे गोपीजनमनोहर! संसारसागरमें बूडत हूं मेरो उद्धार करो, हे केशव! हे क्लेशहरण! हे नारायण! हे जनार्दन! हे गोविंद! हे परमानन्द! मेरो उद्धार करो" यह गोपालतापनीको मन्त्र है। "हे कमलनयन! हे वासुदेव! हे विष्णो! हे धरणीधर! हे अच्युत! हे शंखचक्रपाणे! आप मेरे शरण हो ऐसैं जे प्रार्थना करत हैं हे दूत! तिन पुरुषनकों दूरतैं त्याग करणा, जातैं ते भक्त निष्पाप हैं" यह दूतनसों यमराजनै विष्णुपुराणमैं कह्यो है। "तुम्हारी मैं शरण हूं अरु तुम्हारो भक्त हूं, इष्टगतिकी मोको वांछा है, हे पुण्डरीकाक्ष! जो श्रेय होय तैसैं विचार करो" यह राजधर्ममैं भीष्मजीको वचन है॥ ॥ ४ ॥ शरण्य श्रीमाधवको मुख्यप्रसादकारण प्रपत्ति

---

१ अप्रार्थितो न गोपायेदिति या प्रार्थनामतिः। गोपायिता भवत्येव गोप्तृत्ववरणं स्मृतम्॥ २ श्रीकृष्ण! रुक्मिणीकान्त! गोपीजनमनोहर!। संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो!। केशव! क्लेशहरण! नारायण! जनार्दन!। गोविन्द! परमानन्द! मां समुद्धर माधव!॥ ३ कमलनयन! वासुदेव! विष्णो! धरणिधराच्युत! शंखचक्रपाणे!। भव शरणमुदीरयन्ति ये वै त्यज भट! दूरतरेण तानपापान्॥ ४ त्वत्प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे। यच्छ्रेयः पुण्डरीकाक्ष! तद्ध्यायस्व सुरोत्तम!॥

है, या निश्चयकरकै आत्माकी अहंता ममता फलस्वामिताको भार श्रीभगवान्‌मैं अर्पणकरणो सो आत्मनिक्षेप है। "आत्मा और आत्मीयके भारको परमात्मामें त्याग सो निक्षेप है, यह आत्मनिक्षेप है" यह लक्षणवाक्य है। भारतमें उपरिचरके आख्यानमैं कह्यो है "आत्मा राज्य धन मित्र कलत्र वाहनादिक सदा जो भगवान्‌को अर्पण करत भयो" इति। वाल्मीकिमैं भरतजीको वचन है "राज्यहू और मैं श्रीरामके हैं, यह धर्म कहनेको योग्य हो" इति। भारतमैं "दो अक्षर मृत्यु है, और तीन अक्षर अमृत है, यह मेरो यह मृत्यु है, मेरो न यह अमृत है शाश्वत है" इति। "सर्वधर्मत्याग करके मेरी शरण आव मैं तोकों सब पापनतें छुडाऊंगो, शोक मतकरै" इति चरमोपदेश है॥ ५॥ उपायनकी सिद्धि बनै नहीं, और साधनके नाशक प्रतिबंधकोंकी स्वतः प्राप्ति देखके कर्तृत्वके गर्वके नाशकों कार्पण्य कहत हैं। "उपाय सिद्ध होत नहीं, और अपाय नाना

---

१ आत्माऽऽत्मीयभरन्यासो ह्यात्मनिक्षेप उच्यते ॥ २ आत्मा राज्यं धनं मित्रं कलत्रं वाहनानि च। एतद्भगवते सर्वमिति तत्प्रोज्झितं सदा॥ ३ राज्यं चाहं च रामस्य धर्म्मं वक्तुमिहार्हसि ॥ ४ द्व्याक्षरन्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्। ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥ ५ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ ६ उपाया नैव सिद्ध्यन्तीत्यपाया विविधास्तथा। इति या गर्वहानिस्तद्दैन्यं कार्पण्यमुच्यते॥

विध प्राप्त होत हैं, या करकै जो गर्वकी हानि सो कार्पण्य है" यह लक्षणको वचन है ॥ ६ ॥ इतनें षडंगमें आत्मनिक्षेप अंगी अरु मुख्य है, पांच ताके अंग हैं, यातें ताके सहकारी हैं, यह विशेष है । "मैं अपराधनको आलय हूं, और अकिंचन हूं मेरी और गति नहीं।" इस लक्षणवचनतें अकिंचन, अगति हो, सो याको अधिकारी है, और यह मुमुक्षुतादिको भी उपलक्षण है "अकिंचन, अनन्यगति, सात्त्विक, मुमुक्षु, भगवत्प्राप्तिकाम, विरागवान्, सार्ववर्णिक, ज्ञानी, अज्ञानी, साधारण शरणागतिको अधिकारी है । तामैं सब धर्मानुष्ठानमें असमर्थ कर्त्तृत्वादि अभिमानशून्य सो अकिंचन कहिये । भगवद्व्यतिरिक्त अन्यसाधनफलसंबंधलक्षणागतिशून्य सो अनन्यगति है । "आकिंचन अनन्यगति"[1] यह प्रमाण है । संसारतें छूटनेकी इच्छावाला मुमुक्षु है । "मुमुक्षु मैं शरण होत हूं"[2] यह श्रुति है । सात्त्विक धृति बुद्धिकरकै संयुक्त सो सात्त्विक है, सो लक्षण गीतामैं देखनो । अरु सर्ववर्णादि साधारण्य विष्णुपुराणमैं कह्यो है । "वर्णाश्रमाचारवान् पुरुष विष्णुको आराधनै करै ओर मार्ग ताके तोषको कारण नहीं"[3]

१ अकिञ्चनोऽगतिः ॥ २ मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये, मुमुक्षुर्वै शरणं व्रजेत् ॥ ३ वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् । विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोषकारणम् ॥

इति। ज्ञानी अरु अज्ञानी सर्वसाधारण याके अधिकारी हैं, यह शौनकने कह्यो है। "अज्ञ सर्वज्ञ भक्तनकी गति भगवान् है" इति। "जो ब्रह्माको पूर्व उत्पत्ति करत है" इत्यादि दो मंत्रकरकै ब्रह्मादिको जनक और उपदेष्टा सर्वकी बुद्धिको नियंता सर्वशरण्य जगत्कारण वेदांतवेद्य चेतनाचेतनविश्वको अंतरात्मा मुक्तको प्राप्य श्रीवासुदेव श्रीकृष्णही प्रपत्तिको विषय है। सो पूर्व गायत्रीके व्याख्यानमैं कह्यो। याप्रकार श्रीकृष्णके चरणारविंद विना साध्य साधन संबंध फलरूप और गति जीवकी नहीं काहू श्रुति स्मृति लोकमैं, यह सिद्धांत भयो। तातैं साधन फल संबंध रूप श्रीभगवान् कृष्णही हैं। तह वादीकी शंका-"हिरण्यगर्भ आगे होत भयो सब भूतनको आदिकर्त्ता ब्रह्मा आगे होत भयो, ताको विरंचि कहत हैं, जातें जगत्को विरेचन करत है तातैं ब्रह्मा विरंचि है, रुद्र एक होत भयो, अद्वितीय जो

१अज्ञसर्वज्ञभक्तानां गतिर्गम्यो भवेदिति॥२किञ्च "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" इत्यादिमन्त्राभ्यां वेदमात्रर्थसंग्राहकाभ्यां ब्रह्मादिजनकत्वतदुपदेष्टृत्वसर्वबुद्ध्यादिप्रवर्त्तकत्वसर्वशरण्यत्वादिनिरूपणेन जगज्जन्मादिकारणं सर्ववेदान्तवेद्यचेतनाचेतनाऽन्तरात्मा सर्वबुद्ध्यादिप्रवर्त्तकस्तत्प्रकाशको मुक्तप्राप्यो देवोऽस्याः प्रपत्तेः प्रतिपत्तव्यः॥॥ ३हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत, विरिञ्चो वा व जगद्विरेचयति विदधाति ब्रह्मा घा व विरिञ्चः। एको रुद्रो न द्वितीयास्य, तस्थुर्यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च, न सन्न चासच्छिव एव केवलः, ईशानः सर्वभूतानामीश्वरः सर्वभूतानामित्यादि॥

देवनकी उत्पत्ति जन्मको कारण है, सत् असत् कछु न होत भयो, केवल शिव होत भयो" इत्यादिक श्रुतिमें औरनको भी जगत्कारणत्वादि ऐश्वर्य सुन्यो है, तातें वे भी प्रपत्तिके विषय होयँगे। तब श्रीकृष्ण विना और गति नहीं, सो कैसे कह्यो? इति। सो तुच्छ है, यह कहत है, चरणारविंदको विशेषण। ब्रह्म शिवादि देव ऋषिगण जा चरणारविन्दको वंदन करत हैं "एक सच्चिदानंदविग्रह वृंदावनके कल्पद्रुमके तले विराजमान श्रीगोविंदकी मरुद्गणसहित मैं नित्य स्तुति करत हूं, याकों सब देवता मुमुक्षु अरु ब्रह्मवादी नमस्कार करत हैं"[1] इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। विष्णुपुराण "यह वृत्रासुरक[2] हंता इन्द्र ये अश्विनीकुमार यह वरुण यह रुद्र ये वसु ये आदित्य अग्नि वायु और समस्तदेवता और मैं ब्रह्मा सब आपकी प्रार्थना करत हैं। जो कार्य होय सो आज्ञा करो तुम्हारी आज्ञा पालनकरतेहुए निरस्तदोष हम इनकों अरु मोंको होयके वर्त्तें।" उद्योगपर्वमें सनत्सुजात कहत है "जो महज्ज्योति देदीप्यमान है, महत् जाको

---

१ यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं। वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनं सततं समरुद्गणोऽहं परमयास्तुत्या तोषयामि

२ एते वयं वृत्ररिपुस्तथाऽयं नासत्यदस्रौ वरुणस्तथैव। इमे च रुद्रा वसवःससूर्याः समीरणाऽग्निप्रमुखास्तथाऽन्ये। सुराः समस्ताः सुरनाथ! कार्यमेभिर्मयच तदीश! सर्वम्। आज्ञापयाज्ञां प्रतिपालयन्तस्तथैव तिष्ठाम सदाऽस्तदोषाः॥

यश है, जाको सब देवता उपासन करत हैं, सो कारण एकही है । जाकरकै सूर्य प्रकाशै है तिन भगवान् सनातनकों योगी देखत हैं" । विष्णुपुराणमैं अदितिको वचन "ब्रह्मादि सकल देवता ओर मनुष्य ओर पशु विष्णुकी मायाके भ्रमरमैं पडेहैं, मोहांधतमकरकै घिरे हैं, तुमको आराधनकरकै वांछित फलकी इच्छा करत हैं, आत्मशुद्धिके अर्थ" ताहीमैं बलभद्रको वचन "हे अचिंत्यस्वरूप ! इन्द्रसहित रुद्र अश्विनीकुमार वसु आदित्य मरुत् अग्नि तुम्हारो ध्यान करत हैं, ओर समस्त योगी" । ताही मैं नागपत्नी "हे देव हे देवेश ! तुम जानो हो सर्व प्रकार तुमतें उत्तम कोऊ नहीं, तुम्हरे जन्मको कारण कोऊ नहीं, तुम व्यापक हो, तुम्हारी स्तुतिकरनेको देवता समर्थ नहीं" । ताहीमैं कालीय "ब्रह्मादि समस्तदेवता नंदनादिवनके दिव्य फूलनकरकै अरु चन्दनादिलेपनकरकै तुम्हारो सेवन करत हैं, मैं कैसैं सेवन करों" ।

---

१ यदुक्तं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः । तद्दै देवा उपास्यन्ते यस्मादेको विराजते । योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २ ब्रह्माद्याः सकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा । विष्णुमायामहावर्त्तमोहान्धतमसावृताः । आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मविशुद्धये ॥ ३ सेन्द्ररुद्राश्विवसुभिरादित्यैर्मरुदग्निभिः । चिन्त्यसे त्वमचिन्त्यात्मन् ! समस्तैश्चैव योगिभिः ॥ ४ ज्ञातोऽसि देवदेवश ! सर्वेशस्त्वमनुत्तमः । न समर्थाः सुराः स्तोतुं यमनन्यभवं विभुम् ॥ ५ ब्रह्माद्यैरर्च्यते दिव्यैर्यश्च पुष्पानुलेपनैः । नन्दनादिसमुद्भूतैः सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥

ताहीसैं यमवचन "देवगणकरकै अर्चित जो धाता तानैं सोकों लोकके हित ओर अहितके विचारमैं राख्यो है, सब सिद्धनके संघ तुमको नमस्कार करत हैं, हे महात्मन् । तुमकों क्यों नमस्कार न करै जातें सब जगत् ओर ब्रह्माके तुम गुरुतर हो ओर आदिकर्त्ता हो, स्वस्तिउच्चारणकरकै महर्षि सिद्धनके समूह स्तुति करत हैं, पुष्कल स्तोत्रनकरकै ।" यह भगवद्गीतामैं अर्जुनको वाक्य है । राज्यधर्ममें वैशंपायन-"व्यास सहित सर्व महाऋषि ऋग्यजुः सामसहित वचनकरकै कृष्णको पूजन करत भये" नारायणीयाख्यानमैं श्रीकृष्णको वचन "ब्रह्मा ओर समस्त ऋषि ओर देवतनकरकै पूजित सब जगत्को ईश हरि शिवसों कहत भयो" इत्यादि स्मृति यामें प्रमाण हैं । श्लोकमें आदिशब्दकरकै श्रीसनत्कुमार नारद कश्यप अदिति इन्द्रादिको ग्रहण है । तामैं ब्रह्मा "तुम विश्वरूप हो, विश्वकी उत्पत्ति स्थिति संहारके कारण हो, विश्वके ईश्वर गोविंदकों नमस्कार" इत्यादि मंत्र ।

---

१ अहममरगणार्चितेन धात्रा यम इत्यादि । सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः । कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् ! गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे । स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २ ततस्ते व्याससहिताः सर्व एव महर्षयः । ऋग्यजुःसामसंयुक्तैर्वचोभिः कृष्णमर्चयन् ॥ ३ ऋषिभिर्ब्रह्मणा चैव विबुधैश्च सुपूजितः । उवाच देवमीशानमीशः स जगतो हरिः ॥ ४ ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे । विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

विष्णुपुराणमैं ब्रह्मा "जो सर्वरूप सर्वनियंता है, अनंत अरु जन्म नाश विकारशून्य है, लोकनको धाम पृथिवी-को आधार अप्रकाश अभेदी जामैं सब जगत् है। जातैं जगत्की उत्पत्ति है, ब्रह्मादि उत्कृष्टनतैं जो परै है, मुक्तिको कारण है, मुमुक्षु योगी जाको चिंतवन करत हैं ताकों मैं नमस्कार करत हों" इति। जाके प्रसादतैं मैं ब्रह्मा जगत्स्रष्टा होत भयो, जाके क्रोधतैं जगत्सं-हारकर्त्ता शिव होत भयो, जो पुरुषरूप होके विष्णु स्थितिको कारण हैं।" हरिवंशमैं नरसिंहस्तोत्र "सांख्य अरु योगमैं जो बुद्धितत्त्वविषयक है, हे भगवन्! सो तुम जानत हो, क्योंकि आप सर्वके आत्मा परि-पूर्ण सदा एकरस निश्चल हो" इति। "अथ शिव वृष-भध्वज जाकों नमस्कार करत हैं" इति मन्त्र। हरिवंशमैं बाणासुरबन्धनके प्रकरणमैं "हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाबाहो! तुमकों मैं पुरुषोत्तम जानत हूं, सबलोकनकी

---

१ नमाम सर्वं सर्वेशमनन्तमजमव्ययम्। लोकधामधराधारमप्रकाशमभेदिनम्। यत्र सर्वं यतः सर्वमुत्पन्नं सत्पुरः सरम्। सर्वभूतश्च यो देवः पराणामपि यः परः। योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ मुक्तिहेतुर्मुमुक्षुभिः॥ २ यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी। क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्तात्॥ ३ सांख्ये योगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता। भगवन्! वेदविद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः॥ ४ नमो वृषभध्वजवन्द्याय॥ ५ कृष्ण! कृष्ण! महाबाहो! जाने त्वां पुरुषोत्तमम्। लोकानां त्वं गतिर्देव! त्वत्प्रसूतमिदं जगत्। वन्देऽहं त्वां जगन्नाथं जगतामीश्वरं हरिम्॥

गति सबकी उत्पत्ति तुमतें है, आप जगत्के स्वामी ओर नियन्ता हो मैं आपका वंदन करत हूं।" कलाशयात्रामैं "जाकों सांख्याचार्य जगत्को कारण प्रकृति कहत हैं, त्रिविध जगत्को उपादानकारण तुम हीं हो। वासुदेव भगवान् जगके विधाता जाके प्रकाशकरकै सब जगत प्रकाशै है, हे अच्युत! तुमकों नमस्कार" इति। अथ सनत्कुमार ताहीमैं "भक्तिकरकै नम्र सनकादिक स्तुति करत भये। सबभूतनके आदि कारण जन्मविकाररहित सबको जनक, परावरके ईश, वरके दाता वरेण्य सत्यके पति जगत्के पति आपकों नमस्कार।" विष्णुपुराणमैं "हे ईश! हे केशव! हे प्रभो! हे शंखगदाअसिचक्रधारी! हे ईश्वर! जगत्की प्रसूति नाश स्थितिके कारण आपकी स्तुति करत हैं, तम सर्वोपरि वर्त्तमान हो" हरिवंशमैं नारदजी "दुःखके

---

१ यत्तत्कारणमाहुस्त्वां सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम्। त्रिधाभूतं जगद्योनि प्रधानं कारणात्मकम्। नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे। यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत!॥ २ अस्तुवन् भक्तिनम्रास्तं सनकाद्या मुनीश्वराः। जय देव! जगन्नाथ! भूतभावन! भावन!। नताः स्म भूतादिनमादिदेवमजं जनित्रं सकलस्य जन्तोः। परावरेशं वरदं वरेण्यं नमो नमः सत्यपते! जगत्पते!॥ ३ जयेश्वराणां परमेश! केशव! प्रभो! गदाशंखवरासिचक्रधृक्। प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वर त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम्॥

हरणहार विधातारूप भूतनके धारणहार देवनके देव जगन्नाथ चक्रधारी श्रीकृष्णके अर्थ नमस्कार, जो ओंकाररूप है जो वेदत्रयीरूप व्यापनशील है, ब्रह्मवादी जाकों देखत हैं, जाकों प्राप्त होयकैं योगी निवृत्त नहीं होत हैं" विष्णुपुराणमैं प्रह्लाद "हे पुंडरीकाक्ष! हे पुरुषोत्तम हे विष्णो! तुमको वार वार नमस्कार है, जामैं सब जगत् है, जातैं भयो है, जो सर्वरूप है, अरु सबको आश्रय है।" ताहीमैं ध्रुवजी "पृथिव्यादि समस्त महाभूत अरु गंधादिक ओर प्रधान पुरुष सबके परै अशेष जगत्को आत्मा ब्रह्मस्वरूप शुद्ध ऐसे तुम्हारे रूपके मैं शरण प्राप्त होत हूं।" ताहीमैं प्रचेता "सब वाणीको जामैं नित्य संबंध है, सब जगत्के आदिकारण समस्त जगत्के आदि सर्वके प्रभु, सर्वतैं परमश्रेष्ठ, तिनकों नमस्कार" ताहीमैं आदिति "हे पुंडरीकाक्ष! हे भक्तनके

---

१ नमः कृष्णाय हरये वेधसे भूतधारिणे। देवदेव जगन्नाथ नमस्ते चक्रधारिणे। नम ओंकाररूपाय त्रयीरूपाय विष्णवे। सोऽसि देव! जगन्नाथ! यो दृष्टो ब्रह्मवादिभिः। यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते योगिनो यतचेतसः॥ २ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम। नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः। यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वः सर्वसंश्रयः॥ ३ भूतादीनां समस्तानां गन्धादीनां च शाश्वतः। बुद्ध्यादीनां प्रधानस्य पुरुषस्य च यः परः। तं ब्रह्मभूतमात्मानमशेषजगतः परम्। प्रपद्ये शरणं शुद्धं त्वद्रूपं परमेश्वर!॥ ४ नताः स्म सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती। तमाद्यं तमशेषस्य जगतः परमं विभुम्॥

अभयकर्त्ता ! मन बुद्धि इन्द्रियनके नियंता गुणनके आत्मा तुमको नमस्कार" हरिवंशमें कश्यप "भगवान् वासुदेव प्रणवरूप यज्ञभागीको नमस्कार" विष्णुपुराणमें चन्द्र "प्रकृतिपुरुषतें परे जाको पारावार नहीं परमार्थरूप" इत्यादि। ताहीमें इन्द्र "सकलभुवनकी जातें उत्पत्ति स्मर्णार्थमुनि अतिसूक्ष्म सकलवेदवेत्ता जाको जानत हैं और कोई नहीं जानसकै है, जन्म विकारशून्य अद्भुत ईश तथा एकरस अपनी इच्छाकरके जगत्के उपकारार्थ प्रकट भये ताको कौन जय करणेको समर्थ है।" ताहीमें पृथिवी "तुम परब्रह्म तुमको आराधनकरके मुमुक्षु मुक्तिको पावत हैं, वासुदेवको नहीं आराधनकरके कौण मोक्षको पावैगो" अर्थात् कोई नहीं। राज्यधर्ममें युधिष्ठिर "हे पुंडरीकाक्ष! शत्रुनाशक तुमको नमस्कार, परमपुरुष तुमको कहत हैं, अरु यादवनके

---

१ [illegible]

पति कहत हैं। जगत्के उपादान और प्रलयकर्त्ता और सृष्टिकर्त्ता तुम हौ, हे विश्वयोने! हे धनुषचक्रखड्गधारी! सब जगत् तुम्हारे अधीन है तुमको नमस्कार" हरिवंशमैं दुर्वासा "वेदांतमैं विस्तारयो जो तेज सो तुम्हारोही तेज है, यह [1]विचारत हैं, जे ज्ञानकरकै तृप्त जिनको कल्मष नाश भयो ते योगी तुम्हारे वपुको ध्यान करत हैं अरु साक्षात् देखत हैं। हे प्रभो! जो ब्रह्मतेज वेदनमैं गायो है और निर्णय कीनो है हे ईश्वरनके ईश्वर! सो यह आपको रूप मैं जानत हौं" ताहीमैं परशुराम "हे [2]विष्णो! हे कृष्ण! हे हृषीकेश! हे वासुदेव! हे जनार्दन! हे जगत्के आदि! हे जगत्पूज्य! हे जगदीश! हे महेश्वर! हे कृष्ण! सबलोकस्वामी मेरो यथार्थ वचन सुनो" ताहीमैं देवी "[3]सर्वभूतनके स्रष्टा पुरुषोत्तम मैं तुमकों जानत हौं, पद्म जिनकी नाभिमैं है, हे इंद्रियनके नियामक! लोकनके आदि कारण! बाणासुरकों तुम मारवेकों योग्य नहीं, याकों अभयदान करो और जीवदान और पुत्रदान देहु।" मोक्ष-

---

१ वेदान्ते प्रथितं तेजस्तव चेदं विचार्यते। ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषाः। पश्यन्ति हृत्सरोजे हि तवैवेदं वपुः प्रभो!। वेदैर्यद्गीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्यते। तदेवेदं विजानेऽहं रूपमैश्वरमीश्वर!॥ २ विष्णो! कृष्ण! हृषीकेश वासुदेव जनार्दन। जगदादि! जगत्पूज्य! जगदीश! महेश्वर!। कृष्ण! सर्वस्य लोकस्य शृणु मे नष्टिकं वचः॥ ३ जाने त्वां सर्वभूतानां स्रष्टारं पुरुषोत्तमम्। पद्मनाभं हृषीकेशं लोकानामादिसम्भवम्। नार्हसे देव! हन्तुं वै बाणमप्रतिमं रणे। प्रयच्छ ह्यभयं बाणे जीव पुत्र! त्वमेव च॥

धर्ममैं शुक्राचार्य "भगवान् स्वप्रकाश प्रभवनशील आ-काशसहित पृथिवीतल जाकी भुजामध्य है"[1]। विष्णुपुरा-णमैं पराशर "अविकार शुद्ध नित्य परमात्मा जाको सदा एक रसरूपहै, व्यापनशील सबके जेता।"[2] राज्यधर्ममैं भीष्म "हे भगवन् हे विष्णो लोकनके उत्पत्तिनाशकर्त्ता[3] जगत्कर्त्ता इंद्रियनके नियासक सबके संहारकर्त्ता शत्रुन-के जेता विश्वकर्मा विश्वके आत्मा तुमकों नमस्कार पंचइन्द्रियके अगोचर सब भूतको अपवर्ग तुम हो", इति। तहां शंका "शितिकंठ नीलग्रीवकों नमस्कार"[4] इत्यादिक स्तोत्रकरकै शिवको स्तवन श्रीकृष्णने कर्यो ओर पुत्रके अर्थ आराधनभी कियो, यह कथा हरिवंशकी कैलास यात्रामैं प्रसिद्ध है। तातैं शिव परमोपास्य है, कैसैं कृष्ण विना और गति नहीं यह कहतहो, इति। सो तुच्छ है। जातैं या शंकाको ताही प्रकरणमैं शिवहीनैं निरास कर्यो है। सो सुनों-श्रीभगवान्के तप करतसंते सब इन्द्रादि देवता और महर्षिगण संशयकरकै ग्रस्त होत

---

१ नमस्तस्मै भगवते देवाय प्रभविष्णवे। यस्य पृथिवीतलं जातमाकाशं वाहुगोचरे॥ २ अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥ ३ नमस्ते भगवन् विष्णो लोकानां निधनोद्भव। त्वं हि कर्त्ता हृषीकेश! संहर्त्ता चापराजितः। विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन् विश्वसम्भव। अपवर्गोऽसि भूतानां पञ्चानां परतः स्थितः॥ ४ नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे। इत्यादि॥

भये अरु तहां जायकै तपकरत और शिवको आराधन करत श्रीभगवान्को देखकै परम विस्मयको प्राप्त होत भये,यह वैशंपायन राजा जनमेजयसों कहतभयो। "तहां आप इन्द्र ऐरावत हस्तिपैं चढकें तपमैं स्थित सर्वेश्वर भगवान्कों देखनको कैलासकों जात भयो, यमराज श्रेष्ठमहिषपर[1] चढके किन्नरगणसहित जातभयो। वरुण अपने गणन सहित हंसपर चढकै जातभयो, श्रीकेशवके दर्शनकों। और सब देवता आदित्य वसु रुद्रादिकगण विष्णुके दर्शनकों जात भये। सिद्ध किन्नर गंधर्व पर्वत मुनि ओर मुनिनमैं श्रेष्ठ आश्चर्यकरकै चंचल जिनके नेत्र हैं, ऐसे वे परस्पर कौतूहलसों बोलत हैं कि, देखो बडो आश्चर्य है न भयो न होयगो, सब योगिनके ध्येय जगद्गुरु भगवान् तप करत हैं" इति। ताके अनन्तर शिव प्रगट भये अरु भगवान्नें ताकी लीलाकरकै स्तुति करी, यह देखकै बडी असंभावना विपरीतभावना तिन सबकों

---

१ तत इन्द्रः स्वयं तत्र आरुह्य गजमुत्तमम्। द्रष्टुं सर्वेश्वरं विष्णुं तपस्यन्तं समाययौ। ततो यमस्तु भगवानारुह्य महिषं वरम्। किन्नरैश्च स्वयं साक्षादाययौ नगमुत्तमम्। प्रचेता हंसमारुह्य वारुणैश्च समन्वितः। श्वेतच्छत्रसमासमायुक्तः श्वेतव्यजनवीजितः। ययौ कैलासशिखरं द्रष्टुं केशवमञ्जसा। अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसवस्तथा। रुद्राश्चैव तथा राजन् द्रष्टुं केशवमाययुः। सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिन्नराः। पर्वतो नारदश्चैव तथाऽन्ये मुनिसत्तमाः। विस्मयस्थितलोलाक्षाः सर्वे देवगणास्तथा। आश्चर्यं खलु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति। योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत्तप्यति गुरुः स्वयमिति॥

भगवन्मायाकरके होत भई। तिनके भावकों विपर्यय देखके शिवजी जानत भये कि, इन देवता और ऋषिनकी भगवान्में विपरीत भावना चढी है, ये सब तत्त्वकों जानत नहीं, क्योंकि भगवान् अन्यकी पूजा करै सो अयथार्थ है, औरनकों भगवदुपासन यथार्थ है, यह दिखावतसंते तिनकी असंभावना निवृत्त करतेहुये श्रीशिवनें श्रीभगवान्की स्तुति करी, यह वैशंपायन कहत हैं-"ऐसैं कहके यथार्थतत्त्वनिर्णय करते मुनिनके सुनतें अंजलिकरकै विष्णुको उद्देश्यकरकै शंकर यथार्थ कहत भये। पार्वतीसहित भगवत्तत्त्व यथार्थ कहनेकी इच्छा करत भये। शंकरके अंजलि करनेतें मुनि देव गंधर्व सिद्ध किन्नर सब मिलकै अंजलि करत भये। भगवान्में मेरे अंजली करत सबने अंजलि करी है, सो मेरे स्तुति करनेतें इनको संशय स्वतः निवृत्त होयगो यह निश्चयकरकै महादेव स्तुति करत हैं पुरुषोत्तमता प्रकाश करते भये।[1] "सांख्याचार्य जाकों प्रकृति नाम जगत्कारण[2]

---

१ इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव। मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः। अञ्जलिं सम्पुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः। उमया सार्द्धमीशानो याथात्म्यं वक्तुमैहत। हरे कुर्वति तत्रैवमञ्जलिं कुलसत्तम!। मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह किन्नराः। अञ्जलिं चक्रिरे विष्णौ देवदेवेश्वरे हरौ। मयि अञ्जलिबद्धे वै एतैरप्यञ्जलिः कृतः। २ यत्तत्कारणमाहुस्तंत्सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम्। इत्यारभ्य "नमस्करोमि सर्वात्मन्नमस्तेऽस्तु सदा हरे" इत्यन्तेन स्तोत्रेण स्तौति॥

कहत हैं" यहांसे लेकर "हे सर्वात्मन्! मैं नमस्कार करत हूं" इत्यन्त स्तोत्रकरकै। इतने विचारकरकै तिनकी असंभावनादिकी निवृत्ति न भई यह देखकै शिवजीने ताकी निवृत्तिके अर्थ मुनिगणकों साक्षात् उपदेश कीनो, "देवदेवेश श्रीकृष्णका ऐसैं स्तुतिकरकै फेर मुनिनकों कहत भये। हे विप्र! तुम ऐसैं जानो जे जे दर्शनकों आये हो ते कि परवस्तु श्रीकृष्णही है यातें परे और वस्तु कुछ नहीं, यही तुम्हारो परम तप है, यही परमश्रेय है, यही तपको फल है, यही पुण्यको ग्रह है, यही सनातनधर्म है, यही मोक्षको दाता है, य शास्त्रप्रमाणकरकै कह्यो है। याहीकी विद्वान् ब्रह्मवादी प्रशंसा करत हैं, यह ब्रह्मवेत्तानको मार्ग ब्रह्मवादिननै कह्यो है, सो याकों तुम निश्चय करो यासैं संशय नहीं" यह एक अध्यायकरकै या प्रकार शिवजीके मुखतें श्रीभगवान्कों निरतिशय परत्व श्रेयस्वरूप तप आदि कर्मको फल और पुण्यका आश्रय मुक्तिके दाता मोक्षसंप्रदायके

१ इत्युक्त्वा देवदेवेशं मुनीनाह पुनः शिवः। एवं जानीत हे विप्राः! ये भक्ता द्रष्टुमागताः। एतदेव परं वस्तु नैतस्मात्परमस्ति वः। एतदेव विजानीध्वमेतद्वः परमं तपः।एतदेव सदा विप्रा ध्येयं सततमानसैः। एतद्वः परमं श्रेय एतद्वः परमं धनम्। एतद्वो जन्मनः कृत्यमेतद्वस्तपसः फलम्। एष वः पुण्यनिलय एष धर्मः सनातनः। एष वो मोक्षदाता च एष मार्ग उदाहृतः। एतदेव प्रशंसन्ति विद्वांसो ब्रह्मवादिनः। एष ब्रह्मविदां मार्गः कथितो वेदवादिभिः। एवमेव विजानीत नात्र कार्या विचारणा॥

प्रवर्त्तक सुनकै मुनि ओर देवता नष्टसंशयविपर्यय होत भये । यह वैशंपायन राजा जन्मेजयसे कहत है-"या प्रकार शिवजीके उपदेशको सुनके समस्त मुनि पुण्यात्मा भगवत्तत्त्वको यथार्थ ग्रहणकरकै संशयको त्याग करत भये, ओर अंजलिकरकै शिवजीसों बोलै कि, आप जो कहा सो यथार्थ है, अब हमारो संशय छिन्न भयो, यथार्थतत्त्व अब हमने ग्रहण कर्यो । याही प्रयोजन आपके स्थानमें आये थे; तुम्हारे संगतें बडो मोह नष्ट भयो, जैसें आपनें आज्ञा करी सोई हमें करनो है, अब भगवान्‌के विषयमें हम सतत यत्न करेंगे । या प्रकारतें मुनि प्रसन्न होयकें श्रीकेशव कृष्णचन्द्रकों नमस्कार करत भये" शिवजीने जान्यो कि, श्रीकृष्णमें असंभावना विपरीतभावना तो इनकी गई, परन्तु श्रीकृष्णमें ओर मोमें इनकी तुल्यभावनाकी निवृत्ति नहीं भई, ताके अर्थ द्वितीय स्तोत्रकरकै भगवान्‌को अतिशयसाम्यशून्य माहात्म्य वर्णनकरकै तिनको साम्यबुद्धिकी भी निवृत्ति करतभये श्रीशंकरजी । यह प्रसंग वैशं-

---

१ एवमुक्तास्ततः सर्वे मुनयः पुण्यशालिनः । यथावदुपगृह्णाना निरसन् संशयं नृप । एवमेवेति तं विप्राः प्राहुः प्राञ्जलयो हरम् । छिन्नो नः संशयः सर्वो गृहीतार्थः स तादृशः ॥ एतदर्थं समायाता वयमद्य तवालयम् । सङ्गमाद्युवयोः सर्वो नष्टो मोहो महानिह । यथाह भगवान् रुद्रो यतामः सततं हरौ । इति ते मुनयः प्रीताः प्रणेमुः केशवं हरिम् ॥

पायन कहत हैं-"ताके अनन्तर श्रीरुद्र सर्वदेवता ओर मुनिनको विस्मय करावते" श्रीभगवान् विष्णु हरिकों श्रुतियुक्त यथार्थवाक्यनकरके सब मुनिनके सुनतें सन्ते स्तोत्र आरभ करत भये। भगवान् सर्वज्ञ वासुदेवको नमस्कार, जाकी भासाकरकै यह समस्त जगत् प्रकाशे है" यह श्लोकसे आरंभकर "वार वार तुमकों नमस्कार" यह श्लोकपर्यंत स्तोत्र करकै अरु आगै स्तोत्रके फल कथनकरकै फेर उपदेश करतभये "जो यह पापविमोचन स्तोत्रको धारण करेंगे तिनपर भगवान् प्रसन्न होवेंगे- श्रोता ओर पाठकनकों मोक्ष देवेंगे यामें विचार करणो नहीं। तातें तुम जो कल्याण चाहो तो भक्तवत्सल श्रीकेशवको ध्यानकरो, जातें तुम तीव्र व्रतधारी हो" या प्रकार शिवजीके वारंवार उपदेशतें ते सब मुनि नष्टसंशय होयकैं कृतार्थ होतभये। यह कथा वैशंपायन कहत हैं, "ताके अनन्तर ते सब मुनिआदि

---

१ ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान्विस्मापयन्निव । स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम् । अर्थ्याभिः श्रुतियुक्ताभिर्मुनीनां शृण्वतां तदा । नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि । यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत ! इत्यारम्य "भूयो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकान् जनार्दन" इत्यन्तेन स्तोत्रफलकथनेनाप्युपदिष्टवान् । "ये चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम् । तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः । श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा। अवश्यं मनसा ध्यातं केशवं भक्तवत्सलम् । श्रेयः प्राप्तुं यदिच्छन्तो भवन्तः संशितव्रत इति ॥

परम आनन्दकों प्राप्त होत भये। श्रीकृष्णकों नारायण हरि परतत्त्व निश्चयकरकै परमविस्मयकों प्राप्त भये। आपकों कृतार्थ मानकै" इति। यातें कैलाशयात्राकी कथा भगवान्के निरतिशय परतत्त्वनिरूपणविषयक है यह सिद्ध भयो। ओर दानधर्महूमैं श्रीकृष्णको साम्यातिशयशून्य ऐश्वर्य शिवजीनै ऋषिनसों कह्यो है। यथा "ब्रह्मादिकको पिता सदा एकरस सर्वत्र पूर्ण भक्तनको दुःखहर्त्ता सुवर्णवर्ण विगतमेघ जैसो सूर्य श्रीवत्सांक इन्द्रियनको नियामक सब देवनको पूज्य ब्रह्मा जाके उदरतें भयो है, मैं जाके मस्तकतें भयो हूं अरु सर्वज्ञ सबको आश्रय सब ओर जाको मुख परमात्मा सर्वव्यापी महेश्वर श्रीकृष्ण है, तातें अधिक कोई न भयो है न होइगो" इत्यादि। ओर नारायणीयाख्यानमैं श्रीमुख निर्णय कर्यो है, अर्जुन श्रीकृष्णका पूछत भयो-"आप सर्वेश्वर सबके सेव्य जगत्के कारण हैं, सो आप रुद्रको आराधन क्यों करत भये" इति प्रश्न।

---

१ ततस्ते मुनयः सर्वे परां निर्वृत्तिमाययुः। तमेव परमं तत्त्वं मत्त्वा नारायणं हरिम्। विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम्॥ २ पितामहादेः पितरः शाश्वतः पुरुषो हरिः। कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रः सूर्य्य इवोदितः। श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः। ब्रह्मा तस्योदरभवस्तथाहं च शिरोभवः॥ सर्वज्ञः सर्वसंश्लिष्टः सर्वगः सर्वतो मुखः। परमात्मा हृषीकेशः सर्वव्यापी महेश्वरः। न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किञ्चन॥

तहां श्रीभगवान् उत्तर कहत हैं "हे पांडव ! मैं सब भूतनको आत्मा हूं तातें रुद्रहूको आत्मा मैं हूं, रुद्र-पूजा जगत्में प्रवृत्तकरनेको लोकसंग्रहके अर्थ रुद्रपूजा मैं करत भयो, मेरो कर्‍यो सबको प्रमाण है, यातें पुत्रके उद्देशकरके मैनें रुद्रपूजा की। सकामीकों ताकी पूजामें अधिकार है, मुमुक्षुकों नहीं। यह विख्यात करवेकों मैं सकामीनकों अनुकरण करत भयो, ओर रुद्रकी पूजामें मैने अपनी पूजा करी, रुद्रकी नहीं, क्योंकि रुद्र मेरो आत्मीय है। "विष्णु आप विना अन्यकों नमस्कार

---

१ अहमात्मा हि लोकानां विश्वानां पाण्डुनन्दन ! । तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रं सम्पूजयाम्यहम् । यद्यहं नार्चयेयैवमीशानं वरदं शिवम् । आत्मानं नार्चयेत् कश्चिदिति मे भावितात्मनः । मया प्रमाणं हि कृतं लोकस्तदनुवर्त्तते । इति . सञ्चिन्त्य मनसा पुराणं रुद्रमीश्वरम् । पुत्रार्थमाराधितवानहमात्मानमात्मना । न हि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद्विबुधाय च । ऋते आत्मानमेवेति ततो रुद्रं भजाम्यहम् । सब्रह्मकाः सरुद्राश्च सेन्द्रा देवा महर्षयः । अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम् । भविष्यतां वर्त्ततां च भूतानां चैव भारत । सर्वेषामग्रणीर्विष्णुः सेव्यः पूज्यश्च नित्यशः । इति । एतदुक्तं भवति । रुद्रस्य पूजायामात्मानमेवाहमपूजयं, न तु रुद्रम् । मम विष्णोर्विश्वात्मत्वात् । शिवस्यापि विश्वान्तःपातित्वेन मदात्मकत्वाविशेषात्, विश्वस्मिंश्च मदात्मीये व्याप्ये च मम व्यापकत्वात् । लोकसंग्रहार्थं तत्र तत्र स्वात्मानमेव पूजयामि । तदेव व्यनक्ति ह्यन्वयव्यतिरेकाभ्याम् । श्रीविष्णुरात्मानम् ऋतेऽन्यं न प्रणमतीति व्यतिरेकः । सब्रह्मकाः सरुद्राः सर्षयश्च सर्वे देवाः श्रीविष्णुं प्रणमन्ति, अर्चयन्ति, तस्य सर्वश्रेष्ठत्वेनातिशयसाम्यानर्हत्वेन च सर्वपूज्यत्वादित्यन्वयः । तस्माद्भगवताऽन्यपूजनं लीलामात्रं लोकसंग्रहार्थत्वात् । नारदादिपूजावदिति सिद्धान्तः ॥

न करै, ब्रह्मा और रुद्र सहित इन्द्रसहित सब देवता सर्वऋषि श्रीविष्णुकों प्रणाम ओर आराधन करत हैं" यह अन्वय व्यतिरेककरकैं अतिशय साम्यशून्य ऐश्वर्य श्रीविष्णुको निरूपण कर्यो है। तातें श्रीभगवान् जो ओर देवकी पूजा करैं तो तिनके अन्तर्यामी जो आप ताहीकी पूजा करत हैं, अन्यदेवनकी नहीं। किंतु लीलामात्रते अन्यपूजा लोकसंग्रहार्थ करत हैं, जैसें श्रीनारदादिककी पूजा, यह सिद्धांत है।" तहां वादीकी शंका--जो लोकसंग्रहार्थ लीलामात्रकरकै परमेश्वर अन्यकी पूजादिक करत हैं तैसेही तिनके भक्तनकों अन्यदेवकी पूजा लोकसंग्रहार्थ अवश्य कर्त्तव्यताकरके प्राप्त भई, इति। सो नहीं। क्योंकि श्रुतिस्मृतिकरकै निषिद्ध है। सो श्रुतिस्मृतिको अर्थ कहत हैं--जो पुरुष श्रीभगवान् वासुदेव सर्वेश्वर शास्त्रयोनि जगज्जन्मादिकारण मोक्षदाता श्रीपुरुषोत्तमत अन्यदेवता ब्रह्म रुद्र इंद्रादिको उपासन

---

१ अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मि, न स वेद यथा पशुः। यो वै स्वां देवतामतियजति परस्वायै देवतायै च्यवते न परां प्राप्नोति पापीयान्भवति, तमेवैकं विजानथ, आत्मानमन्यावाचो विमुञ्चथ। अस्यार्थः। यः पुमान् श्रीभगवतः सर्वेश्वरात् शास्त्रयोनेर्जगज्जन्मादिकारणान्मोक्षदातुः पुरुषोत्तमादन्यां ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिरूपां देवतामुपासते। उपासनप्रकारमाह॥ असौ ब्रह्मरुद्रादि देवोऽन्य ईश्वरः, अहमन्यो जीव इति भावेन, स न वेद, तत्त्वतो न जानाति। तेषां भगवदाराधनजन्यप्रसादलभ्यपरिच्छिन्नैश्वर्यवत्त्वेऽपि सर्वेश्वरत्वशास्त्रयोनित्वजगत्कारणत्वसर्वनियन्तृत्वमोक्षप्रदातृत्वाद्ययोगेन निरतिशयैश्वर्याश्रयत्वाभावेन च जीवत्वाविशेषात्। तथाह श्रीपरा–

करत हैं। उपासनको प्रकार कहत हैं-यह ब्रह्म रुद्र इंद्रादिदेव मोतें अन्य हैं, ईश्वर हैं, मैं अन्य जीवहूं, या भावकरके जो उपासन करत हैं सो तिन देवके तत्त्वको ज्ञान ताको नहीं है। क्योंकि भगवदाराधनतें भये जो भगवत्प्रसाद ताकरके परिच्छिन्न ऐश्वर्य तिन देवनकों मिल्यो है। यातें वे सब परिच्छिन्न ऐश्वर्यवान् जीव हैं, सर्वेश्वर शास्त्रयोनि जगत्कारण सर्वनियंता मोक्षदाता तिनकों कहत बनै नहीं। सो पराशरजीनै कह्यो है-"ते देवादि समस्त अशुद्ध हैं, क्योंकि कर्मके अधीन हैं" इति। अज्ञानमें दृष्टांत कहत हैं, जैसें पशु ज्ञानहीन है, "ज्ञानकरके हीन सो पशुसमान है" यह भारतमें कह्यो है। और श्रुति कहत हैं "आपको अर्चनीय जो विश्वात्मभूत श्रीपुरुषोत्तमाख्य देवता ताको अतिक्रमणकरके जो अन्य देवता ब्रह्म रुद्र इन्द्रादिरूप-

---

—शरः। अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्मयोनयः, इति। तत्र दृष्टान्तः। यथा पशुरिति। ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समाना इति वचनात्। स्वां देवतां स्वेनार्चनीयां विश्वात्मभूतां श्रीपुरुषोत्तमाख्याम्। अतियजति परस्यायै देवतायै ब्रह्मरुद्रादिरूपायै भगवन्तमतिक्रम्य निरीश्वरं यजति स पापीयान्। पतिदेवताया युवत्याः स्वपतीतरदर्शनादिवत् पातिव्रत्यभङ्गलक्षणदुःसहमहदपराधत्वात्। तस्य फलमाह। च्यवते। न परां प्राप्नोतीति। स्वधर्मादनन्यवैष्णवत्वरूपाद्धीयते। श्रीपुरुषोत्तममप्राप्य संसरतीत्यर्थः। मामप्राप्यैव कौन्तेय! ततो यान्त्यधमां गतिमिति भगवदुक्तेः। अन्यदप्यन्वयव्यतिरेकवाक्यमाह। तमेवैकमिति। तच्छब्दो वेदान्तप्रसिद्धब्रह्मात्मसदादिशब्दाभिधेयं परब्रह्मभूतं भगवन्तमभिदधाति। एवैकशब्दौ साम्यातिशयव्यवच्छेदकपरौ।

को यजन करत है, सो भगवान् परमेश्वरको अतिक्रमण करके निरीश्वरको यजन करै है; यातें अत्यन्त पापी है, पतिव्रता युवतिकों जैसें परपतिके दर्शनतें पातिव्रत्य-धर्मको भंग होत है, और दुःसह महापराध प्राप्त होत है, तैसें ही ताको फल कहत हैं;, सो अपनो अनन्य जो भागवतधर्म तातें च्युत होत है अर्थात् श्रीपुरुषोत्त-मकों नहीं प्राप्त होयके संसारकों पावत है। "मोकों नहीं प्राप्त होयकै हे कौंतय! अधमगतिकों जात हैं" यह श्रीमुख वाक्य है। अन्य श्रुति कहत हैं-अन्वयव्यतिरेक सहित। वेदांतप्रसिद्ध ब्रह्म आत्मा सदादिशब्दकरकै जो प्रतिपाद्य परब्रह्म भगवान् साम्य और अतिशयकरकै रहित एक है ताको ध्यान करो, अन्य देवताविषया वाणी छोडो। जब अन्यविषया वाणी निषिद्ध और हेय है, तो अन्यविषयक ध्यानार्चनादि निषिद्ध है यामें कहा कहनो! यह कैमुत्यन्यायसूचनार्थ वाक्शब्दको यहां ग्रहण है। "अन्य देव उपासक अल्पबुद्धिनकू अन्तवान् अनित्य फल होत है, वे सदा संसारी रहतहैं" यह श्रीमुख वचन

—अन्या अन्यदेवताविषया वाच इति। यद्यन्यविषया वागपि निषिद्धत्वेन हेया; तर्हि अन्यविषयध्यानार्चनादिकं हेयमिति किं वक्तव्यमिति कैमुत्यन्यायपरोऽयं वाक्शब्दः। तद्धत्यल्पमेधसामित्यल्पमेधःशब्दोऽपि पशुशब्दवज्ज्ञानहीनत्वविषा-यकः। स्पष्टमन्यत्। किञ्च, आलिङ्गनं वरं मन्ये व्यालव्याघ्रजलौकसाम्। न सङ्गः शल्ययुक्तानां नानादेवोपसेविनामित्यादिवचनादन्यदेवोपासकानां सङ्गोऽपि महानि-षिद्धः, किं पुनस्तदुपासनमित्यलं विस्तरेण॥

है। "सर्पको तथा सिंहको आलिंगन ओर जलजंतु ग्राहादिको आलिंगन मैं श्रेष्ठ मानत हूं परंतु शल्ययुक्त जे नानादेवके उपासक हैं, तिनको संग भलो नहीं, क्योंकि व्यालादिके संगतें एक देहको पातमात्र दुःख है, ओर अन्यदेव उपासकके संगतें चौरासी लक्ष योनिप्राप्त दुःखको भोग है, तातें अत्यन्त भेद है, क्योंकि उत्तम-अधम भाव बनत हैं। जो अन्य देव उपासकको संग ऐसो निषिद्ध है, तो तिनके उपासनकी का कथा" इति स्मृतिवाक्य है। तातें सिद्ध भयो कि, ब्रह्म शिववंदित-पदारविंद श्रीपुरुषोत्तमही उपास्य है, इति। ब्रह्मादि सेव्यतामैं हेतु कहत हैं। इतनो (इयत्ता) करकै चिंतन करवेकों अयोग्य तर्कके अगोचर है शक्ति जाकी। शक्तिशब्द ज्ञान ऐश्वर्यादिके उपलक्षणार्थ है। स्वरूपके समान नित्य स्वाभाविक विचित्र अपरिच्छिन्न असंख्यात स्वाभाविक अघटघटनाके योग्य है शक्ति जाकी, ओर ज्ञान ऐश्वर्यादिक जाको, यह तात्पर्यार्थ है। तामें श्रुति प्रमाण कहत हैं "याकी परा शक्ति नानाप्रकार सुनिये है, स्वाभाविकी ज्ञान बलादि सहित क्रिया-इत्यादि। हे मैत्रेय! परमात्माकी अचिंत्य ज्ञानगोचर सब

---

१ पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः। शतशो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः। भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता ॥

भावनकी कारणभूत असंख्यात शक्ति हैं, सो जगत्के सर्गादिको कारणभावरूप है, हे तपस्विनमें श्रेष्ठ ! जैसें अग्निकी उष्णता" यह स्वाभाविक धर्ममें दृष्टांत है। इत्यादि स्मृति यामें प्रमाण हैं। याकरकै भगवच्छब्दको व्याख्यानभी यामें कह्यो । "समग्र ऐश्वर्य समग्र धर्म समग्र यश समग्र श्री समग्र ज्ञान समग्र विराग इनकी भगसंज्ञा है, ये भगसंज्ञक षट जामें नित्य रहें सो भगवत्-पदको वाच्य है। सोई ब्रह्म सोई परधाम सोई मुमुक्षुन-के ध्येय हैं, श्रुतिवाक्यकरकै निश्चित सूक्ष्म सो विष्णुका परमपद है, सोई परमात्माको स्वरूप भगवच्छब्दको वाच्य है, अरु ताको वाचक भगवच्छब्द है । सो भगवान् सबको आदिकारण है, आत्मा है, हे मैत्रेय ! भगवच्छब्द महाविभूति परब्रह्म शुद्धमें वर्त्तै है, शुद्ध केसो है कि, जगत्कारणहूको कारण है, या प्रकार हे सत्तम ! यह महाभगवच्छब्द परब्रह्म वासुदेवमें वर्त्तै है, औरमें नहीं, ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेज ये षट् गुण भगवच्छब्दके वाच्य हैं, हेयगुणको छोडकै ।"

---

१ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना । तद्ब्रह्म परमं धाम तद्ध्येयं मोक्षकांक्षिणा । श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम् । तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः । वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः । शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि वर्त्तते । मैत्रेय ! भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ॥

इत्यादि विष्णुपुराणमैं कह्यो है । इतने कथनकरकै अनिर्वचनीय शक्तिवाद निरस्तभयो । क्योंकि श्रुतिस्मृतिमैं सर्वत्राचिंत्य स्वाभाविकशक्तिको प्रतिपादन है । तहां शंका--जाके चरणारविंदको ब्रह्म शिवादि वंदन करत हैं, और जो निरतिशय ऐश्वर्यको आश्रय है, ताके उपासनमैं दीननको प्रवेश कैसैं बनैं ? (अर्थात नहीं बनै) । तातैं सर्वशरण्यत्व तो सिद्ध भयो नहीं? इति । सो नहीं। सो श्रीकृष्ण वात्सल्य कारुण्यादि गुणनको सागर है, यातैं भक्तपारतंत्र्य ताको स्वभावहै, तातैं दोष नहीं, यह कहत हैं । भक्तनकी इच्छाकरकै प्रगट करयो है विग्रह जानैं, इति । जैसैं अर्जुन आदिकी इच्छाकरकै विश्वरूपादिकी व्यक्ति । सोई कहत हैं । तहां अर्जुनकी प्रार्थना "हे परमेश्वर ! जैसैं अपनो स्वरूप ऐश्वर्य आपने वर्णन कीनो, तैसैंही है । परन्तु मैं आपको विश्वरूप देख्यो चाहत हूं" इति । यह प्रार्थना सुनकै श्रीभगवान् बोले कि, "हे अर्जुन !

---

१ एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ! । द्रष्टुमिच्छामि तेरूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ! ॥ इत्यर्जुनेन प्रार्थितः श्रीभगवान् कृष्णः, पश्यमे पार्थ ! रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः । नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि चेति, प्रतिज्ञायार्जुनस्यैतेन चक्षुषा तद्रूपदर्शनानर्हतां मत्वा, दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरमिति .चक्षुः प्रदाय विश्वरूपं दर्शयामास, इत्याह संजयः । एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः । दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् । अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् । अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् । सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतो मुखम् । दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।—

मेरे शतसहस्रप्रकारके रूप तू देख । नानाप्रकार दिव्य नानावर्ण नानाआकार" ऐसें प्रतिज्ञा करकै अर्जुनकों इन चक्षुकरकै ता रूपके दर्शनकी योग्यता नहीं यह निश्चयकरकै "तोको मैं दिव्य चक्षु देत हूं, ताकरकै मेरो योग ऐश्वर्य तू देख" ऐसें कहकै ताकों दिव्यचक्षु देकैं विश्वरूप दिखायो । यह कथा सञ्जय कहत भयो । "हे राजन् धृतराष्ट्र ! महायोगेश्वर हरि श्रीकृष्णनें ऐसै कहकै अपनो विश्वरूप दिखायो । जिस रूपमें अनेक मुख, अनेक नयन, अनेक अद्भुत दर्शन, अनेक दिव्य आभरण, दिव्य अनेक आयुध उठाये, दिव्यपुष्प वस्त्रधारी, दिव्यगन्धलेपन सर्वाश्चर्यमय, दिव्य अपरिच्छिन्न सब ओर मुख, स्वर्गमें एकवार सहस्र-सूर्यकी उत्थित प्रभा जो होय तो ताके रूपकी उपमा होय यह अभूत उपमा है । ताके एक देशमें स्थित समस्त जगत् अनेक प्रकारकरकै भिन्न अर्जुनने देवदेव

—यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः । तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा । अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा । किञ्च, पश्यन् स्वयमप्याहार्जुनः, पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् । अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् । नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपमित्यादिना । किञ्च, विश्वरूपं पश्यन्, दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ! । इति भीतः, आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोस्तु ते देववर प्रसीद । विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिमिति स्वरूपप्रवृत्तिजिज्ञासु—

श्रीकृष्णके शरीरमैं देखा। अरु देखकै श्रीभगवान्सौं अर्जुन बोल्यौ। हे देव ! तुम्हारे देहमैं सर्वदेवता देखत हूं, भूतनके संघात देखत हूं, कमलासनमैं बैठो ब्रह्मा ओर शिव ओर समस्त ऋषि ओर दिव्य उरग मैं देखत हों, तामैं अनेक बाहु उदर मुख नेत्र अनंत विश्व मैं देखत हूं, अरु ताको आदि अन्त मध्य मैं नहीं देखत हूं, हे विश्वेश्वर ! विश्वरूप" इत्यादि श्लोकनकरकै। ओर "विश्वरूप देखकै धैर्य ओर शम मेरो जात रह्यो, ऐसैं भयभीत होयकै पूछत भयो कि तुम कोण ओर तुम उग्ररूप कोण हो तुमकों नमस्कार, हे देव ! प्रसन्न हो, मैं तुमकों जान्यों चाहत हूं, तम्हारी प्रवृत्ति मैं नहीं जानत हूं" या प्रकार भगवान्के स्वरूपप्रवृत्तिकी जिज्ञासा करत भयो। ताकों जिज्ञासु जानकै समाधानकरकै अपनी स्वरूपप्रवृत्ति श्रीभगवान् कहत भये। "मैं कालरूप हूं लोकक्षयकरणेकों बढ्यो हूं, तो

—च ज्ञात्वाऽऽथास्य स्वरूपप्रवृत्तिं ज्ञापयामास, कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः, इत्यादिना। पुनश्च भगवतः कालस्वरूपं सर्वसेनासंहारार्थप्रवृत्तिं ज्ञात्वा पूर्वकृतापराधं सप्रणयमपि, स्थाने हृषीकेश तव, इत्यादिभ्यः नमो नमोस्तु ते सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते। सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति। अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वाऽपि। यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु। एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम्। पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्। न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्य—

विना ओर कोई जीवेगो नहीं, ये तेरे आगे योधा खडे हैं" इति । ताके अनन्तर भगवान् कालरूप है, सर्वसेनाके संहारार्थ तिनकी प्रवृत्ति है, यह निश्चय जानकै नमस्कार कर अपराध क्षमा करावत भयो "हे हृषीकेश ! यह सब कथा योग्य है" इत्यादि श्लोककरकै "यह मेरो सखा है, यह मानकै मैं जो कहत भयो हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! इत्यादि, सो आपको महिमा मैं न जान्यो, मैं प्रमादकरकै अथवा स्नेहकरकै आपको परिहास करत भयो, विहार ओर शय्या आसन भोजन समय एकांतमैं अथवा सबके देखत सो अपराध मैं क्षमा करावत हूं । तुम अप्रमेय हो, सब चराचर लोकके पिता हो, पूज्य हो, अत्यन्त बडे गुरु हो, आपके समान कोऊ नहीं, तब अधिक तो कहांतें होय । तीनलोकमैं तिहारे प्रभावकी उपमा कोई नहीं । तातें प्रणामकरकै आपके आगै शरीरको डारकै सबके नियंता सबकी स्तुतिके योग्य तुमकों मैं प्रसन्न करावत हूं । पिता जैसैं पुत्रके, मित्र जैसैं मित्रके, प्रियपति जैसैं

—प्रतिमप्रभावः । तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् । पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्, इति स्तुतिनतिसम्बन्धं व्यञ्जयन् नानापराधक्षमापनपूर्वकं, तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास, इति चतुर्भुजरूपदिदृक्षया प्रार्थितः श्रीभगवान्, मया प्रसन्नेन तवाऽर्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् । तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्व—

प्रिया भार्याके अपराधकों सहै, तैसैं तुम मेरे अपराध सहनेंकों योग्य हो" या प्रकार स्तुति नमस्कार ओर अपराधको क्षमा कराते ओर सर्वसंबंधकों दिखाते चतुर्भुजरूपदर्शनकी प्रार्थना करत है "हे जगदाधार ! तुम मोपैं प्रसन्न हो, और वही चतुर्भुजरूप मोकों दिखाओ" इति । तहां प्रार्थना सुनकै श्रीभगवान् कहत भये "हे अर्जुन ! मैं प्रसन्न होयकै यह विश्व-रूप अपनो स्वभावसामर्थ्यकरकै तोकों दिखायो, सो तेजोमय अनन्त सबकी आदि ऐसो रूप तो समान भक्त विना काहूनें पूर्व देख्यो नहीं, मेरो प्रसादही याके दर्शनमैं कारण हैं । वेदका अध्यन ओर यज्ञ ओर दान ओर क्रिया ओर उग्र तपकरकै भी यह रूप देखनेकों कोई योग्य नहीं । हे कुरुवंशवीर ! जैसैं तू मोकों देखत भयो" । याकरकै सब साधनकों अनुग्रह विना व्यभिचारी कह्यो । "तोकों व्यथा मत हो ओर मूढ भाव मत हो, अरु भय त्यागकरकै प्रसन्न-मन होयकै वोही मेरो रूप देख" या प्रकार समा-

---

—मिति स्वप्रसादस्यैवात्मदर्शनासाधारणहेतुत्वं, न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः । एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर, इत्यन्येषां साधनानां सव्यभिचारित्वं प्रपंच्य, मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम् । व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य, इत्यादिना भीतं तमाश्वास्य चतुर्भुजरूपं पुनर्दर्शयामास ॥

धानकरकै अपनो चतुर्भुजरूप दिखावत भये । यह सञ्जय धृतराष्ट्रसों कहत भयो । कि, अर्जुन भगवान्को चतुर्भुजरूप देखकै बोल्यो । "हे जनार्दन ! अब यह तुम्हारो सौम्य मनुष्यरूप देखकै मैं स्वस्थचित्त भयो, अपने स्वभावकों प्राप्त भयो" इति । यद्यपि जगत्कारण, विश्वात्मा, ब्रह्मादिके पूज्य, मुक्तप्राप्य, शास्त्रप्रतिपाद्य, सर्वज्ञ, निरतिशय ऐश्वर्य, शक्तियोगकरकै ब्रह्मादिकोंको भी भगवान् दुर्लभ हैं, तथापि भक्तिप्रपत्तिके मिषमात्र माहात्म्यकरकै अपने असाधारण वात्सल्य कारुण्य दयादिगुण विवशतातें प्रपन्न भक्तनकों भगवान् सुलभ हैं, यह भावार्थ है । भक्तिप्रपत्तिको माहात्म्य श्रुति स्मृति पुराण अरु इतिहासवाक्यनमें बहुत विस्तारसों कह्यो है । तामैं भक्तिके माहात्म्यको द्योतनकर्त्ता शास्त्र है, सोई कहत हैं । गोपालोत्तरतापनीमैं श्रीभगद्वाक्य ब्रह्मा प्रति-"जैसैं तू पुत्रन सहित, जैसे रुद्र अपने गण सहित, अरु जैसैं लक्ष्मी नित्यसम्बन्धकरकै मोकों प्रिय है, तैसैंही भक्त मोकों प्रिय हैं" यह मंत्र है । और नरसिंहमंत्रराजके व्याख्यानमैं देवगण ब्रह्मासों पूछत भये कि "याकों मृत्युमृत्यु क्यों कहत हैं ? इति ।

---

१ यथा त्वं सह पुत्रैस्तु यथा रुद्रो गणैः सह । यथा श्रियाऽभियुक्तोऽहं तथा भक्तो मम प्रियः ॥ २ अथ कस्मादुच्यते मृत्युमृत्युरिति ? यस्मात् स्वभक्तानां स्मृत एव मृत्युमपमृत्युं च मारयतीत्यादिश्रुतेः ॥

तहां ब्रह्मा उत्तर कहत भयो—जातें अपने भक्तनको स्मरणविषय होयकैं मृत्यु अपमृत्युकों मारत है, तातें याकों मृत्युमृत्यु श्रुतिगण कहत हैं" इति। "भक्तिही याकों बढावत है भक्ति याकों भगवत्‌का दर्शन करावत है, भक्तिके वश परमेश्वर है, तातें भक्ति सबतें बडी है" इत्यादि श्रुतिप्रमाण है।"हे अर्जुन! मैं वेदकरकै तपकरकै दानकरकै ईज्याकरकै दर्शनके योग्य नहीं हूं, कि जैसें तू मोकों देखतभयो, ऐसो विश्वरूप मैं भक्तिकरकै दर्शनकों योग्य हूं, जानवेको योग्य हूं,प्रविष्ट होनेको योग्य हूं। भक्तिकरकै मोकों जानत हैं जैसों अपरिच्छिन्न मैं हूं जा प्रकार सर्वज्ञ सर्वशक्ति सच्चिदानन्द हूं। या प्रकार मोकों जानकै ताके अनन्तर मेरे विश्वरूपमें प्रवेश करै है। मेरो भक्त ऐसें जानकै मेरे भावकों प्राप्त होत है, हे पार्थ! परमपुरुष अनन्यभक्तिकरकै लभ्य है। जो मेरो भक्त है सो मोकों प्रिय है, तिनकों मृत्यु संसार-

१ भक्तिरेवैनं वर्द्धयति भक्तिरेवैनं दर्शयति, भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी। इत्याद्याः श्रुतयः ॥ २ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा। भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुञ्च तत्त्वेन प्रवेष्टुञ्च परंतप॥। न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः। एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्। मद्भक्तः एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते। पुरुषः स परः पार्थ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। यो मद्भक्तः स मे प्रियः। तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्। योगक्षेमं वहाम्यहम्।

सागरतै मैं उद्धार करत हूं, तिनकों योगक्षेम मैं प्राप्त करत हूं" इति श्रीमुखवाक्य है । नारायणीयाख्यानमें नरनारायणको वचन है कि "हे नारदजू ! यह वचन हमारो सत्य है, याकों भक्ततें प्रियतर लोकमैं कोऊ नहीं । तातें तोकों भगवान्नें अपनो रूप दिखायो" ताहीमैं श्रीकृष्ण अर्जुनसों कहत भये "चारप्रकारके मेरे भक्त हैं, यह निश्चय है, तिनमैं जो अनन्यदेव हैं मैंही जाकी गति हूं, वे निष्कामकर्मके कर्त्ता एकांती श्रेष्ठ हैं" ताहीमैं वैशंपायनको वचन "जे ब्राह्मण विधिसहित वेद और उपनिषद पढत हैं और संन्यासधर्ममैं स्थित हैं, तिनतें एकांतिभक्तनकी गति मैं श्रेष्ठ जानत हूं" ताहीमैं नरनारायणको वचन "हे नारदजी ! आप धन्य हैं, तिनके अनुग्रहपात्र हो, जातें श्रीभगवान् स्वयं प्रभु श्वेतद्वीपके स्वामी देखे । जाकों देखनेकों ब्रह्मा हू समर्थ नहीं ।" ताहीमैं श्वेतद्वीपपति नारद प्रति "एकत, द्वित, त्रित, ये

---

१ नारदैतद्धि नौ सत्यं वचनं समुदाहृतम् । नास्य भक्तात्प्रियतरो लोके कश्चन विद्यते ॥ यतः स्वयं दर्शितवान् स्वात्मानं च द्विजोत्तम ॥ २ चतुर्विधा मम जना भक्ता एवेति ये श्रुताः । तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवानन्यदेवताः । अहमेव गतिस्तेषां निराशीःकर्मकारिणाम् ॥ ३ सहोपनिषदान्वेदान् ये विप्राः सम्यगाश्रिताः । पठन्ति विधिमास्थाय ये चापि यतिधर्मिणः । तेभ्यो विशिष्टां जानामि गतिं चैकान्तिनां नृणाम् ॥ ४ धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यत्ते दृष्टः स्वयं प्रभुः । न हि तं दृष्टवान् कश्चित्पद्मयोनिरपि स्वयम् ।

तीनऋषि मेरे दर्शनकी लालसाकरकै यहां आवत भये, किन्तु ते मोकों न देखत भये, और कोऊ न देखेगो विना एकांतिभक्तनके, तू मेरो एकांती भक्त है, तातें तोकों दर्शन भयो"। राज्यधर्ममें भीष्मको वचन "हे माधव! हे वार्ष्णेय! आपके प्रसादतें दाह मोह श्रम और कल्मष[2] और ग्लानि मेरो सब दुःख गयो। भूत भविष्यत् वर्त्तमान सब मैं साक्षात् देखतहूं, हस्तमैं जैसैं आमलेको फल।" उत्तरवाल्मीकिमैं सनत्कुमारजीको वचन रावण प्रति "हे तात! यज्ञनकरकै तप[3] संचयकरकै दानकरकै ईज्याकरकै भगवान् देखनेकों शक्य नहीं, किन्तु जिननैं तामैं प्राण और चित्त अर्पण करयो है, और ज्ञानकरकै जिनके कल्मष गये हैं, ते भक्त ताकों देखत हैं। और अनन्यभक्तनको भगवान् आप ध्यान करत हैं, क्योंकि वे निरतिशय प्रीतियुक्त हैं।" और राजधर्ममैं कह्यो है, श्रीमुखकरकै। "हे युधिष्ठिर! शरशय्यामैं भीष्म पडो है जैसैं निधूर्म अग्नि, सो मेरो ध्यान करत

१ एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः। इदं मे समनुप्राप्ताः मम दर्शनलालसाः। न च मां ते ददृशिरे न तु द्रक्ष्यति कश्चन। ऋते ह्येकान्तिकं चैषां त्वं चैवैकान्तिको मम॥ २ दाहो मोहः श्रमश्चैव क्लमो ग्लानिश्च माधव!। तव प्रसादाद् वार्ष्णेय! सद्यो व्यपगतानि मे। यत्र भूतं भविष्यञ्च भवच्च परमद्युते। तत्सर्वमनुपश्यामि पाणौ फलमिवाहितम्॥ ३ नहि यज्ञफलैस्तात! न तपोभिश्च सञ्चितैः। शक्यते भगवान् द्रष्टुं न दानेन न चेज्यया। तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चितैस्तत्परायणैः। शक्यते भगवान् द्रष्टुं ज्ञाननिर्धूतकल्मषैः॥

है, तातें तहां मेरो मन जात भयो, इन्द्रियसमूहको नियमनकरक बुद्धि सहित मन एकाग्रकरकै मेरी शरणको प्राप्त होत भयो, तातें मेरो मन तामैं गयो" ताहीमैं भीष्मप्रति "हे भरतवंशमैं श्रेष्ठ! जातें तेरी पराभक्ति मेरेमैं है, तातें मैं अन्तकालमैं तोको अपनो रूप दिखायो। अभक्त, अजितेंद्रिय, आर्जवहीन, चंचलचित्त जन मोकों देख नहीं सके हैं, ताकों मैं दर्शन नहीं देत हूं" विष्णुपुराणमैं प्रह्लादसों श्रीमुखवचन- "हे प्रह्लाद! तू अव्यभिचारिणी भक्तिकर्त्ता है तातें तोपर मैं प्रसन्न हूं" इत्यादि। अथ प्रपत्तिमाहात्म्यके वचन "प्रपत्तियोगकरकै सनातन भगवान्कों जो

---

१ शरतल्पगतो भीष्मः शाम्यन्निव हुताशनः। मां ध्यायन् पुरुषव्याघ्र! ततो मे तद्गतं मनः। एकीकृत्येन्द्रियग्रामं मनः संयम्य मेधया। शरणं मामुपागच्छत्ततो मे तद्गतं मनः॥ २ यतः खलु पराभक्तिर्मयि ते पुरुषर्षभ!। ततो मया वपुर्दिव्यं तव भीष्म! प्रदर्शितम्। न ह्यभक्ताय राजेन्द्र! भक्तायाऽनृजवे न च। दर्शयाम्यहमात्मानं न चादान्ताय भारत॥ ३ कुर्वतस्ते प्रसन्नोऽहं भक्तिमव्यभिचारिणीम्॥ ४ अनेनैव प्रपन्नस्य भगवन्तं सनातनम्। तस्यानुबन्धाः पाप्मानः सर्वे नश्यन्ति तत्क्षणात्। कृतान्यनेन सर्वाणि तपांसि तपतांवर!। सर्वतीर्थाः सर्वयज्ञाः सर्वदानानि तत्क्षणात्। कृतान्यनेन मोक्षश्च तस्य हस्ते न संशयः। यद्येन कामकामेन संसाध्यं साधनान्तरैः। मुमुक्षुणा यत्सांख्येन योगेनापि च भक्तितः। प्राप्यते परमं धाम यतो नावर्त्तते यतिः। तेन तेनाप्यते तत्तन्न्यासेनैव महामुने! परमात्मा च तेनैव साध्यते पुरुषोत्तम। या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये। तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः। ये च तद्भावितात्मानो ह्येकान्तित्वं समागताः। एतदभ्यधिकं तेषां यत्ते तं प्रविशन्त्युत॥

शरण भयो ताके सब पाप तत्क्षण नाश होत हैं । ताने सब तप करे, सब तीर्थ यात्रा करी, सब यज्ञ करे, सर्व-दान दिये, ताही क्षणमें और मुक्ति ताके हस्तमें वर्त्तै है, जो श्रीभगवान्‌की शरण भयो । जा जा संकल्पकरकै जिस जिस साधनकरकै जो फल सिद्ध होत है, मुमुक्षुकों जो सांख्यकरकै योगकरकै भक्तिकरकै परमधाम प्राप्त होत है, जाकों पायकै यति फिरत नहीं, ता ता फलकों हे महामुने ! भगवान्‌की प्रपत्तियोगकरकै पावत है, और परमात्मा श्रीपुरुषोत्तम ताही करकै वश होत हैं । अर्थ धर्म काम मोक्ष ये चार पुरुषार्थकी जो जो साधनसामग्री भिन्न भिन्न शास्त्रमें कही हैं, अधिकारीके अनुसार, ता समस्त सामग्री विना चारो पुरुषार्थकों प्रपन्न पावत हैं, जो नरनारायणकी शरण हैं, ये भावनाकरकै संपन्नचित्त हैं, हरिके एकांती हैं, उनकों सबतें अधिक स्थान विष्णु-पद है, जहां ते जात हैं" इत्यादि । "जे कृष्णकी शरण हैं तिनको मोह होत नहीं, क्योंकि महाभयमें निमग्न[1]के रक्षक श्रीजनार्दन हैं । जे श्रीहृषीकेशके शरणागत हैं तिनकों मोह कबहूं होत नहीं" यह भारतमें प्रमाण है। मात्स्यपुराणमें पितृगीत है कि "हमारे कुल[3]में कोई ऐसो

[1] ये तु कृष्णं प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः । भये महति मग्नानां त्राता भव जनार्दन ॥ [2] ये प्रपन्ना हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ [3] अपि स्यात्स कूलेऽस्माकं सर्वभावेन यो हरिम् । प्रयायाच्छरणं विष्णुं देवेशं मधुसूदनम् ।

होय जो सर्वभावकरकै हरिंशरणमें प्राप्त होय, जो विष्णु सब देवनके ईश, मधुनाम दैत्यके हंता है" कूर्मपुराणमें "[1]ब्रह्मा महादेव और समस्तदेवता अपनी शक्तिसहित मेरी शक्तिकरकै स्थित हैं, ऐसें जानकै मेरी शरण भयो" इत्यादि। अथ एकांतीको लक्षण--[2]एक भगवान् श्रीकृष्णमैं अन्त नाम उपाय फलसंबंधरूप निर्णय है, जाको सो एकांती हैं। "तिनमैं जो अनन्यदेवता हैं, मैंही जिनके गति साधन फल सम्बन्धरूप हूं ते निष्कामकर्मके कर्त्ता एकांती श्रेष्ठ हैं" यह श्रीमुखकरकै एकांतिको लक्षण कह्यो है।"हे नृपश्रेष्ठ! राजाजन्मेजय! सबज्ञानमैं शास्त्रके अनुसार यथार्थज्ञान ताको है कि, जाको निष्ठाविषय प्रभु श्रीनारायण है" यह वैशंपायनको सिद्धांत है। तातैं श्रीभगवान् ब्रह्मादिकोंको भी दुर्लभ हैं, तथापि अपने निज निरतिशय करुणादयादिक गुणगणके विवशताकरकै अनन्यभक्तनको सुलभ हैं, यह सिद्धांत भयो। सो पूर्व कह्यो है।यह नारायणीयाख्यानमैं कह्यो है कि—"जो ब्रह्मा

---

१ ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः। मच्छक्तौ संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरण गतः॥ २ एकान्तित्वं नाम एकस्मिन् श्रीभगवति विष्णौ अन्तं उपायोपेयसम्बन्धरूपो निर्णयो विद्यते यस्य स एकान्ती, तस्य भावस्तत्त्वम्। तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवानन्यदेवताः। अहमेव गतिस्तेषां निराशीःकर्मकारिणामिति भगवद्वचनात्। सर्वेषु च नृपश्रेष्ट! ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते। यथागमं यथाज्ञानं निष्ठा नारायणः प्रभुरिति वैशम्पायनवचनात्।

और ऋषि और स्वयं पशुपति और देवता दैत्य दानव राक्षस नाग पक्षी सुपर्ण गंधर्व सिद्ध राजर्षि ये समस्त विधिपूर्वक हव्य कव्य भगवान्कों अर्पण करत हैं, सो समस्त परदेवता श्रीपुरुषोत्तमके चरणनमें प्राप्त होत है। और जो क्रिया एकांती भक्तनें भगवान्कों अर्पण करी सो समस्त श्रीभगवान् अपने मस्तककरकै ग्रहण करत हैं" इति। ताहीमें जनमेजय कहत है "हे वैशंपायन-जी! वडो हर्ष है कि अपने श्रेष्ठ एकांती भक्तनको भगवान् प्रसन्न करत हैं, और विधिकरकै जो अर्पणकरी पूजा सो अपने मस्तककरकै आप ग्रहण करत हैं । और एकांती भक्त ताके परमपदको प्राप्त होत हैं" इति । तहां वादीकी शंका--जो एकांतीको ऐसो माहात्म्य है, तो सब एकांती क्यों नहीं होत हैं? इति। सो नहीं । प्राणीके राजसतामस बहुत सहकारी हैं, और एकांती सात्त्विक अधिकारी है, तातें अत्यन्त दुर्लभ है। यह नारायणीयाख्यानमें वैशंपायननें कह्यो है। "हे राजा

---

१ यद्ब्रह्मा ऋषयश्चैव स्वयं पशुपतिश्च यत् । शेषाश्च विबुधश्रेष्ठा दैत्यदानव-राक्षसाः । नागाः सुपर्णा गन्धर्वा सिद्धा राजर्षयश्च ये । हव्यं कव्यं च सततं विधियुक्तं प्रयुञ्जते । कृत्स्नं तु तस्य देवस्य चरणावुपतिष्ठते । याः क्रियाः सम्प्रयुक्ताश्च ह्येकान्तिगतिबुद्धिभिः । ताः सर्वाः शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयम् ।

२ अहो ह्येकान्तिनः श्रेष्ठान् प्रीणाति भगवान् हरिः । विधिप्रयुक्तां पूजां च गृह्णाति भगवान्स्वयम् । एकान्तिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति परमं पदम् ।

जन्मेजय! भगवान्‌के एकांती पुरुष बहुत दुर्लभ हैं, जो एकांतिनके बाहुल्यकरकै जगत्पूर्ण होय, तो हे कुरुनंदन! एकांती निर्हिंसक आत्मवेत्ता सब भूतनके हितकारी होत हैं, और सकामकर्मकरकै रहितहैं, यातें कृतयुग प्राप्त भयो, अरु कलिके धर्मनको नाश होय" इति। "यह एकांतीनको धर्म मैंनें तोसों कह्यो, सो अकृतात्मा अजितेंन्द्रियको भी यह धर्म दुर्ज्ञेय है, सो मैं श्रीगुरु व्यासदेवके प्रसादतें जान्यो। जन्मसमयमें श्रीमधुसूदन जाको देखत हैं ताकों सात्त्विक जानना, सोई मोक्षके अर्थको निश्चय करत है" इति। "और जे राजस तामस भावनकरकै घिरे हैं, हे द्विजश्रेष्ठ! ते मेरी आज्ञासों बहिर्मुख हैं" यह भगवद्वचन यामें प्रमाण है। "हजारों मनुष्यनमें कोई एक सिद्धिके अर्थ यत्न करत है, यत्नपरायण सहस्रनमें कोई एक मोकों तत्त्वतें जानत है" इति। तहां शंका। निरतिशय षाड्गुण्यादि अनन्तगुणाश्रय श्रीभगवान्

---

१ एकान्तिनो हि पुरुषा दुर्लभा बहवो नृप!। यद्येकान्तिभिराकीर्णं जगत्स्यात्कुरुनन्दन। अहिंसकैरात्मविद्भिः सर्वभूतहिते रतैः। भवेत्कृतयुगप्राप्तिराशीःकर्मविवर्जितैः॥ २ एष एकान्तधर्मस्ते कीर्त्तितो नृपसत्तम!। मया गुरुप्रसादेन दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः। जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः। सात्त्विकः स तु विज्ञेयो भवेन्मोक्षे च निश्चितः। ३ इतरे राजसैर्भावैस्तामसैश्च समावृताः। भविष्यन्ति द्विजश्रेष्ठ! मच्छासनपराङ्मुखाः॥ ४ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।

ब्रह्मादिकों दुर्लभ हैं, तब काहेतें भक्तनके अधीन है? इति। भगवान्‌के आशयकों को जाणै, जातें अत्यन्त गूढ है, यह कहत हैं। जातें अचिंत्य आशय है, ब्रह्मादिकनकरकै अचिंत्य अतर्क्य ताको तात्पर्य है। यह श्रुति कहत हैं "कौण ताको साक्षात् जाणसकै जातें यह समस्त भयो है, तुमहीं आपकों जानत हो जो हो सो हो, हे विष्णो! ऐसो पुरुष न जन्मो है न जन्मैगो जो तुम्हारे महिमाको पार पावे जो याको स्वामी परम व्योम वैकुंठधाममें विराजत है, सोई आपकों यथार्थकरकै जाणे है, इयत्ता परिच्छेदकरकै नहीं जाणत है। ताको लोकमें कोई पति नहीं। इयत्ताकरकै ज्ञाता नहीं। इयत्ताज्ञानको कोई लिंग नहीं। ताकों तुम न जाणत भये। मन सहित वाणी याके आनन्दको अन्त नहीं पायकै फिर आवत है, ऐसैं ब्रह्मके आनंदको विद्वान् काहूतें भय नहीं करत है" इत्यादि। "हे अर्जुन! मैं सर्वज्ञ हूं भूत भविष्यद्वर्त्तमान समस्त जानत हूं, मोकों कोई

१ कोऽद्धा वेद यत आबभूव त्वं हि त्वां वेत्थ योऽसि सोऽसि, न ते विष्णोर्जायमानो न जातो देवस्य महिम्नः परमं तमाप। योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सोऽङ्ग वेद यदि वा न वेद। न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न वेदिता नैव च तस्य लिङ्गम्। न तं विदाथ य इमा जनान, यतो वाचो निवर्त्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह आनंन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥ २ वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन। भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

जानत नहीं" यह श्रीमुखवचन है । जाकों "भगवान्[1] ब्रह्मा नहीं जानत है, सो जगत्को धाम सर्वरूप सर्वगत अच्युत परमपद ताकों हम नमस्कार करत हैं । याकों देवता मुनिगण मैं ब्रह्मा और शंकर समस्त जानवेकों समर्थ नहीं, सो विष्णुको परमपद है" इत्यादि ॥ "प्रजापति[2] और रुद्रकों मैं उत्पन्न करत हूं, मेरी मायाकरकै मोहित ते मोकों जानत नहीं हैं"। इत्यादि स्मृति प्रमाण है। तहां शंका-ये श्रुति स्मृति स्वरूप ज्ञानके निषेध करता हैं। सो तात्पर्यको विशेषण कैसैं बनै ? इति। सो नहीं । कैमुत्यन्यायकरकै बनत है, जो स्वरूपहीको ज्ञान नहीं तो तिनके तात्पर्यकों नहीं जानै याकी कहा कथा इति। यह स्पष्ट नारायणीयाख्यानमैं कह्यो है "ब्रह्मादिके[3] और तिनके लोकनकी और महात्मा ऋषिनकी सांख्यवालोंकी और योगिनकी और यतिनकी बाह्य अन्तर चेष्टा समस्त भगवान् जानत हैं किन्तु, भगवान्की चेष्टाकों ब्रह्मादि जानै नहीं है"।

---

१ यं नायं भगवान् ब्रह्मा जानाति परमं पदम् । तं नताः स्म जगद्धाम सर्वं सर्वगताऽच्युतम् । यं न देवा न मुनयो न चाहं न च शङ्करः । जानाति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २ प्रजापतिं च रुद्रं च सृजामि च हरामि च । तेऽपि मां नैव जानन्ति मम मायाविमोहिताः ॥ ३ ब्रह्मादीनां स लोकानामृषीणां च महात्मनाम् । सांख्यानां योगिनां चापि यतीनामात्मवेदिनाम् । मनीषितं विजानाति केशवो न तु तस्य ते ॥

और निषेध करत हैं । यह पूर्व कह्यो है । कृष्णपदारविन्द विना जीवनकी और गति नहीं । यहां पदारविन्दके कहनेते विग्रहवान् परमात्मा श्रीभगवान् प्रपत्तिको विषय है । यह सिद्ध भयो, अरु अरविन्दशब्द सौंदर्य दिखावनेकों कह्यो । और सुन्दरवस्तुको संबंध सुलभ है, तातें ता भगवान्की प्रपत्ति सुलभ है । यह जानना, इति । "अथ गुरुके[1] संबंध विना ज्ञानकी प्राप्ति कदाचित् नहीं होत है । श्रीगुरु संसारसमुद्रके पारकर्त्ता केवट हैं, ज्ञान याकी नाव है" यह भारतमैं राजा जनकनै शुकदेवजीसों कह्यो है । "सो मुमुक्षु गुरुके[2] शरण जाय समित्पाणि होयकै, आचार्यको देवतुल्य उपासनेकर्त्ता होय ।" तहां गाथा है । "जैसैं[3] कोई पुरुषको चोरने गांधारदेशसों पकडकै ताकी आंख बांधके द्रव्य लूटकै निर्जन वनमैं छोडदियो, सो पूर्व उत्तर सब ओर बंधनेत्र टक्कर खात फिरत है, तहां कोई दयालु पुरुषने देखकें दयातें ताके नेत्रको बंधन खोलकै

---

१ न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः कुतः । गुरुः पारयिता तस्य ज्ञानं प्लवमिहोच्यते ॥ २ स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः। आचार्यदेवो भव ॥ ३ यथा सौम्य ! पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततो विजने विसृजेत्, स यथा तत्र प्राङ् वोदङ् वाधराङ् वा विसृष्टस्तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य ब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एनां दिशं व्रजेति। स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन्पंडितो मेधावी गन्धारानेव सम्पद्येतैवमेवेहाचार्यवान्पुरुषो वेदेति ॥

कह्यो, या ओर गांधारदेश है, या मार्ग तू चल, आगै पूछकै गांधारदेशमें अपने गृहको पहुंचैगो सो जैसैं बुद्धिमान् पुरुष ताके कहेतें ग्राम ग्राम आपनो मार्ग पूछकै गांधार देशकों प्राप्त होत हैं, तैसैं आचार्यवान् पुरुष तत्त्वकों जानत है" इत्यादि श्रुति प्रमाण है। तामैं गुरुके लक्षण "[1]श्रोत्रिय शास्त्रपारगामी ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मस्वरूपगुणादिकों साक्षात् द्रष्टा" इति श्रुति है। "[2]तीनवर्णमैं जाको जन्म मेरी शरणागत नित्यनैमित्तिकधर्मपरायण, मेरे आराधनसैं तत्पर, आत्मीय परकीयमैं समबुद्धि ऐसो उपदेष्टा कहिये है। आचार्य वेदसंपन्न विष्णुभक्त मदमात्सर्यहीन मन्त्रको ज्ञाता मन्त्रको भक्त सदा मंत्रके आश्रय सदाचारनिष्ठ गुरुभक्तियुक्त पुराणज्ञाता इन लक्षणसंपन्न होय सो गुरु कहियत है" इत्यादि स्मृति हैं। ऐसे श्रीगुरुकी मुमुक्षु शरण होय। लक्षहीनकी शरणमैं दोष कह्यो है। "[3]अनज्ञ पुरुष फटी नावमैं चढ्यो जैसैं नदी पार नहीं होत है, तैसैं ज्ञानहीन गुरु शिष्यको संसार छूटत नहीं, और मोक्षप्राप्ति नहीं होतहै"

---

१ श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ २ त्रिषु वर्णेषु सम्भूतो मामेव शरणं गतः। नित्यनैमित्तिकपरो मदीयाराधने रतः। आत्मीयपरकीयेषु समो देशिक उच्यते। आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः। मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदा मन्त्राश्रयः शुचिः। गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषतः। एवं लक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते॥ ३ भिन्ननावाश्रितः स्तब्धो यथा पारं न गच्छति। ज्ञानहीनं गुरुं प्राप्य कुतो मोक्षमवाप्नुयात्॥

इत्यादि स्मृति हैं। अथ शिष्यलक्षण। "जैसैं या लोकमैं कर्मसञ्चितफलको नाश होत है, तैसैं स्वर्गलोक धर्मकरके जीत्यो नाश होत है, ऐसैं कर्मरचित लोकनकी परीक्षा करके ब्राह्मण निर्वेदकों प्राप्त होय, कृतकर्मकरकै अकृत मोक्षकी प्राप्ति नहीं, सो विद्वान् श्रीगुरु अपने शरणागत शांतचित्त उपसन्न अरु शमकरकै युक्त शिष्यकों ब्रह्मविद्या कहत भयो" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। "आस्तिक धर्मशील वैष्णव सदाचारी गंभीर और चतुर धैर्यवान् ये शिष्यके लक्षण हैं" इत्यादि स्मृति हैं। तहां प्रथम श्रीगुरु शिष्यकी जाति गुण स्वभावादिकरकै परीक्षा करै, ताके अंनतर परंपरा उपदेशपूर्वक विद्या उपदेश करै। "शिक्षा परीक्षापूर्वक करनी यह व्यासजीनैं कह्यो है, जिसके चरितकी परीक्षा न करी ताकों विद्या कबहू देनेकों योग्य नहीं, जैसैं शुद्ध कुंदन कनककी ताप छेदन घर्षणकरकै परीक्षा करत हैं, तैसैं शिष्यकी कुल गुणादिकरकै परीक्षा करै" इति मोक्षधर्ममैं कह्यो है।

---

१ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्, समित्पाणिः, परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्। नास्त्यकृतः कृतेन, तस्मै स विद्वान् उपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय समन्वितायेत्यादि॥ २ आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान् वैष्णवः शुचिः। गम्भीरश्चतुरो धीरः शिष्य इत्यभिधीयते॥ ३ नापरीक्षितचारित्रे विद्या देया कथञ्चन। यथा हि कनकं शुद्धं तापच्छेदनघर्षणैः। परीक्षेत तथा शिष्यानीक्षेत कुलगुणादिभिः॥

"सो आचार्यवंश[1] जानना, अमुक आचार्यको यह है, अमुक आचार्यको सो है, याकरकै परम अक्षर जानै सो ब्रह्मविद्या गुरु कहतभये" इति श्रुति प्रमाण है। "श्रीगुरु गुरुपरंपराको[2] उपदेश करै। शिष्यके हितकी इच्छाकरकै जैसें पुत्रको हित पिता विचारत है, तैसें शिष्यके परमार्थको विचारै, सावधान होयकै विधिपूर्वक विद्याग्रहण करावै। तैसें उपनिषत्संबंधी विद्या विश्वासकों बढावनहारी, और अध्यात्मविद्या शिष्यकी अवस्थाके अनुकूल ग्रहण करावे।" इत्यादि स्मृति प्रमाण हैं। अथ कहे लक्षणसंपन्न मुमुक्षु शिष्य पूर्वोक्त लक्षणसंपन्न गुरुके निकट जायकै नमस्कारादिपूर्वक शास्त्रोक्त विधिकरकै गुरुकी शिक्षा विद्याको ग्रहण करै। "नमस्कारकरकै[3] दीर्घ तीन प्रणाम करै, आदरसहित तिनके चरणारविंद मस्तकपर राखै, तिनके मुखतें मंत्रराजको ग्रहण करै, जैसें निर्धन निधिको आकांक्षाकरके

---

१ स आचार्यवंशो ज्ञेयो भवति। आचार्याणामसावसौ। येनाक्षरं परमं वेद सत्यं, प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥ २ परम्परामुपदिशेद्गुरूणां परमो गुरुः। अनुकांक्षन् सदा शिष्यं गुरुरौरसपुत्रवत्। विद्यां समाहितो भूत्वा ग्राहयेदुपाधिं विना। तथोपनिषदो विद्यां विश्वासज्ञानवर्द्धनीम्। अन्यामाध्यात्मिकीं विद्यां शिष्यावस्थानुरूपतः॥ ३ नमस्कृत्य गुरुं दीर्घं प्रणामैस्त्रिभिरादृतः। तत्पादौ गृह्य मूर्ध्नि स्वे निधाय विधिनान्वितः। गृहीयान्मन्त्रराजं तं निधिकांक्षीव निर्धनः। दत्त्वा तु दक्षिणां तस्मै यथाशक्ति यथाविधि। तमर्चयेद्यथाकालं पाद्यं चास्य सदा चरेत्॥

ग्रहण करत है, ताकी नाई । ताकों यथाशक्ति विधि-पूर्वक दक्षिणा अर्पण करै, ताको समय समयमें नित्य अर्चन करै समयके अनुसार।तिनके चरणतीर्थ सदा ग्रहण करै"इत्यादि स्मृति प्रमाण हैं। अथ गुर्वनुवृत्ति कहत हैं। पूर्वोक्त कर्मज्ञानाऽदि साधनके आचरण करनेको जो असमर्थ है, ताकों भगवान्‌की उपसत्ति जैसें कही तिनके अंगनके अनुष्ठान अत्यंत दुष्कर जाणके तामैं अपनेको अनधिकारी निश्चय करके श्रीगुरुकी आज्ञाकी अनुवृत्ति करै। "जाकी श्रीपुरुषोत्तम पर देवमें जैसी परा भक्ति है, तैसी श्रीगुरुदेवमैं[1] परा भक्ति हो, ताहीकों वेदांतमैं कहे पदार्थ प्रकाश होत हैं, ओरकों नहीं। तू आचार्यदेव हो"। इत्यादि श्रुति यामें प्रमाण हैं। "आचार्यको उपासन करै ओर जे सांख्ययोगादिके अधिकारी नहीं हैं, ते श्रीगुरुदेवके मुखतें श्रवणकरके श्रद्धा विश्वासपूर्वक जे उपासन[2] करत हैं, तेऊ मृत्युकों तरत हैं, श्रवणपरायणहोयकैं" इति श्रीमुखवचन है। अथ गुर्वाज्ञाकी अनुवृत्तिको लक्षण। देवकी समान श्रीगुरुशुश्रूषा-परायण होयकैं ताकी आज्ञाके अनुकूल आचरण। आपकों सब साधनमें असमर्थ निश्चयकरकै श्रीगुरु मेरे साधन

---

१ यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः। आचार्यदेवो भव॥ २ आचार्योपासनं शौचम्। अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते। तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

और फल ओर संबंधरूप हैं, ऐसें दृढ विश्वास करके जैसे बालक अपने हित ओर अहितकों समझै नहीं अरु सर्वभावकरके माताकों अनुसरै है, ताकी माता ताको सब आपदातें रक्षा करत है, ओर ताके योग-क्षेमकों वहै है, तैसें अपने सब हिताहितकों छांडके श्रीगुरुसेवक, मुमुक्षु, जब गुरुशुश्रूषापरायण होय है तब ताकी सब प्रकार रक्षा ओर योगक्षेम करुणासागर श्रीगुरु आप करत हैं, जैसे स्तनपानकर्त्ता बालकके रोग-निवृत्तिको ताकी माता आप औषधी खात है, ताकी नाईं। यह सिद्धांत है। ताकी अनुवृत्तिको प्रकार "श्रीगु-रुदेव परब्रह्म हैं, श्रीगुरु परम धन हैं, श्रीगुरु[१] परम काम हैं, श्रीगुरु परम आश्रय है, श्रीगुरु परा विद्या हैं, श्रीगुरु परम गति हैं, ताको सदा अर्चन अरु वंदन करै, सदा ताको नामसंकीर्त्तन करै, सदा ताको ध्यान करै, ताहीके मंत्रको जप करै, ताकों भक्तिसों भजे, ताकी प्रार्थना करै, साधनसाध्यरूप जाणकै ताहीकी शरणा-गत होय। शरीर ओर प्राण ओर बुद्धि ओर वस्त्र ओर कर्म ओर गुण ओर धन गुरुके निमित्त जो धारण

---

१ गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परं धनम्। गुरुरेव परः कामो गुरुरेव परायणः। गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव परा गतिः। अर्चनीयश्च वन्द्यश्च कीर्त्तनीयश्च सर्वदा। ध्यायेज्जपेन्नमेद्भक्त्या भजेदभ्यर्चयेन्मुदा। उपायोपेयभावेन तमेव शरणं व्रजेत्। शरीरं चासु विज्ञानं वासः कर्म गुणान् वसून्। गुर्वर्थं धारयेद्यस्तु स शिष्यो नेतरः स्मृतः॥

करै, सोई शिष्य है, इतर नहीं" यह जयदाख्यान-संहितामैं कह्यो है। श्रीगुरुविमुख पुरुषकों श्रीपुरुषोत्तम त्याग करत है। यह ताहीमैं कह्यो है। "गुरुतें च्युतभयो जो दुर्बुद्धी तातें श्रीनारायण दूर रहत हैं"[1] तामैं दृष्टांत कहत हैं। "जलतें न्यारो भयो जो कमल ताकों सूर्य पोषै नहीं, किन्तु सुखावत है, तैसें गुरुविमुखको भगवान् अंगीकार नहीं करै, किंतु त्याग-करत है"[2] इत्यादि। "श्रीविष्णुकी प्रतिमामैं जो धातु बुद्धि करत है, गुरुमैं मनुष्यबुद्धि करत है, ते दोऊ नरकगामी हैं। सामान्य और विशेष अर्थनकों शास्त्रतें विचारकरकै संग्रहकरै और शिष्यकों ग्रहण करावै सो आचार्य है, तासों कबहूं द्रोह न करै। गुकार अंधकारको वाचक है, रुकार ताके निरोधकर्त्ताको वाचक है, अन्धकारकों जो निरोध करै, सो गुरुशब्दको अर्थ है। गुरु और परमगुरु विशेषकरकै पूजनीय हैं, गुरुके पुत्र कलत्रमैं गुरुसमान भावना करै"[3] इत्यादि। अथ ऐसो

---

१ नारायणोऽपयाति गुरोः प्रच्युतस्य दुर्बुद्धेः। २ कमलं जलादपेतं शोषयति रविर्न तोषयति॥ ३ श्रीविष्णोः प्रतिमाकारे लोहबुद्धिं करोति वा। यो गुरौ मानुषं भावमुभौ नरकपातिनौ। सामान्यतो विशेषांश्च तस्मै धर्मनिशेषतः। आचिनोति स आचार्यस्तस्मै द्रुह्येन्न कर्हिचित्। गुशब्दस्त्वन्धकाराख्यो रुशब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारविरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते। गुरोश्च गुरवः सर्वे पूजनीया विशेषतः। गुरुदारासुतादौ च गुरुवद्वृत्तिमाचरेत्॥

पूर्वोक्तलक्षणयुक्त, अनन्यगुरुभक्त, मुमुक्षु कबहू त्यागके योग्य नहीं, क्योंकि शरणागतके त्यागमैं स्मृतिमें दोष कह्यो है। परन्तु जो पूर्वकी वृत्तिसों गुरु शिष्यको विपर्यय देखै तो प्रथम ताके अर्थ श्रीभगवान्‌की प्रार्थना करै ताके अनन्तर शिष्यकों एकान्तमें बैठायके ताके अपराधको जनावै, तव अपनो अपराध सुनके जो न मानै अरु गुरुवचनको सन्मान न करै, तो ताके त्यागमैं दोष नहीं, यह शास्त्रमैं निर्णय कह्योहै। "जो शिष्यमार्गतैं गिरै तो श्रीगुरु ताको यत्नकरकै निवारण करै, श्रीपतिके चरणारविंदमैं ताके हितकी प्रार्थना करै, ताके सहित सम्भाषणादि न करै, जो वचन न मानै। व्यक्तकरकै श्वास गुरुके निकट निकासै नहीं, गुरुको जहां परिवाद और निंदा प्रवृत्त होय तहां दोऊ कर्ण मूंदनो और तहांते दूर देश जानो। आचार्यके प्रसादतें मेरे सव अभीष्ट प्राप्त होयगो जाकों यह विश्वास है सो सुखी

---

१ यदि शिष्यः पतेन्मार्गात्तं प्रयत्नेन वारयेत्। श्रियः पत्युः पदाम्भोजे गुरुर्याचेत तद्धितम्। तेन सम्भाषणादीनि वर्जयेदनिवर्त्तने। न निःश्वासमपि व्यक्तं विसृजेद्गुरुसन्निधौ। गुरोर्यत्र परिवादो निन्दा चापि प्रवर्त्तते। तत्र कर्णौ पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः। आचार्यस्य प्रसादेन मम सर्वमभीप्सितम्। प्राप्नुयामिति विश्वासो यस्याऽस्ति स सुखी भवेत्। येनैव गुरुणा यस्य न्यासविद्या प्रदीयते। तस्य वैकुण्ठदुग्धाब्धिद्वारका सर्व एव सः। ऐहिकामुष्मिकं सर्वं गुरुरष्टाक्षरप्रदः। इत्येवं ये न मन्यन्ते त्यक्तव्यास्ते मनीषिभिः। एकाक्षरप्रदातारमाचार्यं योऽवमन्यते। शुनो योनिशतं प्राप्य चाण्डालेष्वभिजायते।

होत है, जिन श्रीगुरुने जाकों परविद्या दई, ता शिष्यकों वैकुण्ठ, क्षीरसागर, द्वारका सब गुरुही हैं। मेरे यह लोक परलोक सब मंत्रदाता गुरु हैं। या प्रकार जाके भावना नहीं, तिनको मनीषी त्याग करै। जो एकाक्षरके दाता आचार्यकी अवज्ञा करत है सो श्वानकी शतयोनि भोगकै चांडालके गृहमें जन्म पावत है" इत्यादि स्मृति यामैं प्रमाण है। अथ जो श्रीगुरुकी देवताकी तुल्य उपासना करत है, श्रीगुरु जाकै नाथ हैं, ताकों कछु ओर साधन कर्त्तव्य नहीं यह लोक, परलोक सम्बन्धी ताके सब साधन साध्य श्रीगुरु करतहैं, गुरुकी आज्ञापालनमात्रकरकै ताकी कृतकृत्यता है। यह वनपर्वमें सात्यकिनैं श्रीबलदेवजीसों कह्यो है। "लोकमें जे पुरुष सनाथ हैं, ते अपने अर्थ कर्मका आरम्भ करत नहीं, तिनके कार्यमैं तिनके स्वामी कर्त्ता होत हैं, हे रामजी! जैसैं राजा ययातिकों शैब्यादि होत भये" इति। ताको गुरुकी आज्ञाऽनुवृत्तिकरकै सब पुरुषार्थ सिद्ध होत हैं। यह भारतके आदिपर्वमें गुरुशिष्याख्यानमें श्रीव्यासनै कह्यो है। सो तहां देखनो। "पापिष्ठ क्षत्रबंधु ओर पुण्यात्मा पुंडरीक दोऊ आचार्यकी दयाकरकै मुक्तहोत भये, तातें

---

१ ये नाथवन्तो हि भवन्ति लोके ते नात्मकर्माणि समारभन्ते। कार्येषु तेषां प्रभवन्ति नाथाः शैब्यादयो राम! यथा ययातिः॥ २ पापिष्ठः क्षत्रबन्धुश्च पुंडरीकश्च पुण्यकृत्। आचार्यवत्तया मुक्तौ तस्मादाचार्यवान्भवेत्॥

आचार्यवान् होय" इत्यादिवाक्य यामैं प्रमाण जानना, इति । अथ सर्वसाधन श्रद्धाकरकैं सिद्ध होतहै, तातैं श्रद्धा अवश्य करणा "श्रद्धाकरकै दानकरनो, श्रद्धा विना दे नहीं, श्रद्धाकरकै अग्निवृद्धि होत है" इत्यादि श्रुति प्रमाण है "श्रद्धाभक्ति सहित यह स्तोत्र अध्ययन करै" यह भीष्मको वचन है। अश्रद्धाको कर्म असुर भाग है, यह वामनजीनैं राजा बलिसों कह्यो है। "अश्रोत्रियको श्राद्ध अव्रतीको अध्ययन, दक्षिणाशून्य यज्ञ ऋत्विज विना होम, श्रद्धाविना दान, संस्कारहीन हवि हे दैत्यसत्तम ! ये षट् तेरे भाग हैं । अश्रद्धाकरकै जो होम ओर दान ओर तप सब असत् हैं, सो या लोकमैं ओर परलोकमैं ताको फल नहीं" यह श्रीमुख गायो है । "दाताको दान श्रद्धाकरकै पवित्र है, अश्रद्धाकरकै दान नष्ट है" इत्यादिस्मृतिके वाक्य यामैं प्रमाण हैं ॥

अथ भक्तियोग कहत हैं।

कृपाऽस्य दैन्यादियुजि प्रजायते
यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ।

---

१ श्रद्धया देयमश्रद्धयाऽदेयं, श्रद्धयाऽग्निः समिन्धते ॥ २ इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥ ३ अश्रोत्रियं श्राद्धमवीतमव्रतमदक्षिणं यज्ञमनृत्विजा हुतम् । अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हविर्भागाः षडेते तव दैत्यसत्तम ! ॥ अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् । असदित्युच्यते पार्थ ! न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ ४ श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥

भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः
सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा ॥ ९ ॥

निरतिशय स्वाभाविक करुणावात्सल्य क्षमा सौहार्द सत्यप्रतिज्ञतादि गुणसागर श्रीकृष्णकी कृपा दैन्यादियुक्त पुरुषमें होत है। दैन्यशब्द कार्पण्यको वाचक है, अरु कार्पण्यादिक पूर्वोक्त शरणागतिके अंगनको नाम है। सांगशरणागतियुक्त पुरुष श्रीपुरुषोत्तमको कृपापात्र है। शरणागति भगवत्कृपाको असाधारण साधन है। भगवान्‌की सत्यप्रतिज्ञता श्रीमुखसों कही है, वनपर्वमें द्रौपदीसों। "हे कृष्णे! स्वर्गलोक जो पतन होय, हिमाद्रि फटै, पृथिवीके टूक टूक होय, समुद्र सूखे, किन्तु मेरो वचन मोघ न होवे" इति। वाल्मीकिरामायणमें श्रीरामजीको वचन "हे जानकि! मैं जीवन त्याग करूं, तेरो और लक्ष्मणको त्याग करूं, परन्तु प्रतिज्ञा त्याग न करूं, तामें ब्राह्मणके अर्थ अधिककरकै, तातें मोकों अवश्य ऋषिनको परिपालन करनो जो विना कहे करणो सो प्रतिज्ञाकरकै करनो यामें क्या कहनो" इति। सो गीतामें भी प्रतिज्ञा है—"मोहीकों तू

---

१ पतेद् द्यौर्हिमवान् शीर्य्येत् पृथिवी शकलीभवेत्। शुष्येत्तोयनिधिः कृष्णे! न मे मोघं वचो भवेत् ॥ २ अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते! सलक्ष्मणाम्। न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः। तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्। अनुक्तेनापि वैदेहि! प्रतिज्ञाय तु किं पुनः ॥

प्राप्त होयगो, यह सत्य है, मैं तेरे आगे प्रतिज्ञा करत हूं, जातें तू मेरो प्रिय है, मेरी शरण जे प्राप्त होयेंगे तेई मायाकों तैरेंगे" इत्यादि । सत्यप्रतिज्ञ होके जो करनेको समर्थ न होय तो ताके सर्वगुण निरर्थक हैं, या शंका दूरकरनेकों विशेषण कहत हैं–भगवान् श्रीकृष्ण अनन्याधिपति है, अन्य अधिपति जाके नहीं । "ईश्वरनको ईश्वर, देवतनको देवता, पतिनको पति, सबतें उत्कृष्ट, सब भुवनको ईश्वर, स्तुतिकों योग्य, जाके सम कोऊ नहीं, जात अधिक नहीं, जाको कोई पति लोकमैं नहीं, ताको ईश ओर नहीं, ताको जनक कोई नहीं, ताको अधिप कोई नहीं" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं । "तुम ब्रह्म हो, परधाम पवित्र हो, सर्वोत्कृष्ट हो, शाश्वत पुरुष हो, दिव्य आदिदेव अज विभु तुम हो, यह सर्व

---

१ मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ २ तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्, तं देवतानां परमं च दैवतम् । पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्, । न तत्समोऽभ्यधिकश्च दृश्यते, न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ३ त्वं ब्रह्म परमं धाम पवित्रं परमं भवान् । पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् । आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा । असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे । एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ! । भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते । न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः । यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः । मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ! ॥

ऋषि कहत हैं। श्रीनारद ऋषि देवल और व्यास अरु असित कहत हैं। आपहू श्रीमुखसों तैसैं कहत हो, सो जैसैं आपनै आपकों कह्यो सो तैसैं ही है, यासैं कछु मोकों संशय नहीं,हे परमेश्वर!हे भूतभावन ! हे देवदेव ! हे जगत्पते ! तुह्मरी समान कोई नहीं है,तब अधिक कहांतैं होयगो। सब लोकमैं तुह्मरो प्रभाव उपमारहित है-जातैं क्षरतैं अतीत मैं हूं, अक्षर तेहू उत्तम हूं, तातैं लोकवेदमैं मोकों पुरुषोत्तम कहत हैं, मोतैं परतर हे धनञ्जय ! और कोई नहीं" इत्यादि स्मृति यामैं प्रमाण हैं। तातैं ताके समान और अतिशय कोई नहीं; यह सिद्ध भयो। याहीतैं श्रीभगवान् महात्मा हैं। महान् जाको स्वरूप सो महात्मा अर्थात् विश्वात्मा हैं। याकरकैं जीवनके बाह्य अन्तर चेष्टाकों जानत है, यह मेरो निर्मायिक शरणागत है, अथवा यह मेरो प्रपत्तिव्याजकरकै वंचना करत है, और जगकों ठगत है, सो सब प्रत्यक्ष देखत हैं, तातैं परमेश्वरकी भक्तिमैं कपट न करै। अथवा उदारता क्षमा वात्सल्य सौशील्यादि महागुणनको आश्रय भगवान् हैं तातैं महात्मा हैं। या करकै भक्तिप्रपत्तिके अयोग्य जीवनको ताके मिषमात्रकरकै भजनहारको अपने कारुण्य क्षमादिगुण परवश होयकै तिनके गुण दोष नहीं देखकै भक्तिप्रपत्तिके फलको दाता है, यह सूचन करत हैं। तामैं प्रपत्तिके दो प्रकार हैं। पराङ्-

साधन, स्वतंत्रसाधन । तामैं स्वतंत्रता पूर्व वर्णन करी, भक्तिको अंग यामैं कहत हैं । या प्रपत्युद्बोधित कृपाकरकै भक्ति होत है, यह सामान्यनिर्देश है । ताको लक्षण निष्कामताकरकै भगवत्सेवन है । "याको भजन है, सो भक्ति है, यालोक परलोककी आशा त्यागकरकै तामैं मन राखनो" यह श्रुति है । सो पञ्चरात्रमैं या श्रुतिकी व्याख्या करी है "सब उपाधितें छूटक तत्पर होयकै सब इन्द्रिय करकै निर्मल हृषीकेशको सेवन भक्तिको लक्षण है" इत्यादि । लिंगपुराणमैं भी भक्तिकी निरुक्ति कही है " भजधातु सेवावाचक है, तातैं विवेकी सेवाकों भक्ति कहत हैं, भजनको नाम भक्ति है, मन वचन शरीरकरकै" इति । अब भक्तिको विशेष कहत हैं, सो भक्ति दो प्रकार है, साधनरूपा एक, फलरूप द्वितीय । अनेकजन्मानुष्ठित सुकृतके पुञ्जसे जो भई सो साधनरूपा है । साधनकरकै जन्य है, यात साधनरूपा है । "जन्मांतरसहस्रनमैं तप दान समाधिकरकै क्षीणपाप जिनके भयेहैं, तिनकों श्रीकृष्णमैं

---

१ भक्तिरस्य भजनम् । तदिहामुत्रोपाधिनैराश्येनैवामुष्मिन्मनःकल्पनमिति ॥ २ सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् । हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते ॥ ३ भज इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्त्तितः । तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी । भजनं भक्तिरित्युक्तं वाङ्मनःकायकर्मभिरिति ॥ ४ जन्मान्तरसहस्रेषु तपोदानसमाधिभिः । नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥

भक्ति होत है, पापीको नहीं" यह स्मृति प्रमाण है। सो साधनभक्ति दो विध है। वैदिक, अरु पौराणिक। तामैं वैदिक भक्ति अनेक प्रकार है। जैसें मधुविद्या, शांडिल्यविद्या, सत्यविद्यादिक। सो शारीरकके तृतीयपादमें प्रथमाध्यायमें सूत्रकारनें कह्यो है। तामैं त्रिवर्णी अधिकारी हैं, शूद्र नहीं। यह शूद्राधिकरणमैं भाष्यकार भगवान् श्रीनिंबार्काचार्यजीनें निर्णय कर्यो है। पुराणोक्त रीतिकरकै भगवदाराधन पौराणिक भक्ति है; तामैं सर्ववर्णको अधिकार है। "हे राजन्! या हरि भक्तिमैं सर्व अधिकारी हैं। अथवा परा भक्तिको जो साधनभक्ति सो साधनरूपा भक्ति है। यह सुरर्षि नारदनें पंच रात्रशास्त्रमैं कह्यो है। "हरिको उद्देश करकै जो क्रिया करै सो भक्ति है। ता भक्तिकरकै परा भक्ति होत है" यह पंचरात्रवाक्य यामैं प्रमाण है। या वाक्यमें सामान्यक्रिया कही, तातें सब अधिकारी याके जानिये। सो श्रीमुखको कथन है। "अपने अपने कर्ममें निरंतर रत होयकै पुरुष संसिद्धिकों पावत हैं; अपने कर्मतें जैसें सिद्धिको पावै सो सुन, जातें भूतनकी

---

१ सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र हरिभक्तौ यथा नृप!॥ २ सुरर्षे! विहिता शास्त्रे हरिमुद्दिश्य या क्रिया। सैव भक्तिरिति प्रोक्ता यया भक्तिः परा भवेत्॥

प्रवृत्ति है और जा करके यह जग व्याप्यो है, मनुष्य अपने कर्म करकै ताको पूजनकरकै सिद्धिकों पावत हैं" इत्यादि । यामैं मानवशब्दके कहने करकै सर्वकों भक्तिमैं अधिकार सूचन कर्यो, यह जाणिये । अथ कर्मानुष्ठान-रूप आज्ञापालनके व्याजतें प्रसन्न होयकै श्रीभगवान्नैं दियो जो त्वंपदार्थको ज्ञान ताके उत्तर भई जो भक्ति, सो फलरूपा भक्ति है । ताहीकों परा और प्रेमलक्षणा कहत हैं । रूपादिमैं चक्षुःश्रोत्रादिकी वृत्तिके समान अनवच्छिन्न स्वाभाविक भगवत्स्वरूप-गुणादिविषया जो मानसी वृत्ति सो परा भक्तिको लक्षण है । यह लक्षण प्रह्लादजीने विष्णुपुराणमें कह्योहै । "जैसैं अविवेकीकी विषयमैं अनपायिनी प्रीति है, तैसी प्रीति तुम्हारो स्मरण करणहार मेरे हृदयतें मत नाश हो" इति । ताकों ध्रुवा स्मृतिकरकै श्रुतिमैं कह्योहै । "आहा-रशुद्धि होतसन्तें अन्तःकरणकी शुद्धि होत है, अन्तःक-रणकी शुद्धि होतसन्तें ध्रुवा स्मृति होत है" इत्यादि ।

---

१ स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः । स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु । यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ २ या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी । त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्नापसर्पतु ॥ ३ आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥

निरन्तर जे मेरो कीर्त्तन करत हैं, दृढव्रतहोयकैं यत्न करत हैं, भक्तिकरकै मोकों नमस्कार करत हैं, नित्य-युक्त होयकें मेरो उपासन करत हैं, मोमें चित्त और प्राण राख्यो है, मेरो परस्पर बोधन करत हैं, मेरो निर-न्तर कथन करत हैं, मोहीमें तुष्ट होत हैं, मोहीमें रमण करत हैं"इति श्रीमुखोक्ति है।सो पराभक्ति ज्ञानोत्तर होत है, यामैं प्रमाण भगवद्वचन है। "ब्रह्मभूत, प्रसन्नचित्त, शोक आकांक्षाकरकै रहित, सर्वभूतनमैं सम मेरी परा-भक्तिको पावै है। ता (पराभक्ति) करकै भगवान्के स्वरूपादिसाक्षात्कार होत हैं"। यह श्रीगीतामैं कह्यो है।"भक्तिकरकै मोकों जानत है, जैसो मैं तत्त्व हूं और अपरिच्छिन्न स्वरूपादि हूं, ताके अनन्तर मोमें प्रवेश करत है" इत्यादि।यहां प्रवेश नाम अपनो और सब चेत-नाचेतनविश्वके आत्मा भगवान्को अनुभवपूर्वक विश्व-

---

१ सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः । नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते । मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ २ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ३ भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तर-मिति । प्रवेशोऽत्र स्वस्य चेतनाचेतनात्मकविश्वस्य च ब्रह्मात्मकानुभवपूर्वकवि-श्वरूपे भगवति तच्छत्त्यात्मनाऽवस्थानम् । तत्त्वं च श्रीपार्थसारथिना दर्शित-मर्जुनाय ।तेन तथैवानुभूय विस्तरेणोक्तम् । "पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्"इ-

रूपमैं ताकी शक्तिरूप होयके रहणको है। सो श्रीभगवान् अर्जुनको दिखावत भयो, अरु अर्जुननै अनुभवकरकै विस्तारसौं कह्यो "हे देव! तुम्हारी देहमैं सब देवनकौं देखत हूं और भूतनके समूहनकौं देखत हूं, कमलासनपै बैठ्यो ब्रह्मा और शिव और ऋषि और उरगको देखत हूं।" याको यह भाव है कि, विश्वरूप परब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम विश्वात्मा है, और विश्वाधार है, सब जगत् तामैं शक्तिरूपकरकै रहत है, सब विश्व हरिकी परा अरु अपरा दो विध शक्ति हैं। सो गीतामैं कह्यो है "अष्टप्रकार मेरी अपरा प्रकृति है, तातैं अन्य परा चेतनरूप जीवभूता प्रकृति है, जाकरकै जगत्‌को धारण करत हूं" इति। सब अधिकारीकी अधिकाररूप शक्ति भगवान्‌की है, अरु ताहीमैं सदा रहत हैं। सृष्टिसमयमैं ता ता अधिकारके योग्य ब्रह्मरुद्रादि पदवीके आरूढ होनेके योग्य जीवको भगवान् जगत् सर्जन संहरण शक्तिन सहित

त्यादिना।—एतदुक्तं भवति। विश्वरूपब्रह्मणः श्रीपुरुषोत्तमस्य विश्वात्मत्वेन विश्वजगतोऽधिकरणत्वाद्विश्वं जगत्तत्रावतिष्ठते, शक्त्यात्मना। परापरात्मकशक्तिरूपत्वाच्च विश्वस्येति निर्विवादः। तथा च गीयते "अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो! ययेदं धार्यते जगत्" इति। तथैव सर्वाधिकारिणामधिकाररूपाः शक्तयस्तस्यैव तत्रैव तिष्ठन्ति। सृष्टिसमये तत्तदधिकाराहाणां ब्रह्मरौद्रादिपदारोहणयोग्यानां तत्तज्जगत्स्रष्टृत्वसंहर्तृत्वादिशक्तिभिर्युनक्ति। प्रलये च तान् विश्वाधिकारिणस्ताभिर्वियुनक्ति। विष्णुधर्मोत्तरे, ब्रह्मा शम्भुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः। एवमाद्यास्तथैवान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा। जगत्कार्यावसाने तु वियुज्य—

योजना करत है। प्रलयसमयमें सब अधिकारिनको अपनी शक्तिसों वियोग करावत है। यह विष्णुधर्ममें कह्यो है। "ब्रह्मा शंभु सूर्य चन्द्र इन्द्र और सर्वदेवादि सृष्टिसमयमें विष्णुतेजकरकें युक्त होत हैं, और प्रलय समयमें विष्णुतेजतें वियुक्त होत हैं" इत्यादि। परन्तु सब अवस्थामें ते सब शक्ति अव्यभिचारिणी होयकें श्रीपुरुषोत्तममें रहत हैं, क्योंकि वे भगवान्की स्वभाविकी हैं। ताहीप्रकार मुक्तजीवनकों विश्वरूपमें तदात्मक होयके अवस्थान विरुद्ध नहीं। ताहीकों भगवद्भावापत्ति और सायुज्यादिशब्दकरकै कहत हैं। सायुज्य स्वरूपैक्यकों कहत हैं? यह शंका नहीं करणी, क्योंकि भेदहू श्रुतिसिद्ध है। "जा समय ईशको आपतें भिन्न देखत है, ता समय सब शोक त्यागकरकें ताकी महिमाको पावत है, आत्माकों पृथक् और नियंताकों पृथक् साक्षात्कारतें प्रीतियुक्त होयके ताके महिमाके प्राप्त हात है" इत्यादि श्रुतिमें भेदज्ञानतें मोक्ष

—न्ते स्वतेजसेति। परन्तु सर्वावस्थानस्य सार्वदिक्त्वाविशेष एव। तथा मुक्तानामपि विश्वरूपे भगवति तदात्मकतयाऽवस्थानमविरुद्धम्। स एव भगवद्भावापत्तिलक्षण-मोक्षः सायुज्यशब्देनाप्युच्यते। न च स्वरूपैक्यं सायुज्यमिति वाच्यम्, भेदस्यापि श्रवणात्। "जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं तन्महिमानमिति वीतशोकः। पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनाऽमृतत्वमेति" इति भेदज्ञानान्मोक्षश्रवणान्मोक्षेऽपि भेद उक्तः तन्महिमानमित्यनेन। स्पष्टं चान्यत्र॥

कह्यो है। तातें मोक्षाऽवस्थाहूमें भेद अवश्य अंगीकार करनो ।"ताके महिमाकों पावै" यामें स्पष्ट भेद कह्यो । "जैसें शुद्धजलमें सींच्यो अन्यजल[1] ताही प्रकार होत है, हे गौतम ! ता प्रकार ज्ञाताको आत्मा होत है, देहादिअंजनतें भिन्न होयकें परम साम्यकों पावत है" । इत्यादि श्रुतिने मुक्तिमें भेद कह्यो । यह श्रुतिकी व्याख्या श्रीमुखकरकै करी है " हे अर्जुन ! यह ज्ञानको आश्रयकरकै मेरे साधर्म्यकों प्राप्त होत भये, सर्गमें तिनकों जन्म नहीं, प्रलयमें तिनकों व्यथा नहीं "इत्यादि कोई कहत है सायुज्यशब्दको[3] ब्रह्म आत्मस्वरूप एकता अर्थ है इति । सो तुच्छ है । जातें असंभव है "इन सब देवनके सायुज्य सार्ष्टि समानलोकताकों प्राप्त होय है" इत्यादि श्रुतिमें सर्वदेवसायुज्य कह्यो सो बनै नहीं,

---

१ यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति । एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतमेति । निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ २ इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः । सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ ३ स्वरूपैक्यं सायुज्यमिति केचित्, तत्तुच्छमसम्भवात् । किञ्च सायुज्यशब्दस्य स्वरूपैकत्वेऽभ्युपगते "एतासामेव देवतानां सायुज्यं सार्ष्टितां समानलोकतामाप्नोति"इति श्रुतिविरोधापत्तेः । न हि युगपत्क्रमेण वा अनेकदेवतासायुज्यसिद्धिः । एकेनैक्यापत्तौ पुनरन्यैः कथमैक्यमापद्यते, ऐक्यापन्नस्य पुनर्भेदासम्भवात् । न च, ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवतीति सावधारणश्रुतेरैक्यविधानश्रवणादिति वाच्यम्, ब्रह्मात्मकत्वेन तत्त्वोपदेशस्याविरुद्धत्वात् । तच्चोक्तं पूर्वमेव । अन्यथा, ब्रह्मविदाप्नोति परमिति कर्मकर्तृव्यपदेशव्याकोपात् ॥

क्योंकि एक अधिकारीको अनेक देवताकी एकता एक बेर ओर क्रमकरकै काहू प्रकार बनै नहीं, एक सहित ऐक्य होयकै फेर विभाग बनै नहीं, ओर एकबेर अनेक देवता सहितहू ऐक्य बनै नहीं, तातें सायुज्यको अर्थ स्वरूपकी एकता नहीं है । प्रासंगिककथातें अलं, क्योंकि आगै फलविचारमैं विस्तार करणो है ॥ अथ भक्तिको मूल सत्संग है ताते मुमुक्षुकों भक्तिके अर्थ सत्संग नित्यकर्मकी तुल्य अवश्य करणो है ॥ अथ संतको लक्षण । भगवत्साक्षात्कारकी इच्छाकरकै सर्वपुरुषार्थ जिसने तृण समान करयो है, और हरिकी आज्ञातें विरुद्ध जाके आचार नहीं सो साधु है । अथवा हरिकी आज्ञारूप आचारपरायण होय ओर पुरुषार्थ इच्छाकी कालिमा जाके हृदयमें लगी नहीं होय सो साधु है, इति । सो पद्मपुराणमैं कह्यो है "हे देव ! मोक्षरूपी वर ओर मोक्ष तथा अन्य त्रिवर्ग मैं वरदाता श्रेष्ठ तुमते वरण करत नहीं, हे नाथ ! यह आपको गोपालबालरूप सदा मेरे मनमैं आविर्भाव रहो ओर वरनसों मोकों प्रयोजन नहीं । कुबेरके पुत्र नलकूबर दामोदर-

१ वरं देव ! मोक्षं न मोक्षावधिं वा न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह । इदं ते वपुर्नाथ ! गोपालबालं सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः । कुबेरात्मजौ बद्धमूर्त्यैव यद्वत्त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च । तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ, न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥

मूर्त्तिकरकै आपनैं छुडाये ओर अपनी भक्तिके पात्र करे, तैसें मोकों अपनी प्रेमभक्ति दीजिये। मोक्षादिमें मेरो आग्रह नहीं" इति। अथ हयशीर्ष नारायणव्यूहस्तव-मैं कह्यो है "हे वरदाताके ईश्वर! मैं अर्थ धर्म काम मोक्ष चाहत नहीं, किन्तु आपके चरणारविंदमैं दास्य-भावकी प्रार्थना करत हूं" इति। "श्रीविष्णु परमात्मा वारंवार वरदानके इच्छा करत भयो किंतु जानें मुक्ति हू मांगी नहीं किन्तु भक्तिही मांगत भयो, ता प्रह्लादकों हम नमस्कार करत हैं।" विष्णुपुराणमैं प्रह्लादजीको वचन "हे भगवन्! तुमरे प्रसादतें आपके विषयमें अव्यभिचारिणी भक्ति होयगी याही वरकरकै मैं कृतार्थ भयो। जाको आपकी चरणमूलमैं स्थिरा भक्ति भई, ताकों अर्थ धर्म काम करकै क्या प्रयोजन है ओर मुक्ति ताके हस्तमैं स्थित है" ताहीमैं बालकनको उपदेश "भगवान् जापैं प्रसन्न भयो तांको अप्राप्त कहा है, अर्थ धर्म काम ताकों तुच्छ है, क्योंकि समाश्रित ब्रह्मरूपी

---

१ न धर्मं काममर्थं वा मोक्षं वा वरदेश्वर। प्रार्थये तव पादाब्जे दास्यमेवाभिकामये॥ २ पुनः पुनर्वरान्दित्सुर्विष्णुर्मुक्तिं न याचितः। भक्तिरेव वृता येन प्रह्लादं तं नमाम्यहम्॥ ३ कृतकृत्योऽस्मि भगवन्वरेणानेन यत्त्वयि। भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी। धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता। समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि॥ ४ तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते। समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तान्निःसंशयं यास्यथ वै महत्फलम्॥

अनन्त कल्पवृक्षतें तुम महत्फल पावोगे यामें संशय नहीं"। यामें फलको उद्देश बालकनकी प्रवृत्तिके अर्थ जाणिये । तातें पूर्वापर विरोध नहीं । अथ पंचरात्रको वचन "[1] धर्मार्थ काम मोक्षमें मेरी इच्छा कबहू नहीं हे साधो ! अपने चरणारविंदमें मेरो जीवन दीजिये। सालोक्य सामीप्यकी मैं प्रार्थना करत नहीं, हे गदाधर! हे सुव्रत ! हे महाभाग ! आपके कारुण्यकी मैं इच्छा करत हूं" इति । ऐसे साधु एकांतीके दर्शनादितें सर्वपुरुषार्थकी प्राप्ति होत है, दीर्घकाल संगके माहात्म्यका तौ क्या कहनो? यह कैमुत्यन्यायकरके तिनकी दुर्लभता दिखावत शास्त्र कहत है । "जिस साधुकी अनु[2]-भवपर्यंत बुद्धि तत्त्वमें वर्त्तमान है ताकी दृष्टिगोचर सर्वप्राणि सर्वकिल्विषतें छूटत हैं ।" पुष्करमें कह्यो है "[3]भगवत्योग भावनावाले साधु पृथिवीमें बहुत दुर्लभ हैं, तिनके दर्शन ओर आलापतें शाश्वत भगवत्पद सुलभ है" इति। यामें आश्चर्य नहीं, क्योंकि श्रीपुरुषोत्तम

---

१ धर्मार्थकाममोक्षेषु नेच्छा मम कदाचन । त्वत्पादपङ्कजस्याधो जीवितं दीयतां मम । मोक्षं सालोक्यसामीप्यं प्रार्थये न धराधर ! । इच्छामीह महाभाग ! कारुण्यं तव सुव्रत ॥ २ यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्त्वे प्रतिष्ठिता । तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ॥ ३ दुर्लभा भगवद्योगभाविनो भुवि मानवाः । तद्दर्शनात्तदालापात्सुलभं शाश्वतं पदमिति ॥

तिनके सदा संनिधिमें रहत हैं। "भगवान् अपने भक्तनमें सदा रमण करत हैं, ताके जीर्ण होतें और सोवतें तिनकों कवहूं रातदिन छोडत नहीं" यह तैत्तिरीयशाखाकी श्रुति है। "ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूं, ज्ञानी मोकों प्रिय है, मैं ज्ञानीको कबहू त्याग करत नहीं, तन्मय होके जिसनें श्रीगोविंदमें चित्त राख्यो है, और विषयको त्याग कर्यो है, ताकों हरिके निकट जाणिये। मंगलरूप नारायण नाम जाके मुखमें निरन्तर वर्त्ते है, नारायण सदा ताके समीप रहत हैं, जैसें वत्सला गौ वत्सके समीप" इति स्मृति है। अथ च्यवन नहुष संवादमें "साधुको संभाषण और दर्शन और स्पर्शन कीर्त्तन स्मरण सदा पावन है। यह हमने सुन्यों है, साधु पुण्यतीर्थकी उपमा हैं। तिनको सदा सेवन करे। तिनकों क्षणमात्र उपासन निष्फल होत नहीं। साधुको दर्शन पुण्य हैं, साधु तीर्थरूप हैं,

१ सन्धि च योगं च सन्वर्त्ते ब्रह्मणेद्दशो रमते, तस्मिन्नु जीर्णे शयाने नैनं जहात्यहःसु पूर्वेषु ॥ २ प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः। न त्यजेयं कथञ्चन। तन्मयत्वेन गोविन्दे ये नरा न्यस्तचेतसः। विषयत्यागिनस्तेषां विज्ञेयं च तदन्तिके। नारायणेति यस्यास्ये वर्त्तते नाम मङ्गलम्। नारायणस्तमन्वास्ते वत्सं गौरिव वत्सला ॥ ३ सम्भाषो दर्शनस्पर्शः कीर्त्तनं स्मरणं तथा। पावनानि किलैतानि साधूनामिति शुश्रुम। सेव्याः श्रेयोऽर्थिभिः सन्तः पुण्यतीर्थफलोपमाः। क्षणोपासनयोगोऽपि न तेषां निष्फलो भवेत्। साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः। कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥

ताहू मैं विशेष यह है कि, तीर्थ कालपायकै फल देत हैं, साधुसमागम सद्यः फल देत है" इति । "सत्पुरुषके[1] सहित सदा बसै, संतनसहित संग करै, संतनसहित चर्चा करै, संतनसौं मैत्री करै, असाधुसौं कोऊ संबंध न करै" इति । ऐसे साधु श्रीभगवानतें अधिक पूजनीय हैं, यह श्रीमुख कह्यो है । "मेरे भक्तनके[2] भक्तसौं मेरी अधिक प्रीति है, तातें मेरे भक्तनके भक्त विशेषकरकै पूज्य हैं" इति । "तातें विष्णुके प्रसादार्थ[3] वैष्णवनकौं परितुष्ट करै यातें श्रीविष्णुभगवान् स्वतः प्रसन्न होत हैं, यामै संशय नहीं" इतिहासमैं कह्यो है । "भगवत्से-[4] वीको सिद्धि हो अथवा न हो यह संशय बनत है, किंतु हरिभक्तनकी परिचर्यामैं जे रत हैं, तिनकी सिद्धि-मैं संशय नहीं । केवल हरिचरणारविंदकी सेवाकरकै मन निर्मल होत नहीं, किंतु ताके भक्तनके अर्चनतें निर्मल होत है" इत्यादि शांडल्यस्मृतिमैं कह्यो है । अथ "अमा-[5] नित्व, अदंभित्व, अहिंसा, क्षांति, आर्जव, आचार्योपासन,

---

१ सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत सङ्गमम् । सद्भिर्विवादं मैत्रीञ्च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥ २ मम मद्भक्तभक्तेषु प्रीतिरभ्यधिका भवेत् । तस्मान्मद्भक्तभक्ताश्च पूजनीया विशेषतः । ३ तस्माद्विष्णुप्रसादाय वैष्णवान् परितोषयेत् । प्रसादसुमुखो विष्णुस्तेनैव स्यान्न संशयः ॥ ४ सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम् । न संशयस्तु तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम् । केवलं भगवत्पादसेवया निर्मलं मनः न जायते तथा नित्यतद्भक्तचरणार्चनात् ॥ ५ अमा—

शौच, धर्ममैं स्थिरता, मनको निग्रह, इन्द्रियके विषय शब्दादिकमैं वैराग्य, अहंकारको त्याग, जन्म ओर मरण, ओर जरा, व्याधि, दुःखनके दोषविचार, पुत्र स्त्री गृहादिकमें आसक्तिको त्याग और अभिनिवेशको त्याग, मोमैं अनन्ययोगकरकै अव्यभिचारिणी भक्ति, एकांतदेशमें वास, प्राणिसंघर्षमैं रतित्याग, अध्यात्मज्ञानमैं नित्य निष्ठा, तत्त्वज्ञानकरकै अर्थको विचार, याकौं ज्ञान कहत हैं। यातें जो अन्यथा सो अज्ञान है।" एते श्रीमुखोक्त धर्म सब साधनकें सहकारी हैं, यातें अवश्य मुमुक्षुकौं अंगीकार करना ॥ ९ ॥

सोरठा-साधन कह्यो विचार, श्रुतिस्मृति विस्तारसौं ।
करै सो उतरे पार, विन करणे तरणो नहीं ॥ १ ॥

इति श्रीश्रुतिसिद्धांतरत्नाकरे वृन्दावनवास्तव्य पं० श्रीकिशोरदासकृत श्रुत्यादिटिप्पणीनिवेशनादिना परिवर्द्धिते साधनपरिच्छेदस्तृतीयः समाप्तः ॥ ३ ॥

——नित्वमदम्भित्वमहिंसाक्षान्तिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् । असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु । मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि । अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अथ चतुर्थपरिच्छेदः ।

दोहा-श्रीमुकुंदको भाव जो, सब साधन फल एह ॥
बहुर न आवै जगत्मैं, जिन पायो हरि गेह ॥ १ ॥

पूर्व परिच्छेदमैं साधनकदंब संक्षेपसों वर्णन किये ।
अब या परिच्छिेदमैं पूर्व कहे सब शास्त्रार्थस्मरण करावतसन्तैं अल्पबुद्धिके उपकारके अर्थ श्रीभगवान् ग्रन्थकार आद्याचार्य फल वर्णन करत हैं ।

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च
कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम् ।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्ते-
र्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः ॥ १० ॥

ये पञ्च अर्थ सज्जनकों सदा जाननेयोग्य हैं। तामैं उपास्य श्रीभगवान् पुरुषोत्तमको रूप स्वाभाविक अचिंत्य अनन्त असंख्येय स्वरूपवत् नित्य सार्वज्ञ्यादि वात्सल्य कारुण्य सौशील्यादि कल्याणगुणको आश्रयता सर्वशरण्यत्व जगज्जन्मादिकारणत्व शास्त्रयोनित्व मोक्षप्रदातृत्व मुक्तप्राप्य सर्वोपास्य सर्वनियंता अतिशय साम्यशून्यैश्वर्य अनन्त निर्दोष निरतिशय मार्दव यौवन सौंदर्यादिक दिव्यगुणको आश्रय योगिनके ध्यानको विषय दिव्यमंगलविग्रहवान् यह उपास्यको रूप जानने योग्य है ॥ १ ॥ अथ श्रीभगवान्को उपासक जीवात्मा-

को समूह है। ताको स्वरूप देह इन्द्रिय मन प्राण बुद्धि- तें विलक्षण ज्ञानस्वरूप नित्यज्ञानाश्रय भगवत्परतंत्र- स्वरूपस्थितिप्रवृत्ति प्रतिदेहभिन्न अणुपरिमाण भगव- त्प्रपत्त्यादि॥ २॥ भक्त्यादिक साधन। तामें फलरूपा भक्ति रसको अर्थ है "मनकी अविच्छिन्न गति हरिप्रेममें बूडी फलसंकल्पशून्य सो प्रेमभक्ति है । सोई[1] श्रीविष्णुको वश करनेवाली है" यह पञ्चरात्रमें कह्यो है। अथवा भक्तिकरकै जाको अनुभव होय सो भक्तिरस भगवान्को साक्षात्कार है, "भक्ति याकों साक्षात् करावत है, भक्तिवश श्रीपुरुषोत्तम[2] है, तातें भक्ति उत्तम साधन है" यह श्रुति प्रमाण है । "हे अर्जुन ! अनन्य[3]- भक्ति करकै मैं जानवेकों देखनेकों प्रवेशहोनेकों योग्य हूं" यह श्रीमुखसे कह्यो है। भक्तिशब्द कर्मज्ञानादिकको भी उपलक्षण है।यातें भगवद्भावापत्ति मोक्षको क्रमभी कह्यो। तहां प्रथम उत्पत्ति समयमें भगवान्के कृपाकटाक्षाव- लोकनतें जन्मतही सात्त्विक और मुमुक्षु होत है। सो नारायणीयाख्यानमें कह्यो है । "जन्मसमय जाकों श्रीमधुसूदन देखत हैं, सो सात्त्विक जानिये, सो मोक्षके[4]

---

१ मनोगतिरविच्छिन्ना हरिप्रेमपरिप्लुता । अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुवशंकरी । २भक्तिरेनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी ॥ ३ भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ! ॥ ४ जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः । सात्त्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः । पश्यत्येनं जायमानं ब्रह्मा रुद्रोऽथवा पुनः । रजसा तमसा चैव मानसं समभिप्लुतम् ॥

अर्थ चिंता करत है। जन्मसमय जो ब्रह्मा अथवा रुद्र देखत हैं तो ताको मन राजस तामससों व्याप्त होतहै" इति। पूर्वोक्त सात्त्विक मुमुक्षाके अनंतर साधनमैं यत्न करत है, ताके अनंतर कर्मज्ञानादिक साधनतें आराधित श्रीपुरुषोत्तम तापै प्रसन्न होत हैं, अरु परभक्ति वा ज्ञानादि व्याजकरकै श्रीभगवान् अपनो साक्षात्कार करावत हैं, ताके अनंतर भगवद्भावकों प्राप्त होत है, इति। "ज्ञानी भक्त भगवान्कों प्रियतम है सो ताके प्रसादकरकै मुक्तिभागी होत है" सो श्रीमुख गायो है। "तिन चारौं भक्तनमैं नित्ययुक्त ज्ञानी[1] अधिक है, ज्ञानीको मैं अतिशय प्रिय हूं, ज्ञानी मोकों प्रिय है। ज्ञानी मेरो आत्मा है, सर्वारंभको त्यागी भक्त मोकों प्रिय है, शुभ अशुभको परित्यागी भक्तिमान् पुरुष मेरो प्रिय है"इत्यादि।"जाकी देवमें परा[2] भक्ति है" इत्यादि श्रुति है।"भक्तिमान् भगवान्के प्रसादको पात्र है। हे प्रह्लाद! अव्यभिचारिणी भक्तिकर्त्ता तोपै मैं प्रसन्न[3] हूं। हे अर्जुन! ताहीके शरण

१ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः। ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः। शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥ २ यस्य देवे परा भक्तिः॥ ३ कुर्वतस्ते प्रसन्नोऽहं भक्तिमव्यभिचारिणीम्। तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत!। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्। सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।—

प्राप्त हो सर्वभावकरकै,ताके प्रसादतें एकरस अव्यय पद पावैगो । सर्वकर्म करतसंतें मेरे आश्रय, मेरे प्रसादतें शाश्वत स्थानकों पावैगो । जाकों श्रीपरमेश्वर अपणावत है, ताही करके लभ्य है, ता परमात्माके साक्षात्कारतें हृदयग्रंथि खुलत हैं, सब संशय नाश होत हैं, या जीवके कर्म क्षीण होत हैं।जा समयमें द्रष्टा(पुरुष)रुक्मवर्ण जगत्कर्त्ता पुरुष ब्रह्मा ओर वेदको कारण ईश्वरकों साक्षात् देखत है, ताही समय सब पुण्य पापकों त्यागकरकै निरंजन होयके परम साम्यकों प्राप्त होत हैं" इत्यादि श्रुतिस्मृति यामैं प्रमाण हैं। सो श्रीश्रीनिवासाचार्यजीन पारिजातसौरभके भाष्यमें विस्तारतें कह्यो है। याते यहां विस्तार नहीं कियो है ॥ ३ ॥ अथ विरोधीको रूप वर्णन करत हैं । श्रीरमाकांतकी प्राप्तिके विरोधी दो प्रकारके हैं, सामान्य और विशेष । तामैं विशेष कहत हैं । तामैं स्वस्वरूपज्ञानके विरोधी जीवस्वरूपके अज्ञानद्वारा भगवत्प्राप्तिके प्रतिबन्धक हैं। और आत्माके अन्यथाज्ञान दृढताके कारण हैं। देह इन्द्रिय मन बुद्धि अचेतन वस्तुमैं आत्मभावको निश्चय।श्रीहरि ओर गुरुतें अन्यकी परतंत्रताको अभिमान । आपकों ईश्वरके दास्यभावमैं

—क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे । यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥

संदेह। श्रुति स्मृत्यादिरूप भगवान्‌की आज्ञाको अनादरकरके त्याग। अन्य देवार्चन वंदन नमस्कारादिक। असत् शास्त्रमें अभिलाषा। आपमें स्वतंत्रताकी भावना, अहंकार ममकारकी दृढ भावना, इत्यादि।“जे अन्धतमकरकै व्यापक असूर्यांके लोक हैं, तिन लोकनमें ते पुरुष मृत्युके उत्तर जात हैं, जे आत्महत्यारे हैं। मनुष्यजन्ममैं जो तत्त्व न जान्यो तो बडो नाश भयो” इत्यादिक श्रुति हैं। “जो आत्माकों और प्रकार होत संते और प्रकार जानत हैं तिन आत्माके अपहारी चोरनै कोनसों पाप न कर्‍यो” इति स्मृति है। १। श्रीहरि कृष्णमें देवांतरकी तुल्य भावना। ब्रह्मादि देवतावर्गमें परतत्त्वबुद्धि। श्रीभगवत्के अवतारनमें मनुष्य पशु आदि बुद्धि। भगवत्के अर्चाविग्रह श्रीशालिग्रामादिमें लोह पाषाण अनीश्वर अचेतनादि बुद्धि। भगवत्के मंत्रादिकमें शब्दसामान्यबुद्धि। भगवान्‌की कथामें लौकिकाख्यानभावना। अनन्त निर्दोष स्वाभाविक अचिंत्य नित्य कल्याणगुणसागर श्रीवासुदेव परब्रह्ममें निर्गुणत्व और मायिक गुणकी कल्पना इत्यादिक भगवत्स्वरूपतिरोधानकरके ताकी प्राप्तिके प्रतिबन्धक हैं। “ जो

---

१ असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः। न चेदवेदीन्महती विनष्टिः॥ २ योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते। किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा॥

अपनो देवता श्रीवासुदेव विश्वात्माको अतिक्रमण करकै इतर देवताकों यजन करत हैं, सो च्युत होत हैं, ताको परदेवताकी प्राप्ति नहीं होत है, सो वडो पापी है तातैं ताही एक आत्माकों जानो ओर विषयक वचन त्याग करो" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। प्रजापतिस्मृतिमैं " सवके हृदयमैं विराजमान ईश्वर श्रीनारायण परम देव है, ताकों छोडकै जो अन्य देवताकों परवुद्धिकरके पूजन करत है, सो पापभागी है"। भारतमैं सप्तऋषिसंवादमैं "ब्रह्मण्यदेव ईश देवदेव जनार्दन त्रैलोक्यके पालन संहार और सृष्टिके कारण निरंजन सर्वके धाता सवके विधाता सवके आधार जगत्के गुरु श्रीविष्णुको त्यागकरकै सो अभागी अन्यदेवताको भजन करै जोंनै विष चुरायो हो" इत्यादि। ब्रह्मांड ओर कूर्मपुराणमैं "जे मूढ अज्ञानकरकै मोहित है सो इतर देवताकों परतत्त्वकरकै कहत हैं अरु नारायण जगन्नाथतैं अधिक मानत हैं।स्मृतिमैं तिनको पाखंडी कहे हैं। तातैं अन्यदेवताकों परत्वकरकै चिंतनकरता

---

१ यो वै स्वां देवतामतियजति परस्वायै देवतायै च्यवते न परां प्राप्नोति पापीयान् भवति। तमेवैकं विजानथ, आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ॥ २ नारायणं परित्यज्य हृदिस्थं प्रभुमीश्वरम्। योऽन्यमर्चयते देवं परबुद्ध्या स पापभाक्॥ ३ विष्णुं ब्रह्मण्यदेवेशं देवदेवं जनार्दनम्। त्रैलोक्यस्थितिसंहारसृष्टिहेतुं निरञ्जनम्। आधातारं विधातारं सन्धातारं जगद्गुरुम्। विहाय स भजत्यन्यं विषस्तैन्यं करोति यः॥

जड अरु पाखण्डी जानिये। सो सब कर्ममैं निन्दित हैं। जो अधम श्रीनारायणके समान अन्यदेवको मानत है सो ता अपमानकरकै कबहूं नरकनतैं छूटत नहीं। जे जन श्रीपुरुषोत्तमको सामान्यभावकरकै मानत है, ते पाषण्डी नरकके योग्य हैं, मनुष्यनमैं अधम हैं" इत्यादि। "मेरे मनुष्यावतारकी मूढ अवज्ञा करत हैं, मेरे अविनाशी सर्वोत्तमभावकों नहीं जानते हैं। तिनकी आशा मोघ हैं ओर कर्म ओर ज्ञान सब मोघ हैं, ते विकलचित्त हैं, राक्षसी आसुरी मोहनी प्रकृतिके आश्रित हैं" इति। "जो मनुष्य विष्णुकी प्रतिमामैं लोहबुद्धि, जो गुरुमैं मनुष्यबुद्धि करत हैं, ते दोऊ नरकके अधिकारी हैं" इत्यादि स्मृति प्रमाण है। "जाकी समान ओर अधिक दीखता नहीं है ताकी नानाविध शक्ति सुनत हैं, स्वाभाविकी ज्ञानबलसहित क्रिया। जो सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्ति है, अनन्त कल्याणगुणाश्रय है" इत्यादि शास्त्र यामैं प्रमाण हैं। २। अपने दोषकी अधिकता विचार

---

१ अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्। मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥ २ यो विष्णोः प्रतिमाकारे लोहबुद्धिं करोति वा। यो गुरौ मानुषं भावमुभौ नरकपातिनौ॥ ३ न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। यः सर्वज्ञः सर्ववित्। अनन्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ॥

करकै श्रीहरिकी शरणागतिमैं लघुताभाव अर्थात् प्रपत्ति-करकै मेरे पापको नाश न होयगो, क्योंकि असंख्य हैं इत्यादि । प्रपत्तिके विषय श्रीभगवान्सैं विश्वासको अभाव । साधनांतरमैं निष्ठा । मंत्रांतरको अंगीकार । श्रीहरिके जपपूजादिकतें कामांतरकी अभिलाषा । भगवत्की आज्ञापालनरूप स्वधर्माचार लक्षण परि-चर्यामैं अपनें पुरुषार्थसाधनकी भावना । श्रीभगवद्रूप वहिर्यामी श्रीगुरुमैं मनुष्य वुद्धि, और तामैं गुरुभावकी न्यूनता,इत्यादिक उपायकी हानिद्वारा श्रीभगवत् प्राप्तिके प्रतिवन्धक हैं, उपायनाशके कारण हैं । ये प्रतिवन्धक कृतघ्नताके कारण हैं क्योंकि सव साधन श्रीगुरुके उप-देशतें होत हैं । गुरुकी अवज्ञातें गुरुभक्तिको नाश भयो और गुरुभक्तिनाशकरके सव साधन नाश होत हैं।"जाकी देवतामैं परा भक्ति हो, जैसी देवतामैं तैसी श्रीगुरुमैं हो ताहीको वेदांतमैं कहे अर्थ प्रकाशै हैं, औरकों नहीं" यह श्रुति प्रमाण है । तातें गुरुमें अन्यथाभाव कदा-चित् करना नहीं । "गुरुही परब्रह्म है, गुरुही परा गति है, सो विद्या उपजावत है सो श्रेष्ठजन्म है, तातें गुरुको द्रोह कवहूं करणों नहीं"यह श्रुति है ।"एकाक्षरको प्रदाता

---

१ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ २ गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः । स हि विद्यां जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्म तस्मै न द्रुह्येत्कदाचन ॥

आचार्यकी जो अवज्ञा करत है,सो शतयोनि कुकुरकी भोगतहै,ताके अनन्तर चांडालकी योनि पावतहै।जो विष्णुकी प्रतिमामैं धातुबुद्धि करत है और गुरुमैं मनुष्यबुद्धि करत है ते दोऊ नरकके गामी हैं" इत्यादि स्मृति है। । ३ । अथ धर्मादिवर्गमैं पुरुषार्थबुद्धिकरकै ताके प्राप्तिकी इच्छा । भगवत्पारिचर्यादि क्रियामैं अपने स्वतंत्रताकरकै अनुष्ठानकी भावना । यथेष्टाचारकरकै शास्त्रविरुद्ध प्रवृत्ति, इत्यादि फलविरोधकरकै भगवत् प्राप्तिके प्रतिबन्धक हैं ॥ "अन्न पान धन वस्त्र आयु ऐश्वर्यादि हरिके पूजक आपत्तिहूमैं हरितें मांगै नहीं । तिनको प्रतिदिन जो मांगत है तो भी मैं प्रसन्न होकै देत नहींहूं, और मांगे विना प्रसन्न होयकै मैं देत हूं" यह भगवद्वचन है । "भक्तनके मांगतहू भगवान् तिनको अहित करवावै नहीं है। जैसे वालक अज्ञानी जो अग्निमैं परै तो माता क्या निवारण नहीं करती ? श्रीहरिके चरणारविंदमैं भक्ति ओर ज्ञानतें और कदाचित् मांगे नहीं, और जो मांगे तो

---

१ एकाक्षरप्रदातारमाचार्यं योऽवमन्यते । शुनो योनिशतं प्राप्य चाण्डालेषु प्रजायते ॥ २ अन्नं पानं धनं वस्त्रमायुरैश्वर्यमास्पदम् । आपद्यपि न याचेत पूजकः पुरुषोत्तमम् । नाप्रसन्नो ददाम्येतद्याचितोऽपि दिने दिने । अयाचितोऽपि तत्सर्वं प्रसन्नो विदधाम्यहम् ॥ ३ याचितोऽपि सदा भक्तैर्नाहितं कारयेद्धरिः । बालमग्नौ पतन्तं तु माता किं न निवारयेत् ॥

फलतें भ्रष्ट होत है। देवगणको पूज्य हरिको प्रेर्यो मैं यमराज लोकनके हित अहितके निर्णय और शासनमैं वर्त्तत हूं। हरिगुरुके वशवर्त्ती मैं हूं मेरे हू नियमनकर्त्ता श्रीविष्णु है, तातें मैं स्वतंत्र नहीं। वेदमैं कहे धर्मको त्यागकरकै जो अन्यका आचारण करत है, हे दैत्येंद्र! बलि! ताको सब पुण्य मेरे प्रसादतें तेरो भाग होयगो। जो शास्त्रविधिको त्यागकरकै यथेष्टाचार: वर्त्तत है, सो सिद्धि और सुख तथा परमगति नहीं पावैहै। तातें हे अर्जुन! विधि और निषेधमैं तोकों शास्त्रही प्रमाण है। शास्त्रने विधानकरकै जो कह्यो सो जानकैं तू कर्म करवेकों योग्य है।" इत्यादि शास्त्र प्रमाण हैं॥ ४॥ देहादिको बहुकालजीवनेकी इच्छा। श्रीभगवान् और भागवत जननको जाति कुलादिके अभिमानकरकै बुद्धिपूर्वक अवज्ञादि अपराधको आचरण, असाधुनको संग, ये तत्काल साक्षात् भगवत्प्राप्तिके प्रतिबंधिक हैं। और नरकप्राप्तिके कारण

---

१ तत्पादभक्तिज्ञानाभ्यां फलमन्यत्कदाचन। न याचेत् पुरुषो विष्णुं याचनान्नश्यति ध्रुवम्। अहममरगणार्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः। हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः। वेदोक्तं ये परित्यज्य धर्ममन्यं प्रकुर्वते। तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र! मत्प्रसादाद्भविष्यति। यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि॥

हैं, सो वडे यत्नकरकै वर्जनीय हैं। "मरणको अभिनन्दन न करै, जीवनको अनुमोदन न करै, कालमात्रकी प्रतीक्षा करै,जैसैं निर्वेशकी भृतक। पापकारी पुरुष मृत्युतें डरत हैं, जे कृतकृत्य हैं,ते प्रिय अतिथिकी नाईं प्रतीक्षा करत हैं"इत्यादि व्यासको वचन हैं। "मेरी जो असूया करै सो याको अधिकारी नहीं" यह भगवद्वचन है। हरिवंशमैं श्रीवामनजीने बालिसों कह्यो है, "मेरे द्वेषी ओर मेरे भक्तके द्वेषीको पुण्य, हे दैत्येंद्र! मेरी कथामैं जो उठभागै, ताको एकवर्षको सञ्चित पुण्य तेरो होयगो।" वनपर्वमैं शिष्यनसों दुर्वासाको वचन "राजर्षि युधिष्ठिरको हमनै वृथा अपराध कर्‌यो, हमकों पांडव तिरछी दृष्टिकरकैं मत जरावो। राजऋषि अंबरीषको प्रभाव देखकैं मैं हरिचरणाश्रय पुरुषतें निरन्तर डरतहूं। हे विप्र! पांडव महात्मा हैं, सब धर्मपरायण हैं, सदाचारी हैं, वासु-

---

१ नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्। कालमेव प्रतीक्षेत निर्वेशं भृतको यथा। प्रायशः पापकारित्वान्मृत्योरुद्विजते जनः। कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम्॥ २ न च मां योऽभ्यसूयति॥ ३ पुण्यं मद्द्वेषिणां यच्च मद्भक्तद्वेषिणां तथा। कथासु मम दैत्येश! कथ्यमानासु तत्र वै। अशृण्वन् यो नरो गच्छेत्तस्य संवत्सरार्जितम्। यत्नेन महता तात! तत्पुण्यं ते भविष्यति॥ ४वृथा पापेन राजर्षेरपराधः कृतो महान्। मास्मानक्षुधान् दृष्ट्वा पाण्डवाः क्षुरचक्षुपा। स्मृत्वानुभावं राजर्षेरम्बरीषस्य धीमतः। बिभेमि सुतरां विप्रा हरिपादाश्रयाज्जनात्। पाण्डवाश्च महात्मानः सर्वे धर्मपरायणाः। सदाचाररता नित्यं वासुदेवपरायणाः। क्रुद्धास्ते निर्दहेयुर्वै तूलराशिमिवानलः। तत एतानदृष्ट्वैव शिष्याः शीघ्रं पलायत॥

देवके आश्रय हैं, क्रोधकरकै तुमकों जरावेंगे, जैसें तूलराशिकों अग्नि, तातें तिनकों नहीं देखकैं शीघ्र भागो" इति। विष्णुपुराणमैं प्रह्लादने भगवान्सों कह्यौ "मेरो पिता तुम्हरी स्तुतिकरत मोसो वैरभाव करत भयो, तातें ताको पाप आप क्षमा करो तुम्हारे भक्त द्वेषतें जो ताकों पाप भयो हे प्रभो! ता पापतें मेरो पिता छूटै" इति। "विवेकी अज्ञ वहिर्मुखसों बोलै नहीं, तिनके संग भोजन न करै, तिनके गृहमैं वास न करै" यह बह्वृचाकों मन्त्र है। कात्यायनसंहितामैं कह्यो है "ज्वालाके पञ्जरमैं बैठनो भलो हैं किन्तु भगवंतचिंतावहिर्मुखको संबंध भलो नहीं" इति॥ विष्णुरहस्यको वचनं "सर्प, सिंह, जल, जन्तुके आलिंगनकों मैं श्रेष्ठ मानत हूं, किन्तु शल्ययुक्त नानादेवोपासकनको संग भलो नहीं" इति। अन्यत्रहू वचन है, "शैव और पाशुपतनको लोकायतिक नास्तिकनको अकर्मनिष्ठ ब्राह्मण और शूद्रको स्पर्शकरकै वस्त्रसहित स्नान करै" अथ शांडिल्यस्मृति "मूढ पापमैं रत

१ मयि दोषाऽनुबन्धोऽभूत्संस्तुतावुद्यते तव। मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य विनश्यतु। त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्सम्भवं च यत्। त्वत्प्रसादात्प्रभो! सर्वं तेन मुच्येत मत्पिता॥ २ नेदंविद् अनिदंविदान् समुद्दिशेन्न सह भुञ्जीत नावसथमाविश्यादिति॥ ३ वरं हुतवहज्वालापञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः। न शौरिचिन्ताविमुखजनसंवासवैशसम्॥ ४ आलिङ्गनं वरं मन्ये व्यालव्याघ्रजलौकसाम्। न सङ्गः शल्ययुक्तानां नानादेवोपसेविनाम्॥ ५ शैवान्पाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान्। अकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत्॥

क्रूर[1]स्वभाव सत्शास्त्रतें बहिर्मुखनके सहित मेरो भक्त संबन्ध न करै क्योंकि तिनके संगतें नाश होतहैं"। अथ पितृगीत "ऐसो पुरुष हमारे[2] वंशमैं मत जन्मो और जो जन्म्यो तो ताही समय नाश होजाऊ कि जन्मतें मरणपर्यंत जाको उपास्यदेव वासुदेव नहीं" इति। अथ विष्णुपुराण "वृथा जे जटाभारकों वहत हैं, वृथा जे मूंड मुंडावत[3] हैं, वे पापके भोक्ता, अखिलशौचबाहिर्भूत, जलदान पितृपिंडक्रियासे हीन हैं, तिनके संभाषणहूंतें प्राणी नरककों जात हैं। पाषंडी, विकर्ममें निष्ठ, मार्जारवृत्ति, शठ, कुतर्कवादी, बकवृत्ति, तिनको वचन करकैहू सन्मान न करै। धर्मध्वजी, सदा लोभी, छली, लोकदंभी, हिंसक और वंचक ताकों मार्जारवृत्ति कहत हैं। अधोदृष्टि, स्वार्थपरायण, शठ, मिथ्या विनयकर्त्ता द्विजकों बकवृत्ति कहिये। मूर्ख, पंडितमानी, अधर्ममें

---

१ मूढैः पापरतैः क्रूरैः सदागमपराङ्मुखैः। सम्बन्धं नाचरेद्भक्तो नश्यते तैस्तु संगमात्॥ २ मा जनिष्ट स नो वंशे जातो वा प्राग्विनश्यताम्। आजन्ममरणं यस्य वासुदेवो न दैवतम्॥ ३ पुंसां जरामरणमौढ्यवतां वृथैव मोघाशिनामखिलशौचबहिष्कृतानाम्। तोयप्रदानपितृपिण्डनिराकृतानां सम्भाषणादपि नरा नरकं प्रयान्ति। पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्। हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्। धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदाम्भिकः। वैडालवृत्तिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वातिवञ्चकः। अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः। शठो मिथ्याविनीतश्च बकवृत्तिचरो द्विजः। मूर्खाश्च पंडितंमन्या अधर्मा धार्मिका इव। धर्मयुक्तान्प्रबाधन्ते साधूनां लिङ्गमाश्रिताः॥

धर्मबुद्धि, साधुको लिंग धारणकरकै धर्मात्माकी बाधा करत हैं" यह शांडिल्यको वचन है। ऐसैं और शास्त्र भी यामैं प्रमाण जानना ॥ ५ ॥ अथ सामान्यविरोधी कहत हैं। शास्त्रमर्यादाको उल्लंघन "श्रुति स्मृति मेरी आज्ञा है" इत्यादि पूर्व कह्यो है। आपकों उचित धर्मका त्याग। वर्णांतर उचित धर्मको आचार। "अपने धर्ममैं मरण श्रेष्ठ है परधर्म भयको दाता है" यह श्रीमुख गायो है। शास्त्रीय परके धर्मतें यह पूर्व बाहर है सो तामैं अधिकारी नहीं। यथा दानादि कर्मसैं दीक्षित पुरुष, यह स्मृति है। "हे अर्जुन! नियतकर्मको त्याग बनै नहीं, मोहतें जो त्याग करै सो त्यागको तामस कहत हैं। ऋग्यजुः सामसंज्ञा वेदत्रयी, यह वर्णाश्रमको देहावरण वस्त्र है। ताकों जो मोहवशतें त्याग करै, सो नग्न और पातकी है। ब्रह्मचारी गृहस्थ

---

१ श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे इति ॥ २ स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। ३ नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते। मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः। ऋग्यजुःसामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज!। एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी स्मृतः। ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथाऽऽश्रमी। परिव्राट् च चतुर्थोऽत्र पञ्चमो नोपपद्यते। सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्। नास्तिक्यपरमाश्चैव केचिद्धर्मविलोपकाः। भविष्यन्ति नरा मूढा मन्दाः पण्डितमानिनः। वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्। विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोषकारणम्। वेदोक्तं ये परित्यज्य धर्ममन्यं प्रकुर्वते। तत्सर्वं तत्र दैत्येन्द्र! मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥

वानस्थ संन्यासी ये चार आश्रम हैं, पंचमाश्रम कोई शास्त्रमैं कह्यो नहीं है। सन्ध्याहीन पुरुष सदा अशुचि है, सर्व कर्मको अधिकारी नहीं है। जो जो कर्म करै सो ताको निष्फल है। नास्तिक नर धर्मके लोपकर्त्ता मूढ मंदबुद्धि पण्डितमानी कलियुगमैं बहुत होवैंगे। वर्णाश्रमाचारवान् पुरुष विष्णुको आराधन करै और कोऊ मार्ग विष्णुके तोषको नहीं । वेदोक्त त्यागकरके जो अन्यकर्म करत है ताको सर्वकर्म हे राजा बलि ! तेरो होयगो, मेरे प्रसादतें"इत्यादि अन्वयव्यतिरेक वचन यामैं प्रमाण हैं । और तैसैं कृतघ्नता मनुने कही है । "गोहंता और सुरापानकर्त्ता और चोर और व्रतत्यागी तिन सबको प्रायश्चित शास्त्रमैं[1] कह्यो है, किंतु कृतघ्नीको प्रायश्चित्त नहीं । मित्रनके सत्कारकर्त्ता और कार्यकर्त्ता जे नहीं हैं तिनके मृतकशरीरको मांसभक्षी गृध्रादिक कबहू खात नहीं" इति । मनुष्यदेह पायकै शूकरादिककी तुल्य विषयमैं वृथा नाश करणों, या लोकमें मूक अथवा बहरो मानुषदेह पायके जो संसारतैं निकसत

---

१ गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः । सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये । तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते । मानुष्यं लब्ध्वा तस्य निरर्थकं शूकरादिवन्नाशनम् । मानुष्यं प्राप्य लोकेऽस्मिन्मूको वा बधिरोऽपि वा । नापक्रामति संसारात् स खलु ब्रह्महा भवेत् ॥

नहीं सो ब्रह्महंता होत है" । वाराहपुराणको वचन "या लोकमैं पंचभौतिक मानुष देहकों पायकै जे मेरी शरण होत नहीं तातें अधिक ओर दुःख कोण है"। अथ नरसिंहपुराण "अनेक सुकृततें शुभ मनुष्यदेह पायकै जो वृथा इन्द्रियनके विषयमैं खोवत हैं और मोक्षमार्गको यत्न करत नहीं सो महामूढ है, जैसैं चन्दनकाष्ठकों भस्मके अर्थ जरावनो" इति ॥ अथ स्ववीर्यविक्रय सो सनत्सुजातने कह्यो है "जैसैं कुक्कुर अपनी वृद्धिके अर्थ अपनो वांत खात है तैसैं जे अपने वीर्यकों वेचत हैं ते अपनो वांत खात हैं" इति । सो वीर्यविक्रय दो प्रकार हैं, वाह्य और आभ्यंतर । तामैं वाह्य परस्त्रीगमनादि । "कृष्णमृगचर्मको ग्रहणकर्त्ता ओर वीर्यको वेचनहारो ओर गजच्छायानुभोक्ता पुनः मनुष्यदेहको पावत नहीं" । इति वचन प्रमाण है ॥ द्वितीय विद्यागुणको वेचनो।"पण्डितनने धनकी कृपणताकरकै वेश्या स्त्रीकी तुल्य अपनेको शृङ्गारकरकै परायेके अर्थ वेचत हैं".

---

१ लब्ध्वाऽत्र मानुषं देहं पञ्चभूतसमन्वितम् । मामेव न प्रपद्यन्ते ततो दुःखतरं नु किम् ॥ २ शुभमिदमुपलभ्य मानुषत्वं सुकृतशतेन वृथेन्द्रियार्थहेतोः । रचयति कुरुते न मोक्षमार्गं स दहति चन्दनमाशु भस्महेतोः ॥ ३ यथा स्ववान्तमश्नाति श्वा वै नित्यं स्वभूतये । एवं ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपसेचनात् । ४ कृष्णाजिनपरिग्राही रेतसश्चैव विक्रयी गजच्छायानुभोक्ता च न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ ५ पण्डितैरर्थकार्पण्यात् पण्यस्त्रीभिरिव स्वयम् । आत्मा संस्कृत्य संस्कृत्य परोपकरणीकृतः ॥

इत्यादि शास्त्र प्रमाण है। विद्याके बलकरकै जीतवेकी इच्छासों चरचामैं ब्राह्मणादिको अपमान। "वादकरकै जो ब्राह्मणकों जीतकै हर्षकों पावै है सो श्मसानको वृक्ष होत है, कंक ओर गृध्र तामैं वास करत हैं। गुरुनकों हुंकारकै जो वोलत है अरु ब्राह्मणकों जो वादमैं जीतै है सो निर्जनवनमैं ब्रह्मराक्षस होत है।" भगवत्के आराधनतें पूर्व भक्षणपानादिक। "जो मोहतें अथवा आलस्यतें देव अर्चन नहीं करकै भोजन करत हैं, सो अवश्य नरकमैं जात है, और सूकरको जन्म पावत है" इति। वैराग्यहीन संन्यासादि विधि विना मातृपित्रादिको त्याग। "माता पिता ओर पुत्र अरु तरुणी भार्या ओर शरणागत इनको जो त्यागकरै, सो ब्रह्महंता है। विद्याचोर, गुरुद्रोही, वेद ईश्वरको दूषक, ये बडे पापी हैं। तत्काल दण्डके पात्र हैं" यह श्रुतिमैं कह्यो है। "परद्रोहको निरन्तर ध्यान मनकरकै परको अनिष्टचिंतन अन्यथा अभिनिवेश यह तीन प्रकारको मानस

---

१ वादेन ब्राह्मणं जित्वा हृष्टो भवति यो द्विजः। श्मशाने पादपः स स्याद् गृध्रकङ्कनिषेवितः। गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। अरण्ये निर्जले स्थाने स भवेद् ब्रह्मराक्षसः॥ २ यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम्। भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरेष्वभिजायते॥ ३ पितरं मातरं वाऽपि तथा दत्ताभयं सुतम्। त्यजेच्च तरुणीं भार्यां तं विद्याद्ब्रह्मघातकम्। विद्याचोरो गुरुद्रोही वेदेश्वरविदूषकः। त एते बहुपाप्मानः सद्यो दण्डया इति श्रुतिः॥ ४ परद्रोहेष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्। वितथाऽभिनिवेशश्च त्रिविधं मानसं स्मृतम्।

पाप है। कठोरता[1] ओर अनृतभाषण ओर चुगली-करणो ओर वृथा आलाप ये चतुर्विध वाचक पाप हैं। निंदित दानको ग्रहण, विधिहीन हिंसा, परदारागमन यह त्रिविध शारीरक पाप हैं" इत्यादि स्मृति इहां अनुसंधान करणा॥ताको विस्तार प्रपत्तिचिंतामणिमैं कीनो है। ओर आसुरी संपत् सो गीतामैं कही है"या लोकमैं भूतनके दो सर्ग हैं, एक देव एक आसुर। तामैं देवसर्ग विस्तारसों कह्यो, हे पार्थ! आसुर सर्ग मोतें सुन । असुरजन प्रवृत्ति ओर निवृत्तिकों नहीं जानत हैं, तिनमैं शौच ओर आचार ओर सांच नहीं, वे असत्य ओर निराधार ओर निरीश्वर जगत्को कहत हैं, और यह जगत् स्त्रीपुरुषके संयोगतें भयो है, कामहीं ताको कारण है, और कोई कारण नहीं। ऐसी दृष्टिको आश्रय करकै नष्ट जिनको चित्त,तुच्छ जिनकी बुद्धि,घोर अभिचार जिनको कर्म, जगत्के नाशकर्त्ता, सबके अहि-

---

१ पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः।अनिबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्। अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ २ द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च । दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ प्रवृत्तिंच । निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् । अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहेतुकम् ॥ एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः । प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भ-

तकारी, दुष्पूर कामको संकल्पकरकै दंभ मान मदकरकै युक्त, मोहवशतें दुष्ट आग्रह, कोप करकै अपवित्र जिनको व्रत ऐसे वे इनमें प्रवृत्त होत हैं। अप्रमेय प्रलयान्त चिंताके आश्रित कामभोगही पुरुषार्थकरकै अंगीकार करत हैं, यातें अधिक पुरुषार्थ नहीं, यह जिनको निश्चय है, मनोरथके अनन्त पाशसों बन्धे हैं। कामभोगसिद्धिके अर्थ अन्यायकरकै द्रव्यसञ्चय करत हैं। कामक्रोधपरायण, यह मनोरथ मैं पायो, यह मनोरथ मैं पाऊंगो। इतनो मेरे धन विद्यमान है, इतनो धन और मेरे होयगो। यह शत्रु मैं मार्यो और शत्रुकों मारूंगो, मैं ईश्वर, बडो भोगी, मैं सिद्ध, मैं बलवान्, मैं सुखी, मैं धनवान्, मैं कुलीन, मेरे तुल्य और कौण है, मैं यज्ञ करूंगो, दान देऊंगो, भिक्षुक मेरी श्लाघा करेंगे, मोकों बडो आनन्द होयगो, या प्रकारके मनोरथकर्ता वे अज्ञानकर मोहित हैं। अनेकभ्रांतिकरकै युक्त जिनको चित्त है, मोहजाल-

---

—मानमदान्विताः। मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः॥ चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः। कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥ आशापाशशतै-र्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः। ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥ इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्। इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥ असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि। ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥ आढ्यो-ऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान-विमोहिताः॥ अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः। प्रसक्ताः कामभोगेषु—

सों वन्धे हैं, सो कामभोगमैं अतिशय अभिनिवेशकरकै अशुचि नरकमैं परत हैं।अपनी आप वडाईके कर्त्ता, अनम्र, धन मान मदकरकै संयुक्त वे दंभकरकै विधि विना नाममात्र यज्ञ करत हैं। अहंकार, वल, अभिमान, कामक्रोधके आश्रित, मोकों अपने और परदेहमैं द्वेषकरत असूया करत हैं, ते द्वेषके कर्त्ता, क्रूरस्वभाव, तिनकों निरन्तर संसारमैं डारकैं आसुरी योनिमैं सदा भरमावतहूं । ते मूढ जन्म जन्ममैं आसुरी योनिमैं सदा भ्रमते हैं, मोकों नहीं प्राप्त होयकै अधमगतिकों जात हैं। नरकके द्वार कामक्रोध और लोभ तीन हैं, तातैं मुमुक्षु इन तीनोंको त्याग करै। हे कुंतीपुत्र ! इन तमके तीन द्वारतें छूट्यो जो पुरुष सो अपने कल्याणके साधन आचरण करत है,अरु तातैं परम गतिकों जात है" इति। अथ या (उक्त) अध्यायको तात्पर्य कहत हैं। "दैवी संपत् मोक्षको साधन है, आसुरी संपत् वंधनको हेतु है।" यह आदिमैं

—पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् । अहङ्कारं वलं दर्पं कामं क्रोधञ्च संश्रिताः । मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् । क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्यैव कौन्तेय ! ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् । एतैर्विमुक्तः कौन्तेय ! तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः । आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

प्रतिज्ञाकरकै दैवी संपत्‌को अनुवाद कर्‌यो, और आसुरी संपत्‌संपन्न असुरनको लक्षण कह्यो, "असुरजन प्रवृत्ति और निवृत्तिके मार्गको जानत नहीं" इत्यादि करकै। "और कामभोगके अर्थ अन्यायसों धनको संचय करत है" इत्यादिकरकै तिनकी प्रवृत्ति कही। "तिन अधम नर-नकों परमेश्वर मैं भ्रमावत हूं" याकरकै तिनको अधोगति नित्यसंसारभ्रमणरूप फल कहकै "तातें इन तीनको त्यागकरै" ये तीन आसुरी संपत्‌के मूल कारण हैं, यातें श्रीमुखसों ताको त्याग यामैं विधान कर्‌या है। तैसैंहीं उपसंहारमैं "इन तीनतें जो छूट्यो सो परम-गतिको जात है" याकरकै ताको व्यतिरेकद्वारा दृढ कर्‌यो। ताको त्याग श्रेयको उपाय है, तातें आसुरी संपत् अत्य-न्त श्रेयकी विरोधिनी है, सो मुमुक्षु याकों प्रयत्नकरकै त्याग करै। यह षोडशाध्यायको अभिप्राय है। याकरकै

१ अत्र च, "दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता" इति फलसहितं सम्पद्द्वयमुपक्रम्य, दैवीं सम्पदमनूद्यासुरीं सम्पदमभिजातानामासुराणां "प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः" इत्यादिना तेषां प्रवृत्तिं चोक्त्वा "तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्" इत्यादिना नित्यसंसृतिरूपाधोगतिं तत्फलं च विधाय "तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्" इति तत्त्रयमूलकत्वादासुरभावस्य तत्त्यागो विधीयते श्रीमुखेनैव। भूयश्च "एतैर्विमुक्तः कौन्तेय" इत्यनेन व्यतिरेकतया तदेव दृढीकृत्य तत्त्यागस्य श्रेयोऽर्थिनोऽधिकारित्वोपयोगिकत्वमुक्तं भवति। तस्मादत्यन्त-श्रेयोविरोधित्वाच्छ्रेयोऽर्थिभिर्मुमुक्षुभिः प्रयत्नेन त्याज्येति षोडशाध्यायस्याभिप्रायः। अनेनैव प्रातिकूल्यस्य वर्जनमिति प्रपत्तेरङ्गं व्याख्यातं भवति।

प्रतिकूलवर्जन इस पदकी व्याख्या कही, क्योंकि प्रति-कूलही विरोधी है ।अथ वैराग्य निरूपण करत हैं।वैराग्य दो विध है, सहेतुक तथा निर्हेतुक। तामैं अपने रागके विषय निरतिशयप्रिय पुत्र कलत्र वित्त ऐश्वर्यादि पदार्थके वियोगकरकै, अत्यन्त प्रतिकूल दुःख दारिद्र्यादिककी प्राप्तिकरकै जो त्याग ताकों सहेतुक कहत हैं ।सो अवि-वेकको त्याग है, अरु नाशकी शंकासहित है, मोक्षके उपायनमैं नहीं, क्योंकि विषयकी प्राप्तिमैं ताको नाश होत है । तथापि श्रीहरिकी निर्हेतुक कृपाकटाक्षतें सह-कृत भयो, तो वैराग्यके अनन्तर भगवत्के पूर्णकृपा-पात्र अनन्य गीतादिमें कहे लक्षणसंपन्न महाभागवत ज्ञानवैराग्यभूषणालंकृत भक्तिसुधासागरमैं निमग्नमन ऐसे भागवतको सत्संग भयो तो तिनकी कृपातें शास्त्र-मार्गमैं प्रवृत्त होत है, अरु ता मार्गकरकै भगवत्को भजन करत, एवं ताकी दृढता यत्नसों करत है । और दृढव्रतसों अनुष्ठान करत है, तो आनुकूल्य है, अन्यथा व्यभिचारीस्वभाव है। क्योंकि कुसंग पायकें भ्रष्ट होत है। अथ निर्हेतुक वैराग्य वर्णन । जन्मांतरसहस्रमैं जानै पुण्यपुञ्ज करे, ताकों मनुष्यजन्म होत है, सो श्रुति स्मृति ता जन्मकी वडाई करत है । क्योंकि मनुष्यजन्ममैं आत्मा विस्तारकरकै प्रत्यक्ष होत है।"सो

विज्ञानसंपन्नतम है, विशेष ज्ञातको कहतहै, विज्ञातको देखत है, प्रातः (कल) की वस्तु जानत है, लोकालोक जानत है, मर्त्यशरीरकरकै अमृतको चाहतहै । इतर पशुदेहनमैं जीवनको क्षुधा पिपासा मात्रको ज्ञान होत है, ओर वस्तुको ज्ञान नहीं, इति । पूर्व ये देवता चक्षुरादि अधिदैववर्ग श्रीपुरुषोत्तम सृजत भयो, ते महाअर्णवमैं पडे क्षुधा पिपासासों पीडित भये, यों परमेश्वरसों कहत भये । हमकों आयतन दीजिये, जामैं स्थित होयकैं हम अन्नभक्षण करैं, इति । तहां तिनके आगे भगवान् गौको शरीर दिखावत भये, ते बोले,हम याकरकैं पूर्णकाम नहीं है । फिर भगवान् अश्व ल्यावत भये, ते बोले, हम याकरकै पूर्ण नहीं । फिर भगवान् पुरुषशरीर ल्यावत भये, ते बोले, हम याकरके पूर्णकाम भये, पुरुषशरीर सुकृत है"इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं।"हे मैत्रेय! भरतखंडमैं जन्म सहस्रनके सहस्र पुण्यसंचयतैं कोई मनुष्यदेह

---

१ स हि विज्ञानेन सम्पन्नतमो विज्ञातं च वदति, विज्ञातं पश्यति, श्वस्तनं वेद, लोकालोकौ मर्त्येनामृतत्वमीप्सत्येव, सम्पन्नोऽथेतरेषां पशूनामशनायापिपासा एवाभिज्ञानमिति । ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि, यस्मिन्प्रतिष्ठिताऽन्नमदामेति । ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति । ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति । ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति । पुरुषो वाव सुकृतमिति ॥ २ अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ! । कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥ गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि-

पावते हैं, तहां देवतागान करत हैं। स्वर्ग अपवर्गकी प्राप्तिको कारण भरतखंडमैं जे जन्म पावत हैं ते धन्य हैं। जे देवयोनितैं मनुष्य होत हैं, तेऊ धन्य हैं, क्योंकि यहांतैं फलसंकल्पशून्यकर्म परमात्मा श्रीविष्णुमैं अर्पण-करकै निर्मल जन अनंत परमात्माके आलयको जात हैं" इति स्मृति प्रमाण है। "हजारों मनुष्यमैं कोई एक सिद्धिके अर्थ यत्न करत है" इत्यादि गीताप्रमाणतैं कोई विरला भगवत्के अनुग्रहको पात्र मनुष्य,सात्त्विक-बुद्धि,जन्महींतै विक्षेपासहिष्णुतातैं प्रवृत्तिमार्गमैं ग्लानि-वान्, श्रवणादिपरायण, सत्संगी, कथाश्रवणतैं कर्मफल दुःखरूप हैं। यह श्रवणकरकै वर्त्तमान शरीरमैं आपके तथा अन्यके प्रत्यक्ष देखकै कर्मवश जीवनको जन्म मरणादि अनुभवतैं जातकम्प,मुमुक्षुको भयो जो विराग सो निर्हेतुक (विराग) कहिये है। सो विवेकतै भयो है यातै सोई मोक्षमैं एकांत उपाय है, ऐसे विरागमैं व्यभिचार नहीं। तहां दुःख दो विध है। अवस्थाजन्य एक, तापरूप दूजो। तामैं अवस्थाजन्य दुःख कहत हैं। प्रथम पिताके मूत्रद्वारसैं निकसकै मातृयोनिमैं प्रवेश,ततः गर्भमैं दिनादिन परिणाम कलिल होत है। तातै बुद्बुदा, तातैं

—भागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥ कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते। अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तमालयं ते त्वमलाः प्रयान्ति॥ १ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये॥

पिंडीभाव, तातें कठिनता, तातें क्रमकरकैं अंगकी उत्पत्ति, तातें इंद्रियसंबंध, ताके अनंतर चेतनभावकी प्राप्ति, तातें कर्मद्वारा मातापिताके रजवीर्यकी विषमताकरकै स्त्री पुरुष नपुंसक भावको पावत है, अधोग्रीव, ऊर्द्धपाद, जरायुमैं बंध्यो, मलमूत्रके गृहमैं विष्ठा कृमिसहित वास करत है। उत्पत्तिसमय योनिके द्वारमैं प्राप्त होयकै यंत्रपीडाके समान दुःख भोगके जैसें व्रणाच्छिद्रतें कृमिको पतन होत है, तैसें मूर्च्छित होयकै पृथिवीमैं पडत है । ताके अनंतर बाल्य कौमारादि अवस्थाके दुःखनको भोग करत मृत्युको प्राप्त होतहै । तामैं जो धर्मात्मा होय तो स्वर्गको जातहै । तहां अपने पुण्यको फल सुख भोग, अप्सरासहित विहारादिक ओर पापफल असूया रागद्वेषादिक दुःख भोगकरकै, धूममार्गकरकै फिर फिरत है । तातें धान्यादिभावको प्राप्त होतहै, तातें कंडन करिये है, तातें पेषणकरकै ताको पाक करिये है, तातें भक्षण चर्वणादि समयके दुःख भोगकरकै रेतोभावको पावत है । पुनः पूर्व कही रीतिकरकै गर्भप्रवेशादि दुःखरूप संसारचक्रमैं भ्रमतहै । ऐसे या संसारको कबहूं अंत नहीं है, यह पुण्यात्माको भोग कह्यो । अथ जो पापी होय तो मरण प्राप्त होयकै यमलोकको जातहै।तहां तप्तमार्गगमन यमकिंकरकी ताडना,शूलमैं पोवनो,सिंह शूकर गृध्रादिकोंके मुखमैं

प्रवेश, यंत्रमैं खैंचनों, तैलमैं पाककरणों, पृथिवीमैं गाडनो, विष्ठा मूत्रके कुंडमैं पतन, वैतरणीनदीमैं पात, ऊंचे चढायकै गिरावनों, तप्त लोहखंभसों वंधनादि अनेकविध यातनाकों भोगत है, और अपणे पापनको फल भोगकरकै कूकर, सूकर श्रृगाल सर्प स्थावरादि योनिको, सदा भोगै है । यह गर्भोपनिषदमैं निपुणकरकै वर्णन कर्यो है।अथ तापरूप दुःख त्रिविध है।आध्यात्मिक, आधिदैविक, अधिभौतिक । तामैं आध्यात्मिक द्विविध है । शारीरक एक, मानस दूजो । शिरपीडा, नेत्ररोग, ज्वरादिक शारीरक हैं । काम, क्रोध,भय,द्वेष, लोभ,मोह, विषाद, शोक,असूया,अपमान, ईर्ष्यादिकतें भयो जो ताप सो मानस है।शीत, उष्ण, वात, वर्षा, जल, विद्युतादितें भयो जो ताप सो आधिदैविक है । मृग, पक्षी, मनुष्य, राक्षस,सर्पादितें भयो जो ताप सो आधिभौतिक है, इति। पुनः प्रकारांतरकरकै विराग द्विविध है । जिह्वासोद्भव, सद्योजात । त्यागकी इच्छातें संस्कार वृद्धिद्वारा भयो सो जिह्वासोद्भवसंज्ञक विराग है । सो सौभरिने कह्यो है । "मेरे पुत्र जन्मैं तो त्यागकरूंगो, पुत्र भये । पुत्र अपने पगसों चलैं तो त्याग करूंगो, पगनहूं चले, युवा होय तो त्यागकरूं, युवाहू भये,इनको विवाह देखकै त्यागकरूं,सो विवाह देख्यो,इनके पुत्र देखकै त्यागकरूंगो

तिनके पुत्रहू देखे, अब मेरो मन पौत्रनकी सन्तान देखनेकी इच्छा करत है, जो कदाचित् तिनकी सन्तान मैं देखी, फेर मन अभागो और मनोरथ उठावैगो, जो सोऊ मनोरथ सिद्ध भयो तो अन्य मनोरथको निवारण कौण करैगो, तातें अब मनकी प्रतीति भली नहीं है। जैसैं फेर निर्दोष होयके मैं काहूके दुःखकरके दुःखी न हूंगो, तैसो उपाय करणो है। सबके पालक अचिंत्य जाको रूप, अणुतें अणु, अप्रमेय, सितासितरूप, ईश्वरनको ईश्वर, श्रीविष्णुको मैं तपकरकैं आराधन करूंगो, ऐसैं शनैः शनैः विचार करकैं त्याग करत भयो" यह विष्णुपुराणमैं कह्यो है । अथ द्वितीय सद्योजायमान विराग है। तत्काल तीव्र वैराग्य जो होय सो सद्योजायमान है । सो ययातिने विष्णुपुराणमैं कह्यो है । "कामीको काम भोगकरकैं कदाचित्पूर्ण नहीं होत है, हविकी आहुतिकरके जैसैं कृष्णवर्त्मा अग्निकी शांति नहीं, किन्तु वृद्धि होत है।

---

१ पद्भ्यां गता यौवनिनश्च जाता दारैश्च संयोगगताः प्रसूताः । दृष्टाः सुतास्तत्तनयप्रसूतिं द्रष्टुं पुनर्वाञ्छति मेऽन्तरात्मा ॥ द्रक्ष्यामि तेषामपि चेत्प्रसूतिं मनोरथो मे भविता ततोऽन्यः । पूर्णोऽपि तत्राप्यपरस्य जन्म निवार्यते केन मनोरथस्येत्यारभ्य यथा हि भूयः परिहीनदोषो जनस्य दुःखैर्भविता न दुःखी । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमणोरणीयांसमतिप्रमाणम् । सितासितं चेश्वरमीश्वराणामाराधयिष्ये तपसैव विष्णुमित्यन्तेन प्रोक्तः सौभरिणा ॥ २ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः । तां तृष्णां संत्यजन् प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते ।

दुर्मति जाको त्यागसकै नहीं, जो शरीरके जीर्ण हुये जीर्ण होत नहीं, ऐसी तृष्णाकों विवेकी जो त्याग करैं तो सुखसों परिपूर्ण होत हैं । जीर्ण शरीर हो, पुरुषके केश जीर्ण होयकै नाश होत है, दन्त जीर्ण होय उखड परत हैं, परन्तु धनकी आशा और जीवनेकी आशा जराकरकैं जीर्ण हुयेहू, जीर्ण होत नहीं। मोकों विषयकी आसक्तिकरके भोग करत सहस्र वर्ष पूर्ण भये, तथापि दिन दिन तृष्णा विषयहीमैं बढती है । तातैं या तृष्णाको त्यागकरकै, ब्रह्ममैं मनकों राखकै, द्वंद्व और ममताकों छोडकै, मृगन सहित वनमैं विचरूंगो" इति । तहां शंका–वैराग्यादि साधनके सहायक और प्रतिकूलवर्जनादि साधनके अंग तो अत्यन्त दुष्कर हैं, अतः कलिदोषसों गिरते आधुनिक जीवनकों कोई साधन बननो महाकठिन है। तो तिनको कल्याण कैसैं होयगो ? इति । तहां समाधान–सत्य कह्यो, कलिमैं साधन दुष्कर हैं । तथापि यथाशक्ति श्रद्धा विश्वासादिक पूर्वक जो भगवान्के आश्रयमें होत हैं, तो श्रीपुरुषोत्तम अपने अचिंत्य अनन्त करुणादि गुणकरकैं अनन्यसाधन जे अनन्य-

---

–जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः । धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्यति ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः । तथाऽप्यनुदिनं तृष्णा ममैतेष्वनुजायते । तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् । निर्द्वन्द्वो निर्ममो भूत्वा चरिष्यामि मृगैः सह ।

भक्त हैं, दुराचार हैं, तिनहूंको अनुग्रहकरकै श्रीपुरुषोत्तम अपने दीनानुकंपी स्वभावतें अंगीकार करत हैं। याको यह भाव है कि, साधन स्वतंत्र होयकें अपने फलदानमें समर्थ नहीं है, क्योंकि, भगवदधीन सबकी स्थिति-प्रवृत्ति है,और सर्वसाधन श्रीहरिके अनुग्रहके सापेक्ष हैं। यह श्रुतिमें कह्यो है, "श्रवणकरतहू बहुत जाकों न जानत भये, यह आत्मा प्रवचनकरकै प्राप्य नहीं, बडी मेधाकरकै नहीं,बहुत श्रवणकरकै नहीं,किन्तु जाकों यह परमेश्वर अनुग्रहकरकै वरै सोई पावत है, जाकों परमेश्वर अंगीकार करै ताकों अपने तनुकी नाईं वरत है"[1] इत्यादि। यामें सब साधनकों भगवत्के अनुग्रहसापेक्ष कह्यो है। तहां भगवान्को अनन्यभक्तनको पाप निराकरण कछु भारकी तुल्य दुष्कर नहीं, क्योंकि श्रीभगवान् अनन्त अचिंत्य स्वाभाविक शक्तिमान् हैं। "याकी पराशक्ति नानाप्रकारकी सुनत है, स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया"[2] इति श्रुति है। "ब्रह्मा स्वयंभू चतुर्मुख और रुद्र त्रिनयन त्रिपुरहन्ता और इन्द्र महेन्द्र सब दवनको नायक रामके वध्यकी रक्षाकों समर्थ नहीं। हे सुग्रीव ! पृथिवीमें सर्वराक्षस, और पिशाच और

१ शृण्वन्तोऽपि बह्वो यं न विदुः। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। तस्यैप आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्॥

२ पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

दानव जो हैं, तिनकों अंगुलीके अग्र[1]करकै मारूं जो मैं इच्छा करूं तो" यह रामायणमैं अन्वयव्यतिरेकको वचन है । यहां काम क्रोधादिकहू असुरकोटि-मैं जानना । सो तिनके नाशमैं श्रीपुरुषोत्तमको कहा श्रम है, अर्थात् कछू नहीं, इति । तातैं अनन्यशरण भक्तनकों कोई वलिष्ठ पूर्वकर्मकरकै दुराचारता कदा-चित् भई तो निरतिशय करुणा क्षमा वात्सल्यादि गुणके वशीभूत श्रीगोविंद अपने गुणपोषणके अर्थ माता पिता मित्र पतिकी तुल्य सर्वअपराध सहकै सर्वसम्बन्धयोगतैं ताहि अंगीकार करत हैं "तुमहीं माता ओर पिता ओर गुरु ओर विद्या ओर धन हे देवदेव ! सव मेरे तुमहीं हो । पिता जैसैं पुत्रके ओर सखा जैसैं सखाके ओर प्रिय जैसैं प्रिया भार्याके अपराधको सहत है, तैसैं मेरे संपूर्ण अपराध तुम सहवेकों योग्य हो" इत्यादि स्मृति प्रमाण हैं । सो दुराचारको अंगीकार भी श्रीमुखसों गायोहै । "जो सुदुराचारपैं मोकों अनन्य

---

१ ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा । इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥ पृथिव्यां राक्षसान्सर्वान् पिशाचांश्च सदानवान् । अंगुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ! ॥ २ त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव वन्धुश्च सखा त्वमेव । त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव! । ३ पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव ! सोढम ।

होयकें भजत है, हे अर्जुन ! तो साधुही जानना, जातें तानैं समीचीन निश्चय कर्यो है । वो क्षिप्रधर्मात्मा होत है, शश्वत्‌शांतिकों पावैहै । हे कौंतेय ! तू प्रतिज्ञाकर कि, मेरे भक्तको नाश नहीं" इति । या श्लोकको अर्थ। अनन्यभक्तकों दुचारता सर्वथा बनै नहीं, तातें संभावनाके अर्थ जो कदाचित् शब्द हैं । कोई जन्मांतरीय प्रबल कर्मकरकै वैदिकधर्माचारविरोधी अंत्यजादि शरीरकों पायो अथवा माधिकारयोग्यकुलमें जन्म पायकै दुःसंगादि प्रबल कुकर्मकरकै ओर भगवत् तथा भागवतजननके अपचाररूप पापकर्म करकै सत्‌संप्रदायोक्त आचारक प्रतिबंधक वर्णाश्रमधर्मतें पतनकर्यो सो दुराचारशब्दको अर्थ है । दोऊ प्रकार संप्रदायप्राप्तवैदिकाचारकी अयोग्यताही दुराचारको अर्थ है ।

---

१ अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव समन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहि सः । क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति । कौन्तेय ! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति । अस्यार्थः । अपिचेदिति । अपि, अनन्यभक्तानां दुराचारत्वासम्भव एवेति सम्भावनापरोऽयम्—अपिचेच्छब्दः । चेद्यदि केन चिज्जन्मान्तरीयेण बलीयसा कर्मणा, वैदिकाचारविरोधिनाऽन्त्यजादिसमुद्भवं शरीरं प्रापितः, उत्तमाधिकारार्हकुलजन्माऽपि दुःसङ्गादिबलिष्टकर्मणा भगवदीयापचारात्मकपापेन सत्सम्प्रदायोक्ताचारप्रतिबन्धकेन वर्णाश्रमादिधर्मात्पातितो वा दुराचारशब्दवाच्यः । उभयथाऽपि सम्प्राप्तवैदिकाचारानर्ह इति यावत् । न तु उत्तमाधिकारार्होऽपि यथेष्टाचारेण वर्त्तमानोऽत्रविवक्षितः । तस्यासुरकोटिसन्निविष्टत्वात् । यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः । न स-

उत्तमाधिकारयोग्य होयके यथेष्ठाचारसों वर्त्तै सो दुराचारको अर्थ नहीं। ताकों असुरकोटिमैं सन्निविष्ट जाणिये। "जो शास्त्रविधिकों छोडकैं यथेष्टाचार करकै वर्त्तत है सो सिद्धिकों पावत नहीं, ओर सुख तथा परमगति नहीं पावै" यह श्रीमुखसों कह्यो है। तथापि अनन्यभाक् मोकों भजतहै, अन्यसाधन अन्यफल, अन्यसंबंध, त्यागकरकै। हे अर्जुन! तू मोमें मन राखकै मेरो भक्त, मेरो पूजाशील हो, मोहीको नमस्कार कर, मेरी एककी शरणको प्राप्त हो, तिनको मृत्यु संसारसागरतें मैं उद्धार करत हूं, तिनको बुद्धियोग मैं देतहूं, जाकरकैं ते मोकों प्राप्त होत हैं, तिनकी अनुकंपाके अर्थ अज्ञानते भयो जो तम ताको मैं नाश करत हूं, तिनकी बुद्धिमैं वैठकै भास्वरज्ञानदीपकरकै। जे अनन्यजन मेरो चिंतवन उपासन करत हैं,

—सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिमिति निषेधस्मरणात्। तथाऽपि अनन्यभाग् मां भजते इति। अन्यसाधनान्यप्रयोजनान्यसम्बन्धशून्यः। मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेकं शरणं व्रज। तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता। अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे। मामुपेत्य तु कौन्तेय! पुनर्जन्म न विद्यते। ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते। यो मद्भक्तः समेप्रियः। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विता इति मदक्त—

नित्य मोमैं युक्त हैं, तिनको योगक्षेम मैं प्राप्त करत हूं, तू मोहीको प्राप्त होयगो, मैं तेरे आगै सत्य प्रतिज्ञा करत हूं, जातें तू मेरो प्रिय है । हे कुंतीपुत्र ! मोकों प्राप्त होयके फेर जन्मे नहीं, जीव मेरो सनातन अंश है। मेरो भक्त याको जानके मेरे भावकों प्राप्त होत है, जो मेरो भक्त सो मोकों प्रिय है । ऐसैं जानकें विवेकी भावसमन्वित मोकों भजत है, मेरी कही रीतिसों सब साधन, सब योगक्षेमको कर्त्ता, मुक्तनको प्राप्य, सब संबंधाश्रय, मुमुक्षुध्येय मोंको निश्चय करके सब प्रकार भजत है सो साधुही माननों । एकांती भक्तही निश्चय करणों । "तिनमैं एकांती श्रेष्ठ है जो अनन्यदेवता है मैं ही तिनकी गति हूं" यह भगवान्‌को कह्यो लक्षण तामैं प्राप्त है । तामैं हेतु कहत हैं । जातें तानैं सम्यक् निश्चय

—प्रकारेण सर्वसाधनं सर्वयोगक्षेमकर्त्तारं मुक्तप्राप्यं तद्भोग्यं सर्वसम्बन्धाश्रयं मुमुक्षुध्येयं मां निश्चित्य सर्वात्मना भजते सेवते स साधुरेव मन्तव्यः । एकान्तभक्त एव व्यवसितव्यः । तेपामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवानन्यदेवताः । अहमेव गतिस्तेपामिति भगवदुक्तयैकान्तिलक्षणसम्पन्नत्वात् । तत्र हेतुमाह । सम्यग्व्यवसितो हि स इति । यतः स सम्यग्व्यवसाययुक्तः । एतदुक्तं भवति । सर्वमुमुक्षुध्येयो जगज्जन्मादिहेतुर्वेदैकप्रमाणगम्यो वेदप्रतिपाद्यो मुक्तप्राप्यो भगवाञ्छ्रीपुरुषोत्तमो रमानिवासो मदुपायोपेयसम्बन्धरूपो, नान्यः कश्चित्साध्यसाधनसम्बन्धवत्त्वेन मया समाश्रयणीयोऽस्ति । यद्यपि मम पापरूपकर्मणा वैदिकाधिकारयोग्यता नाभूत्, प्रत्युताधःपातार्हो ह्यभवं, तथापि तेन निरतिशयदयाकारुण्यतितिक्षावात्सल्यादिगुणवरुणालयेन भगवता स्वासाधारणगुणपारवश्यान्निर्हेतुककारुण्येनैव स्वानन्यभ-

करयो है। यामैं यह तात्पर्य है, कि सब मुमुक्षुध्येय जगत् जन्मादिहेतु वेदैकप्रमाणगम्य वेदप्रतिपाद्य मुक्तप्राप्य भगवान् श्रीपुरुषोत्तम रमानिवास मेरे साधन और फल सर्वसंबंधरूप हैं और कोई साधन फलसंबंधरूपसे मोकों आश्रय करणो नहीं। यद्यपि मोकों पापरूप कर्म-करकै वैदिकधर्मकी योग्यता न पावणी रही, किंतु अधः-पातको योग्य थो। तथापि निरतिशय दया कारुण्य तितिक्षा वात्सल्यादिगुणके समुद्र भगवान्नै अपणे गुण परवशताकरकै कारुण्यकरकै अपने अनन्य-भजनयोग्य मानुषजन्मको प्राप्त करायो, अपने नियम्य मेरे आत्मा और देहइंद्रियादिकरकै अपनों भजन करायकै अपनो दीनानुकंपी स्वभाव द्योतनके अर्थ मोकों अनन्यकरकै ख्यातकरावत है। तातैं ताके

—जनार्हं मानुषभावं प्रापयित्वा स्वनियम्यभूतैर्मदीयात्मशरीरेन्द्रियादिभिरात्मान भाजयित्वा स्वदीनानुकम्पितस्वभावप्रसिद्धये मां स्वानन्यभक्ततया ख्यापयति। तस्मात्तदुपकृतिं शिरसि निधाय स एवापारकारुण्यसिन्धुः सर्वात्मना मयं भजनीय इति। किञ्च सर्वेषां साधनानां देवादीनां च लोके विघ्नकर्तृतय प्रसिद्धानां मदुपेक्षितत्वात्। ते कोपिताः सन्तो यदि भगवत्प्राप्तिप्रतिबन्धकीभूतान विघ्नान् करिष्यन्ति, कामं कुर्वन्तु। सर्वाचिन्त्यशक्त्याश्रयेण विश्वात्मना सर्वान्तर्या-मिणैव सर्वविघ्ननिवृत्तिपूर्वकं स्वप्राप्तिः कारयिष्यते एव। मदीयप्रबलपापकर्मवशाद्यदि कञ्चित्कालमुपेक्षते चेत्, का क्षतिः। कालान्तरे मेरुतुल्यं मत्कर्म स्वप्राप्तिप्रति-बंधकीभूतं परमाणुवत् कृत्वाऽवश्यमनुग्रहीष्यत्येवेति व्यवसाययुक्त इत्यर्थः। अनेन विश्वासात्मकेन दृढनिश्चयेन क्षिप्रमेव धर्मात्मा भवति। महाभागवतलक्षण—

उपकारको शिरपैं राखके सोई करुणासिंधु मोकों सबप्रकार सदा भजनीय है, इति । सब साधन सब देवतादिक लोकमैं विघ्नकारी प्रसिद्ध हैं, ओर तिनकी मैंने उपेक्षा करी है । ताते कोपकरके जो भगवत् प्राप्तिमैं प्रतिबन्धक होय विघ्न करेंगे, तो यथेष्ट करो । भगवान् अचिंत्यशक्ति विश्वात्मा सबको अंतर्यामी सब विघ्ननिवृत्तिकरके अपणी प्राप्ति करावैगो । जो मेरे प्रवल पापकर्मतें किंचित्काल उपेक्षा करी तो क्या भयो ? कालांतरमैं मेरुसमान मेरे कर्मकों परमाणुतुल्य भोग करायकें अपनी प्राप्तिको प्रतिबन्धक दूर करके मोकों अङ्गीकार करैहीगो, या निश्चयकरके युक्त है, इति । या प्रकार दृढविश्वास निश्चयकरके शीघ्र धर्मात्मा होत है, अर्थात् महाभागवतलक्षणसंपन्न होत है । ताके अनन्तर मेरे भावलक्षण मोक्षकों पावत है । हे

—सम्पन्नो भवति । ततः शश्वच्छान्तिं मद्भावापत्तिलक्षणां मुक्तिं प्राप्नोति। मद्भावायोपपद्यते । मम साधर्म्यमागता इति श्रीभगवद्वचनात् । न तस्य कदापि नाशशङ्का कार्य्येत्याह । हे कौन्तेय ! त्वं प्रतिजानीहि । किं प्रतिजानीयामित्यपेक्षायामाह-न मे भक्तः प्रणश्यतीति । मम कारुण्यवात्सल्यसौहार्दक्षमादीनानुकम्पासौशील्यसर्वशरण्यत्वाद्यनन्तकल्याणगुणगणसागरस्य सत्यसंकल्पस्य निरतिशयसौन्दर्यमाधुर्य्यादिमूर्त्तेर्ज्ञानैश्वर्य्यादिषाड्गुण्यनिधेः श्रीपुरुषोत्तमस्य श्रीदामविप्रमित्रस्य गोपीजननयनोत्सवस्य पार्थसारथेर्भगवतो माधवस्य भक्तो दुराचारसम्पन्नोऽनन्यशरणः सर्वसाधनहीनोऽपि न प्रणश्यति । आत्मनोऽनन्यत्वान्न भ्रश्यते । अपि तु क्रमेण मुच्यते एवेति । तथा चोक्तं श्रीसात्वते । दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतघ्नो-

कुंतीपुत्र अर्जुन ! तू प्रतिज्ञाकर, क्या प्रतिज्ञा करूं ? या शंकामें कहत हैं। परमकरुणा वात्सल्य सौहार्द क्षमा अनुकंपा सौशील्य सर्वशरण्यादि अनन्तकल्याणगुण-सागर, सत्यसंकल्प, निरतिशय सौंदर्य माधुर्यादि मूर्त्ति, ज्ञान ऐश्वर्यादि षाड्गुण्यकी निधि, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीदामा विप्रको मित्र, गोपीजननयनको उत्सव, अर्जुनको सारथी, लक्ष्मीकांत, भगवान् श्रीकृष्ण ताको भक्त नाश नहीं होत है । दुराचारसंपन्न अनन्यशरणागत सर्वसाधन-हीनहूंको कबहू नाश नहीं, अपने अनन्यव्रतसों भ्रष्ट नहीं होत है, किंतु क्रमकरकै मुक्त होत है, इति । सो श्रीसात्त्वतमैं कह्यो है "दुराचारीहू ओर सर्वभक्षी कृतघ्न ओर नास्तिकहूं पहलें होय ओर जो श्रद्धाकरकै श्रीआदि-देव भगवान्के आश्रय होय, ता जनकों तू परमात्माके प्रभावतें निर्दोषही जान" विष्णुधर्ममैं "हे पांडुनन्दन ! पापमैं रत मेरो भक्त जो कदाचित् होय तो भी सर्व पात-कतें छूटत है, जैसें पद्मपत्र जलकरकै" इति । औरहू सुनो-

---

—नास्तिकः पुरा । समाश्रयेदादिदेवं श्रद्धया शरणं हि यः । निर्दोषं विद्धि तं जन्तुं प्रभावात्परमात्मनः । वैष्णवधर्मे च, अपि पापेष्वभिरता मद्भक्ताः पांडुनन्दन ! मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः। केशवं वैद्यमासाद्य दुर्व्याधिरिव नश्यति ॥ नारसिंहे च, भगवति हरावनन्यचेता भृशमलिनोऽपि विराजते मनुष्यः । न हि शशकलुषच्छविः कदाचित्तिमिरपराभवता-मुपैति चन्द्रः । पुण्डरीकाख्याने च । अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतैरपि । न-

"पापकर्मकी राशि सुमेरुपर्वतकी तुल्य भी है; परन्तु परमेश्वरकी शरणतें नाश होत है, जैसैं सद्वैद्यकों प्राप्त होयकै दुर्व्याधिको नाश होतहै ताकी तुल्य" इति। अथ नृसिंहपुराणमैं "श्रीभगवान् हरिमैं जिनको अनन्य चित्त है,वह विशेष पापकरकै पूर्व मलीन हूं है तोभी प्रकाशै ही है। जैसे कलंकयुक्त जो चन्द्र है ताकों अन्धकार पराभव करसकत नहीं" इति। अथ पुण्डरीकाख्यानमैं "नारायणतें पराङ्मुख जन अश्वमेध ओर वाजपेय शतनकरकें हूं सुगतिकों जात नहीं। और जे कठोर हैं ओर दुरात्मा पाप आचरणमें रत हैं तेहू श्रीनारायण-चरणाश्रय होयकै परम धामकों जात हैं" यह अन्वय-व्यतिरेक वचन प्रमाण है। "और जो अर्थ धर्म काम मोक्ष ये चारों पुरुषार्थकी साधनसामग्री भिन्न भिन्न शास्त्रमैं कही है, ता साधनसामग्री विना हू नारायणा-श्रय नर तिन सब पुरुषार्थकों पावत है" इत्यादिक और वाक्य भी यामैं अनुसन्धान करणा। अथ फल विचार। फल श्रीभगवद्भावापत्ति मोक्ष है। अब ताको लक्षण वर्णत हैं। श्रीभगवान्के नित्य अनवच्छिन्न अनु-

---

—प्राप्नुवन्ति सुगतिं नारायणपराङ्मुखाः। ये नृसंशा दुरात्मानः पापाचाररतास्तथा। तेऽपि यान्ति परं धाम नारायणपदाश्रया इत्यन्वयव्यतिरेकवचनात्। या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये। तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रय इत्यन्योऽपि वाक्यकदम्बोऽत्रानुसन्धेयः॥

भव[1]करकै स्थिति ता (मोक्ष) को लक्षण जाणिये। ध्यानादिकमें भी अनुभूति होत है, तामें अतिप्रसंग भयो, ताके वारणके अर्थ अनवच्छिन्न पद कह्यो, ध्यानमैं तावत्काल अनुभव है, अनवच्छिन्न नहीं तातें अतिव्याप्तिको वारण भयो। अथ[2]वा परपक्षसंमत जीवन्मुक्तिहूमें अनुभव होत है, यातें अतिप्रसङ्ग भयो, ताके वारणके अर्थ अनवच्छिन्नपद कह्यो, जीवन्मुक्तिमें विक्षेपपरिच्छेद वादी मानत हैं, सो यामें नहीं। तातें अतिव्याप्ति वारण भई। जो कहो क्षेत्रज्ञस्वरूपवृत्तिज्ञानानुभवहू तुम्हारे पक्षमें अनुभवकरताकी अपेक्षाकर[3]के अनवच्छिन्न है, यातें तामें अतिप्रसङ्ग भयो, इति। तहां भगवच्छब्दकरकै ताकी निवृत्ति भई, क्योंकि भगवदनुभव, स्वरूप नहीं। भगवत्स्वरूपगुणादिविषयक अनुभव क्षेत्रज्ञ अनुभवको यद्यपि सजातीय है, तथापि क्षेत्रज्ञ धर्मभूतज्ञानके आश्रय है, और संकोचविकाशके

---

१ श्रीभगवदनवच्छिन्नानुभूत्या स्थितिरिति तत्त्वं प्राप्तेर्लक्षणमित्यर्थः। अनुभूत्येत्युक्ते ध्यानादावपि तस्याः सत्त्वात्, तत्रातिप्रसङ्गवारणायाह—अनवच्छिन्नेति। तत्र तावत्कालीनानुभूतौ सत्यामप्यनवच्छिन्नत्वं नास्तीत्यर्थः। २ यद्वा परेषां सम्मतायां जीवन्मुक्तावपि तस्याः सत्त्वेनातिव्याप्तेस्तद्व्यावृत्तये आह—अनवच्छिन्नेति। जीवन्मुक्तौ विक्षेपलक्षणपरिच्छेदस्य तैरपि स्वीकृतत्वात्। ३ ननु क्षेत्रज्ञस्वरूपानुभूतेरप्यनुभवितुरपेक्षयाऽनवच्छिन्नत्वात्, तत्रातिव्याप्तिरिति चेत्तत्राह—भगवदिति। भगवदनुभूतेर्निरपेक्षानवच्छिन्नत्वान्महद्वैलक्षण्यमिति भावः॥

योग्य है, तातें बडो भेद है। यातें भगवदनुभव अनवच्छिन्न निरपेक्ष है। परपक्षमैं अनुभवरूपही मोक्षको लक्षण है। तामैं अतिव्याप्ति वारणके अर्थ स्थितिपदको संनिवेश है। अनुभवकरकै स्थिति होणो, अनुभवमात्र नहीं, यह सिद्धांत है॥[1] तहां शंका—जो अनुभूति निरपेक्ष अनवच्छिन्न होय तो सर्वत्र व्यापक भई। यातें विषयप्रवण बद्धजीवनमैं अतिप्रसंग भयो, जो कहो परिच्छिन्न, तो असंभव है? इति। तहां समाधान। क्षेत्रक्षेत्रज्ञवृत्ति अहंता ममताका नाशकरकै भगवदनुभूति सामान्यतें सबसैं है, तथापि तिनकी धर्मभूतज्ञानशक्ति ताके अनुभवको असाधारण साधन अनादिप्रकृतिसंबंधकरकै आवरण भई है, अतः जैसें जन्मांधकों सूर्योदयमैं भान होत नहीं, तैसें नहीं प्रकाशे है, तातें विरुद्ध नहीं।[2] प्रकृतिको संबंध छूटेसें मोक्ष होत है। सो प्रकृतिसंबंधको स्वरूप कहत हैं। इदंकार

---

१ परेषां मतेऽनुभूतेरेव मोक्षस्वरूपत्वाभ्युपगमात्तत्र व्यभिचारवारणाय स्थितिपदम्। अनुभूतेरनुभवितुर्वैलक्षण्यादेवम्भूतानुभूत्या स्थितो मुक्तसंज्ञक इत्यर्थः॥

२ ननु भगवदनुभूतेर्निरपेक्षानवच्छिन्नताऽभ्युपगमे विभुत्वापत्तिस्तत्त्वे च तस्या बद्धेषु विषयप्रवणेष्वपि व्याप्तत्वादतिप्रसंगो दुर्वारः। तथात्वे सर्वमोक्षापत्तेः। व्यतिरेके चासम्भव इति चेत्तत्र समाधानमाह—क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्वत्वममत्वभावनाशेन श्रीभगवदनुभूतेस्तेष्वपि सामान्यतः सत्त्वेन तेषां धर्मभूतज्ञानशक्तेस्तदनुभवासाधारणभूताया अनादिप्रकृतिसम्बन्धेनैवावृतत्वाज्जन्मान्धस्य सूर्योदितेऽपि तत्प्रकाशानुभवाऽभाववन्न प्रकाशतेऽतो न किञ्चिद्विरुद्धमिति भावः॥

अहंकारको आस्पद। इदंकारको आस्पद देहादिक, अहंकारको आस्पद आत्मा। तामैं अपनी स्वतंत्रभावना प्रकृतिसंबंधको स्वरूप है। ताके होते संसार बंधन है। ताके नाश हुए मोक्ष है। यामैं अश्वमेधपर्वमैं सूत्रकारको वचन प्रमाण है "दो अक्षर मृत्यु[1] है, तीन अक्षर ब्रह्म शाश्वत है, मम ये दोऊ अक्षर मृत्यु हैं, संसार जन्ममरणको कारण है। न मम ये तीन अक्षर ब्रह्म शाश्वत है, मुक्तिरूप हैं, ब्रह्मकी तुल्य एकरस है"। ताहीकों गीताके द्वादशाध्यायपठित वाक्यकरकै पुष्टकरत हैं। "निर्मम और निरहंकार है, सो मेरो प्रिय है, जातैं मोक्षभागी है"। बद्ध और विषयप्रवण जीवनकों भगवदनुभव न होनेमैं हेतु कहत हैं। जीवको स्वाभाविक भगवदीयतासंबंधसाक्षात्कारपूर्वक अनुभव होत है। तामैं भगवद्वाक्य प्रमाण कहत हैं। "जीवलोकमैं जीवरूप मेरो सनातन अंश है"। सनातन अंश कहनेकरकै औपाधिकभेदको श्रीभगवान्ने स्पष्ट खण्डन करयो, यह निश्चय होत है। ताहीमैं सूत्रप्रमाण कहत हैं। "यह जीव परमात्माको अंश है, जातैं याकों नाना[3] कह्यो है" इति। "यह जीव परमेश्वरको अंश है" इत्यादि श्रुतिभी

---

१ द्व्यक्षरं तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्। ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥ २ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः॥ ३ अंशो नानाव्यपदेशात्।२।३ ४२॥ ४ अंशो ह्येष परस्य॥

है। तातें बद्धजीवनको भगवत्को स्वाभाविकसंबंध आवरण भयोहै, अतः तिनको भगवत्के अनुभवको प्रकाश नहीं, यह सिद्धांत है। अंनवच्छिन्नमें दृष्टांत कहत हैं। गंगाके प्रवाहकी तुल्य इति। तामें श्रीपराशरको वचन प्रमाण कहत हैं। यद्यपि श्लोककी व्याख्या तुल्यार्थ होनेतें आचार्यके उक्तलक्षणकरकै होत भई। तथापि अक्षरार्थ कहत हैं। भगवत्प्राप्ति संसाररोगकी औषध है। प्राप्तिको विशेषण कहत हैं। निरस्त भयो है अतिशय आह्लाद जातें, ऐसे निरतिशय सुखकरकै स्थिति लक्षण है जाको, सो केवल और निरतिशय है, यह पराशरजीके वाक्यको अर्थ है। तहां शंका–भगवत्प्राप्ति मोक्षको लक्षण तुमनैं कह्यो सो बन नहीं। क्योंकि श्रुतिमें मुक्तिकी और संज्ञा कही है? इति। सो नहीं। यहां समाधान कहत हैं। ताहीको नाम सायुज्य, साम्य, ब्रह्मसाधर्म्यादिशब्दकरकै श्रुतिस्मृतिमें गायो है। ते श्रुतिस्मृति वर्णत हैं। "जब द्रष्टा परमेश्वरको साक्षात्कार अनुभव करत है, ताही समय पुण्यपापका दूरकरकै

---

१ निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा। भेषजं भगवत्प्राप्तिरेकान्ताऽत्यन्तिकी मता॥ अस्यार्थः। भगवत्प्राप्तिर्भेषजमित्यन्वयः। प्रकृतिसम्बन्धरूपरोगस्येति शेषः। कीदृशीत्यपेक्ष्याह–निरस्तेति। निरस्तोऽनितिशयाह्लादो यस्मात् तथाभूतेन सुखेन भावः स्थितिरेवैकं लक्षणं यस्याः सा। अत एवैकान्तात्यन्तिकी निरतिशया च॥

प्रकृतिसंबंधरूप अंजनरहित होयकैं परमसाम्यकों पावत है। परमेश्वरको विशेषण कहत हैं, रुक्मवत् प्रकाशरूप जाको वर्ण है, जगत्कर्त्ता पुरुष अरु वेदको वा चतुर्मुखको कारण" इति। "ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म होत है" याश्रुतिसें बृहज्ज्ञानादि धर्मयुक्त है, तातें ब्रह्म कह्यो, स्वरूपकरकै नहीं। "मेरे साधर्म्यकों प्राप्त होत भये" इत्यादि श्रीमुखसें कह्यो है। तहां वादीकी शंका-जैसें सोई देवदत्त है, दशम तूही है, इत्यादि वाक्यके श्रवणतें अज्ञानकी निवृत्ति होत है। और कारणके नाशतें कार्यको नाश प्रसिद्ध है, तसैं स्वरूपज्ञानकरकै अज्ञानकी निवृत्ति होतसन्तें बंधनकारण अज्ञानके नाशतें मोक्ष है? इति। तहां समाधान कहत हैं वाक्यज्ञानमात्रतें मोक्षकी संभावना करणी नहीं। किंतु ताके विषयसाक्षात्कारकरकै, सो ताके साक्षात्कारमें ध्यान अंतरंग है। वाक्य-

१ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥ २ ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति॥ ३ मम साधर्म्यमागताः॥ ४ कैश्चिद्"सोऽयं देवदत्तः, दशमस्त्वमसि" इत्यादिवाक्यश्रवणज्ञानादेवाज्ञाननिवृत्तिः। तथात्वे च कारणाभावे कार्याभाव इति न्यायात्स्वरूपविषयकाज्ञाननिवृत्तौ बन्धनकारणाज्ञानस्य नाशान्मोक्ष इति मन्यन्ते। तन्निराकरोति। न च वाक्यज्ञानमात्रादज्ञाननिवृत्तिलक्षणो मोक्ष इति संभावनीयः। अपि तु तद्वाच्यसाक्षात्कारेणैव। तत्र च ध्यानस्यैवान्तरङ्गत्वात्। न वयं वाक्यज्ञानस्य साधनत्वं वारयामः। तस्यापि "श्रोतव्यः" इत्यादिना श्रूयमाणत्वात्। किन्तु साक्षात्कारव्यवहिततया स्वातन्त्र्याभावादन्तरङ्गत्वं निषेध्यत इति यावत्॥

ज्ञानके निषेधमें हमारो तात्पर्य नहीं है, किंतु अंतरंगता-मात्रके निषेधमें तात्पर्य है । सो श्रुति कण्ठकरकै निर्णय करत है । यह कहत हैं । "अरे ! आत्मा श्रोतव्य है, मंतव्य[1] है, निदिध्यासितव्य है" इत्यादि । यामैं वाक्यार्थरूपज्ञान, श्रवणशब्दसे कहकैं, ताके मध्यमैं मननको पुष्टिके अर्थ कहकै, अन्तमें अन्तरंग निदिध्यासन कहकै समाप्त कह्यो । यह श्रुतिको तात्पर्य है । जो ऐसैं न मानो तो रोगीकों औषधिके श्रवणमात्रकरकै औषधके सेवन विना रोगकी निवृत्ति हुई चाहिये । ओर जन्मदरिद्र भोजनाच्छादनहीन पुरुषकों कामधेनु, कल्पतरु, चिंतामण्यादिके नामका श्रवणमात्रकरकैं दारिद्र्यकी निवृत्ति होय, और अमावास्याकी रात्रिमें अत्यन्त अन्धकारके समय वाणीकरके सूर्यशब्दके उच्चारणमात्रतें अन्धकारकी निवृत्ति होवे, और क्षुधापीडित पुरुषको चतुर्विध भोजनके वाक्यश्रवणते क्षुधाकी निवृत्ति होय, सो देखी सुनी नहीं, ओर बनै हू नहीं । तातें वाक्यश्रवणज्ञानके विषयको साक्षात्कार मोक्षको अंतरंग उपाय है, और साक्षात्कारको अंतरंग उपाय निरंतर ध्यान है, इति । तहां वादीकी शंका--जैसें रज्जुमैं सर्पको भ्रम भयो, तहां

---

१ श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥

यह सर्प नहीं,किंतु रज्जु है, भय मत करै, या आप्तपुरुषके वचनतें सर्पकी निवृत्ति और रज्जुकी प्राप्ति होत है। तैसैं दार्ष्टांत हूं मैं "तत्त्वमसि"वाक्यार्थश्रवणतें अज्ञानकी निवृत्ति और आत्माकी प्राप्तिमैं संदेह नहीं। इति। सो तुच्छ है। दृष्टांतमैं भी रज्जुके स्वरूपका साक्षात्कारद्वारकरकै भ्रांतिनिवृत्तिद्वारा भयनाश देखिये हैं, श्रवणमात्रकरकै नहीं। तैसैं दार्ष्टांतहूंमैं श्रवणके अनंतर वाक्यज्ञानके अवगत होनेते ताके साक्षात्कारको उपाय निदिध्यासन करकै तत्त्वसाक्षात्कार(भगवद्दर्शन) होयके पूर्वोक्त मोक्ष होतहै। याको यह भाव है। आप्तपुरुषको वचन श्रवणकरकै भय नाश होतहै,यामैं विवाद नहीं। तथापि रज्ज्वादिके साक्षात्कारद्वारा,स्वतंत्र नहीं। क्योंकि श्रवणके अनंतर भयकंपादि रहत हैं। सो रज्जुके साक्षात्कारतें नाश होत हैं। साक्षात्कारको कारण चक्षूरज्जु संयोग है, ता विना साक्षात्कार होतनहीं। तैसैं दार्ष्टांतमैं श्रवणतें ज्ञान भये संतें ब्रह्मसाक्षात्कारविना संसारबंधनकी निःशेषनिवृत्ति नहीं, किंतु साक्षात्कारतें बंधनिवृत्ति और ब्रह्मभावकी प्राप्तिलक्षण मोक्ष है। सो साक्षात्कारको असाधारण कारण निदिध्यासन है, ता विना साक्षात्कार बनै नहीं, इति। तामैं पूर्वपठित प्रमाण कहतहैं "ब्रह्मके साक्षात् दर्शनतें याकी हृदय-

ग्रंथि[1] खुलत है" इत्यादि। बहुत कहनेसों क्या, वाक्यज्ञानको मोक्षमैं अंतरंग उपाय अंगीकारकरणवारेनकों श्रुति परिहास करतीहुई, पूर्वोक्त सिद्धांतकों सन्मानसहित अंगीकार करती, वाक्यज्ञानको निषेध करै है, कंठसों ड्योंडी बजावतीहुई पुकारकरत है। "बहुत पुरुष श्रवणकरत[2] जाकों न जानतभये, यह आत्मा प्रवचनकरकै प्राप्य नहीं, मेधाकरकै नहीं, बहुतश्रवण करकै नहीं, जाकों परमात्मा अंगीकार करै ताकों लभ्य है। धाताके प्रसादतैं वीतशोक होयकैं नित्यसिद्ध आत्माकी महिमाकों साक्षात्करत है" इत्यादि। विस्तारतैं अलम्। तहां शंका--ध्यानकरकै मोक्ष तुमनैं कह्यो सो होय। हमारे हूं एकदेशी वाचस्पति यह मानत हैं। तथापि मोक्ष ध्यानजन्य तुम्हारे पक्षमैं सिद्ध भयो, जातैं अनित्य भयो, इस तात्पर्यसों कहतहैं,

---

१ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे। अस्यार्थः। तस्मिन् ब्रह्मणि दर्शनगोचरे सति हृदयग्रन्थिः स्थूलसूक्ष्मरूपप्रकृतिसम्बन्धो भिद्यते, ध्वंसं प्राप्नोति। तत्कार्यभूताः सर्वे संशयाः स्वपरेतरतत्त्वविषयकाश्छिद्यन्ते। अस्य ब्रह्मसाक्षात्कारवतः कर्माणि क्षीयन्ते। कर्मभिर्मुच्यत इति यावत्। तस्मिन्निति तच्छब्दार्थं विवृण्वँस्तत्स्वरूपमाह--परावरे इति। परे चिदचिद्वर्गा अवरे यस्मात्, तस्मिन्पुरुषोत्तमे इति यावत्।

२ शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।

कि ध्यान तो मानसी क्रिया है, याको जो मोक्षकों अंतरंगसाधन मानो तो मोक्षको क्रियाजन्य होनेते घटादिकी तुल्य अनित्यता भई। यामैं अनुमान है—उक्तलक्षण[1] मुक्ति अनित्य है, जातैं मानसक्रियाजन्य हैं, जो क्रियाजन्य है, सो अनित्य है, जैसैं घटादिक, इति। सो शंका नहीं ठैरे है। तामैं हेतु कहत हैं कि, ध्यानको साक्षात्कारप्रतिबन्धकरूपावरणकी निवृत्तिमात्र कार्य है, मोक्ष ताको जन्य नहीं। याहीतैं अनित्य नहीं। साधनरूपनिदिध्यासन प्रतिबंधक नाशकरकै कृतकृत्य है। कार्यांतर उत्पत्तिकी अपेक्षा नहीं राखत है, जैसैं तुम्हारे पक्षमैं ज्ञान आवरण भंगकरकै परिक्षीण है, ताकरकै मोक्ष जन्य नहीं। तैसैं हमारे सिद्धांतमैं भी यह तुल्य न्याय है, तातैं दोषके गंधको अवकाश नहीं। निमित्तविना नैमित्तिक भी नहीं, जातैं जन्य नहीं तातैं अनित्यहू नहीं। तातैं तुम्हारे अनुमानको हेतु स्वरूपासिद्ध है। तहां शंका—ध्यानको ज्ञानतुल्य कहत बनै नहीं, क्योंकि ध्यान क्रियाविशेष है, तातैं पुरुषतंत्र[2] है, अतः

---

१ उक्तलक्षणो मोक्षः, अनित्यः। मानसक्रियाजन्यत्वात्। यदेवं तदेवम्। शारीरकक्रियाजन्यघटादिवत्॥ २ न च ध्यानस्य क्रियाविशेषत्वेन पुरुषतन्त्रता कल्पनीया। तस्य स्वाभाविकाचिन्त्यानन्तशक्तिब्रह्मविषयकत्वेन वेदैकगम्यतया ज्ञानवत् प्रमाणतन्त्रत्वाज्ज्ञानाभिन्नत्वाच्च। तथा च ब्रह्मणः सार्वज्ञ्यादिमत्तया सर्ववैलक्षण्येन च वेदनस्य ध्यानज्ञानशब्दाभ्यां प्रतिपाद्यमानत्वाच्छास्त्रमुखेन। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति। पृथगात्मानं प्रेरितारञ्च मत्वा।

अत्यंत विलक्षण है,इति । सो नहीं। ध्यानमें पुरुषतंत्रता तुम्हारी कल्पनामात्र है।सो बनै नहीं। क्योंकि स्वाभाविकाचिंत्यानंतशक्ति ब्रह्म ताको विषय है यातें तुम्हारे ज्ञानकी तुल्य प्रमाणतंत्र है, और ज्ञानरूप है। ब्रह्म सार्वज्ञादिरूप सर्वतें विलक्षण है। ताको वेदन ज्ञान, ध्यान, दोनों शब्दकरके श्रुति प्रतिपादन करत है। "ज्ञान विना मुक्ति नहीं । ताहीको जानके अतिमृत्युको प्राप्त होतहै । आत्माको और नियंताको पृथक् मानकै । जा कालमैं ईशकों[1] अन्य देखै है । भोक्ता और भोग्य और प्रेरकको जानकै। ताकों साक्षात्करकै मृत्युमुखतें छूटत है। यज्ञ तपको भोक्ता सब लोकनको महेश्वर, सब भूतनको सुहृद् मोकों जानकै शांतिकों पावै है। मेरो भक्त ऐसें जानकै मेरे भावकों पावै है। यह एकही सिद्ध भयो, कि नारायण सदा ध्येय है। सोई परम धाम है, मुमुक्षुको ध्येय है, श्रुतिवाक्यप्रतिपादित सूक्ष्म विष्णुको परम पद है" इत्यादि शास्त्रका उक्तलक्षण वेदनही अर्थ है। तातें ध्यानं शास्त्रप्रमाण-

---

१ जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम् । भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते । भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति । मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते । इदं ज्ञानमुपाश्रित्य। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा । तद्ब्रह्म परमं धाम तद्ध्येयं मोक्षकांक्षिणा। श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदमिति शास्त्रस्योक्तलक्षणवेदनमेवार्थः ॥

तंत्र है, पुरुषतंत्र नहीं। यह सिद्ध भयो। जो ऐसें न मानो तो तुम्हारे संमत ज्ञानहूमैं तुल्यदोष है, क्योंकि ज्ञानहू तो मनोजन्य है, यातें कछु विशेष नहीं। यामैं ज्ञानशब्दकरकै भगवदनुग्रहीतज्ञानकों विघ्नकी बाधा नहीं, अन्यथा बाधाके योग्यकरकै अकिंचित्कारी कह्यो और बंधनकी कारणता कही। सो श्रीमुख कह्यो है, "ज्ञानविज्ञानको नाश सुखसंगकरकै और ज्ञानसंगकरकै सत्त्वगुण या जीवकों बांधत है" कहे ज्ञानको भगवदनुग्रहशून्य दिखावत विशेषण कहत हैं। तुम्हारो संमत ज्ञान सो केवल ज्ञानको भगवदनुग्रहकी अपेक्षा न होयगी सो नहीं, किन्तु साधनमात्र श्रीभगवान्के अनुग्रहकी अपेक्षा राखत हैं। याहीतें ध्यानहूं अनुग्रहकी सहायतें कार्यकारी है, अन्यथा नहीं। सो पूर्व कह्यो है। अनुग्रहसहकृत ध्यान मोक्षका साधन है, अन्यथा नहीं, इति। ज्ञानजन्य मोक्ष तुम्हारे मतहूमैं सिद्ध भयो यातें कहे दोष तुम्हारे सिद्धांतहूमैं समान हैं। अथ भगवदनुभूतिके तीन अंश हैं, सो काहू अंशकरकैहू अनुभूतिमें विकार नहीं, क्योंकि क्रियाजन्य नहीं। ताके अंश, विषय और आश्रय और स्वरूप। तामैं आश्रयांशमैं विकारकी शंका वारण करत हैं। यामैं अनुमान कहत हैं। भगव-

---

१ ज्ञानविज्ञाननाशननिति । सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघेति ॥

[1]भगवत्प्राप्ति अनित्यताकल्पनाके योग्य नहीं। क्योंकि क्रियाजन्य नहीं। जो ऐसा नहीं सो तैसा नहीं। जैसें घटादि। अथवा अन्वयमें ब्रह्मस्वरूपवत्, यह दृष्टांत जानना इति। तहां ताको आश्रय क्षेत्रज्ञ जीवात्मा है, सो उत्पाद्य नहीं। "[2]एक अज मायाकों सेवनकरत सोवैं हैं, दूसरो भगवत्प्रसादतें ता भुक्तभोगाकों त्याग करत हैं" यह श्रुति है। "[3]अज है, नित्य है, शाश्वत, एकरस, पुराण है, शरीरके हननमें ताको हनन होत नहीं" यह स्मृति है। उत्पाद्यको लक्षण, पूर्वकालीन सत्ताशून्य[4] होयकै उत्तरकालीन सत्ताकों जो भजै सो उत्पाद्य कहिये। सो लक्षण जीवात्माको नहीं। यामैं अनुमान भी प्रमाण है। जीवात्मा[5] उत्पाद्य नहीं, जातें अज है। जो ऐसो नहीं, सो तैसो नहीं, जैसैं कटादिक, इति। आप्यहू नहीं, क्योंकि स्वस्वरूप सबकों नित्यप्राप्त है। प्राप्तिक्रियाको[6] विषय आप्यको लक्षण है सो यामैं नहीं।

---

१ भगवत्प्राप्तिरनित्यत्वकल्पनाऽनर्हा शाश्वती। क्रियाजन्यत्वाभावात्। यन्नैवं, तन्नैवम्। घटादिवत्। अन्वये वा ब्रह्मस्वरूपवदिति॥ २ अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ ३ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। ४ उत्पाद्यत्वं नामभूतकालीनसत्ताशून्यत्वे सत्युत्तरकालीनसत्ताभाक्त्वम्॥ ५ क्षेत्रज्ञो नोत्पाद्यः, अजत्वात्। यन्नैवं, तन्नैवम्। कटादिवदिति॥ ६ आप्यत्वं प्राप्तिक्रियाविषयतावत्त्वम्, नैतल्लक्षणलक्षितो जीवात्मा इत्यर्थः। नाप्यो जीवात्मा, नित्यप्राप्तत्वात्। स्वस्वरूपत्वादन्यप्रमाणानपेक्षत्वाच्च। यन्नैवं तन्नैवम्। रूपादिवत्॥

जीवात्मा आप्य नहीं, नित्य प्राप्त होनेसे । अन्य प्रमाणकी अपेक्षा नहीं, जातें अपनो स्वरूप है । जो ऐसो नहीं, सो तैसो नहीं । जैसें चक्षुकरके रूपादि । इति अनुमान प्रमाण है । अब विकार्य होयगो यह शंका निवृत्ति करत हैं । परिणाम[1]ादिमानको विकार्य कहिये है, सो तैसो आत्मा नहीं । क्योंकि षड्‌विकारशून्य है । "विज्ञानी पुरुष जन्मै[2] नहीं मरै नहीं" इत्यादि श्रुति है । "याकों अविकार्य[3] कहिये है" यह श्रीमुखवचन है ॥ आत्मा विकार्य[4] नहीं । जातें षड्‌विकाररहित है, जो ऐसो नहीं, सो ऐसो नहीं, जैसें क्षीरादिक । यह अनुमान है । तहां शंका-यामैं विकारके कार्य क्रोधादिक प्रत्यक्षप्रमाणकरकें देखत हैं, तातें अविकार्य बनै नहीं? इति । सो नहीं, क्योंकि क्रोधादिविकार अन्तःकरणको कार्य है, तातें कही शंकाको अवकाश नहीं । तहां शंका--विकार्य मत हो, तथापि संस्कार्य तो अवश्य होयगो । ऐसो न मानोगे तो बंधमोक्षव्यवस्था बनैगी नहीं? इति।तहां उत्तर कहत हैं-यह आत्मा संस्कार्य नहीं । संस्कारके योग्यको संस्कार्य[5] कहत हैं । सो संस्कार दो प्रकार है । गुणधान,

१ विकार्यत्वं हि परिणामादिमत्त्वम्, न तदाश्रयोऽयं जीवः । षड्विकारहीनत्वात् ॥ २ न जायते म्रियते वा विपश्चित् ॥ ३ अविकार्योऽयमुच्यते ॥ ४ जीवात्मा न विकार्यः, विकारहीनत्वात् । यन्नैवं, तन्नैवम् । दध्यादिवत् ॥ ५ संस्कार्यत्वञ्च संस्कर्त्तुमर्हत्वम् ॥

और मलापकर्षण । तामैं गुणाधान तो बनै नहीं, क्योंकि जीव अनादि नित्यज्ञानादिगुणवान् है, यामैं अनुमान है। आत्मा गुणाधानके योग्य नहीं। जातैं अनादि नित्यगुणवान् हैं । जो ऐसो नहीं, सो ऐसो नहीं । जैसैं राजादि, इति। "याहीतैं यह ज्ञाता है" यह सूत्र है । "ज्ञाताके ज्ञानको लोप नहीं, जातैं अविनाशी है" इत्यादि श्रुति। या क्षेत्रकों जो जानै ताहि क्षेत्रज्ञ कहत हैं, ताके वेत्ता" इति स्मृतिप्रमाण है । द्वितीय मलापकर्षण संस्कार भी जीवात्माको बनै नहीं । क्योंकि नित्य विज्ञानरूप है, यातैं कबहू दोषगन्धको सम्बन्ध नहीं "यह विज्ञानघन है" इत्यादिकश्रुति प्रमाण है।यह आत्मा मलापकर्षण संस्कारके योग्य नहीं,जातैं दोषसंबन्धहीन है। जो ऐसो नहीं, सो ऐसो नहीं। जैसैं दर्पणादि। अन्वयव्याप्तिमैं ब्रह्मदृष्टांत सर्वत्र जानना । प्राकृत वस्तुको प्राकृतदोषको सम्बन्ध होत है । आत्मा तो अत्यंत विजातीय है, तातैं ताको संबंध बनै नहीं,यह भावार्थ है।तहां वादी शंका आरोपण करत है। क्षेत्रज्ञको सर्वथा जो प्राकृतदोषका संबंध

---

१ नोक्तसंस्कारवानयम्, नित्यगुणत्वात्। यन्नैवं तन्नैवम् ।राजादिवत् ॥ २ ज्ञोऽत एव । १ । ३ । १८ ॥ ३ न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् ॥ ४ एतद्यो वेत्ति तं :प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः ॥ ५ योऽयं विज्ञानघनः ॥ ६ मलापकर्षणात्मकसंस्कारवान्न जीवः, अस्पृष्टदोषगन्धत्वात् । यन्नैवं, तन्नैवम् । दर्पणादिवत् । ब्रह्मवदित्यन्वये च ॥

तुम्हारे अंगीकार नहीं, तो वंध मोक्षकी व्यवस्था भंग भई । ओर जो दोषसंवंध अंगीकार करो, तो ताको अपाकरण संस्कार अवश्य अंगीकार करणो भयो ? तव कैसें संस्कार्यत्व आत्माको नहीं ? इति । सो नहीं । ताको धर्मरूप ज्ञानही कर्मरूप अनादि अविद्याकरकै संकोच भयोहै । ताहीको वद्धावस्था कहत हैं । फेर भगवत्-प्रसादतें संकोचको कारण प्रकृतिसंवंधके ध्वंसतें अपने स्वाभाविकज्ञानके प्रकाशकरकै मोक्ष है । स्वरूपतें वंधमोक्ष नहीं । तातें दोषको अवकाश नहीं । तातें भगवत्की अनुभूति आश्रयांशकरकै भी विकारी नहीं, जातें क्रियाजन्य नहीं, यह सिद्ध भयो । मायावादी प्रकृतिको अत्यंताभाव मानत हैं, सो नहीं, किंतु ध्वंसाभाव[1] है । अथवा ईश्वरकी अपेक्षाकरकै ध्वंस होत है, लोककी दृष्टिकरकै अत्यंताभाव है, ऐसें विशेष जाणिये, जैसें देवदत्तकी वेडी कटी, या प्रतीतिमें ता(वेडी)के संवंधहीको नाश होतहै । लोहमय वेडीको नाश नहीं । क्योंकि वेडी राजाकी विभूति है, राजभंडारमें सदा रहत है । तैसें दार्ष्टांतमें प्रकृतिसंवंधको नाश होतहै, स्वरूपको नाश नहीं, क्योंकि प्रकृति भगवान्की बाहिरंग विभूति है, यह भावार्थ है । जो संकोचविकाशके

---

१ प्रकृतितत्सम्बन्धगुणादीनां ध्वंसाभावप्रतियोगितैव, नात्यन्ताभावप्रतियोगितेति-भावः। यद्वा, ईश्वरापेक्षया ध्वंसाभावो,लौकिकापेक्षयाऽत्यन्ताभाव इति विवेकः ॥

योग्यहो, तामैं दोषकल्पना करै तो कदाचित् करै, स्वरूपमैं कदाचित् दोषसंबंधका संभव नहीं । अथ विषयांशकरकै भी विकारी नहीं, जातैं क्रियाजन्य नहीं । ताकों विषय ताको परब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम है । ताकों चतुर्विधक्रियाकी अजन्यता सर्वके संमत है, तामैं विवादको अवकाश नहीं । याहीतैं स्वरूपकरकै क्रियाजन्य नहीं, तातैं विकारी और अनित्य नहीं, किंतु ब्रह्मस्वरूपकी समान स्वाभाविक है । आदिमान् वस्तु अनित्यादिदोषको सहै है । यह तो अनादि स्वाभाविक है, यातैं आदिमान् वस्तुते अत्यंत भिन्न है । यामैं अनुमान प्रमाणहै--ब्रह्मविषयिका अनुभूति शाश्वती है, जातैं स्वाभाविक है, और क्रियाजन्य नहीं, जैसैं ब्रह्म । "स्वाभाविक जाको ज्ञान स्वाभाविक बल" इत्यादि श्रुति प्रमाण है । तातैं काहू प्रकार मोक्षमैं अनित्यताकी कल्पनाको अवकाश नहीं, यह सिद्धांत है । तहां वादीकी शंका--ब्रह्मकों जो ध्येय मानो तो मोक्ष सशरीर

१ किञ्च धर्मस्य संकोचविकाशयोग्यतया आरोप्यकल्पनावकाशवत्त्वेऽपि न स्वरूपे तद्भाव इति, नान्यस्य दोषोऽन्यं दूषयितुं शक्त इति भावः ॥ २ ब्रह्मानुभूतिः शाश्वती, स्वाभाविकत्वात् । क्रियाजन्यत्वाभावाच्च । ब्रह्मवत् ॥ ३ स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ ४ ब्रह्मणः उपास्यतायां मोक्षे शरीरत्वप्रसंगः, शरीराभावे उपासनानुपपत्तेरिति भावः । तथात्वे च, "न ह वै शरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, इति । अशरीरं वा व सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ।—

भयो, क्योंकि शरीर विना उपासन बनैं नहीं, और जो शरीरसहित मानो तो मोक्षमैं सुखदुःखकी प्राप्ति भई । "शरीरके विद्यमान रहनेपर सुखदुःखकी अपहति नहीं, अशरीर होतसंतें सुखदुःखको स्पर्श नहीं। शरीरनमैं अशरीर है । अस्थिरनमैं स्थिर है । महान् विभु आत्माको जाणके धीर शोक करत नहीं । प्राण और मनसो रहित है । यह पुरुष असंग है" इत्यादि श्रुति यामैं प्रमाण हैं, तिनको वाध भयो, इत्यादि । सो तुच्छ है । तिन श्रुतिनको प्राकृत स्थूल सूक्ष्म शरीरको निषेध विषय है, प्राकृतशरीरमात्रके निषेध करकै मोक्षमैं शरीरमात्रको निषेध वनै नहीं । क्योंकि दिव्य अप्राकृतशरीर श्रुतिप्रमाणकरकै सिद्ध है । "ब्रह्म सहित भोजन क्रीडा रमण करत है" इत्यादि श्रुति यामैं प्रमाण हैं । अन्यथा ईश्वरमैं सुखदुःखादिको संबंध होयगो, यातैं अज्ञताके प्रसंगकरकै सर्वज्ञताकी हानि भई, और ईश्वरमैं अज्ञान मानो तो जीवकी

—अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः । असङ्गो ह्ययं पुरुषः" इत्यादिवाक्यानां बाधप्रसंग इति चेन्नैवम् । तेषां प्राकृतोभयविधस्थूलसूक्ष्मशरीरनिषेधपरत्वात् । नैतावता मोक्षे शरीराभावः प्रतिपादयितुं योग्यः । दिव्याप्राकृतशरीरस्य श्रुतिप्रमाणसिद्धत्वात् । "पश्यन् क्रीडन् रममाणः सह ब्रह्मणा" इत्यादिश्रुतिप्रमेयत्वात् ॥ १ शरीरमात्रस्य दुःखादिसम्बन्धनियमस्वीकारे ईश्वरे सुखादिसम्बन्धे सम्भाविते सति अज्ञत्वप्रसक्त्या सार्वज्ञ्यादिहानिः । तत्राप्यज्ञाने कल्प्यमाने जीवसाम्यापत्तेः । तथात्वे च,

तुल्यता भई ।"जो ईश्वरनको ईश्वर है, जाके समान और अधिक कोई नहीं दीखताहै, जाकी ज्ञान शक्ति बल क्रिया स्वाभाविकी है, जो सर्वज्ञ सर्ववित् है, जाको ज्ञानमय तप है" इत्यादिक परमेश्वरस्वरूप-प्रतिपादक श्रुतिसमुदायको बाध भयो। यामैं यह भाव है कि-ज्ञान अज्ञान दोऊ अविद्याकल्पित हैं यह तुम्हारो सिद्धांत है। तहां हम पूछतेहैं कि, कल्पनाको कारण अविद्या जीवनिष्ठ है? अथवा ब्रह्मनिष्ठ है? जीव-निष्ठ तो बनैं नहीं, क्योंकि तुम्हारे मतमैं जीव तो प्रतिबिंबरूप जड अविद्याको कार्य और ब्रह्माभिन्न है ब्रह्म हू बनै नहीं, क्योंकि ब्रह्मको स्वरूप प्रकाशमात्र है। यातैं प्रकाश और तमकी तरह परस्पर अत्यंत विरुद्ध है। और ब्रह्मको जो आविद्यक मानो तो जीवके तुल्य तुम्हारे सिद्धांतमें ताको अभाव होयगो। और भी पूछत हैं, अविद्या सहेतुकी? अथवा निर्हेतुकी है? सहे-तुकी तो बनै नहीं, क्योंकि ताको और हेतु, ताहूको और हेतु, तातैं अनवस्था भई। निर्हेतुकी हू बनै नहीं, क्योंकि मुक्तन्कों फेर बंधन होयगो। हमारे सिद्धांतमें तो कर्मसं-स्कारादि अनादि हैं, तोभी भगवत्कृपाकटाक्षतें पूर्वोक्त-

---

—"तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्। न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। यः सर्वज्ञः सर्ववित्। यस्य ज्ञानमयं तपः" इति ब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादकश्रुतिकदम्बबाधापत्तेश्च॥

कर्मबन्धकी निवृत्ति बनत है । अथ "न ह वै" इत्यादि श्रुतिनको अर्थ, प्रकृतिको कार्यभूत स्थूल सूक्ष्म शरीरके विद्यमान सुखदुःखको नाश नहीं । किंतु प्राकृतशरीरवर्जित मुक्तकों सुखदुःख स्पर्श करत नहीं । शरीररहित सर्वशरीरनमैं विद्यमान, यह श्रुति ब्रह्मपर है, जीवपर नहीं । सो कहत हैं--आत्मा अन्तर्यामीकों जानके धीरपुरुष शोक करत नहीं, अन्तर्यामीको विशेषण । महान् निरतिशय बडो और व्यापक क्षणभंगुर ब्रह्मादिस्थावरपर्यंत शरीरनमैं नियामक होयकै रहै है। अंतर्यामीके स्थूलशरीरको वारण करत है यह श्रुति । अथ ताको सूक्ष्मशरीरको सम्बन्ध वारण करत है, प्राणादि संबंधशून्य है, और तिनको प्रकाशक है इति । तातें ब्रह्मके वेदनहीको ध्यानज्ञानशब्दकरके श्रुति कहत है । तहां वादी अनुपपत्तिका आरोपणकरके शंका करत है-"विदिततें अन्य है, अविदिततें अन्य है, जाकरके सर्वको जानिये सो कौनकरके जानिये, ब्रह्म पूर्व नहीं, पर नहीं, अंतर नहीं, बाह्य नहीं, धर्मतें अन्य, अधर्मतें अन्य, कृततें अन्य, अकृततें अन्य, भूततें अन्य, भविष्यत्तें अन्य जो, तुम देखत हो सो कहो" इति श्रुतिसमुदायने

---

१ अन्यदेव विदितादथो अविदितादधि, येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्, तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्, अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्, अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥

वेदनक्रियाको अविषय ब्रह्मको निर्णय कीनो है, सो ध्येय कैसें बने ? अन्यथा तिन श्रुतिनको विरोधरूप बडो दोष भयो, सो वैदिकनको इष्ट नहीं, यह असंभावनाको बीज है। "आत्मा द्रष्टव्य[1] है, धीर पुरुष ताहि देखत है" इत्यादि। पूर्वकहेको अनुवादकरके कहत हैं। तुम्हारी शंका बनै नहीं, क्योंकि तिन श्रुतिनको ब्रह्मस्वरूपगुणादिकी इयत्ताके निषेधमें तात्पर्य है, सो पूर्व कह्यो है। अन्यथा[2] "परावर ब्रह्मकै देखे संते, ब्रह्मके आनंदको जाननहार। जातैं आत्माकौं जानत भयो। कौन शोक और कौन[3] मोह ताको जो एकत्व देखत है। सो वामदेव ऋषि देखत भयो" इत्यादि श्रुतिसमुदायकरके ब्रह्मकौं दर्शनको विषय कह्यो है, तिनको बाध होयगो, और अनिर्मोक्षप्रसङ्ग भयो, और शास्त्रयोनित्वप्रतिपादक अधिकरण असिद्ध भयो। अथ पूर्वोक्तश्रुतियोंके अर्थ-वह ब्रह्म विदित परिच्छिन्न ज्ञानके विषय कार्य आकाशादि, तातें अन्य है, विलक्षण है, अपरिच्छिन्न होनेसे। तहां मायावादी जीवकों स्वरूपतें विभु मानत हैं, और हमारे सिद्धांतमैं जीवको जडतें विलक्षण और ज्ञानगुणकरकै विभुत्वका अंगीकार है, यातैं

---

१ आत्मा वाऽडरे द्रष्टव्यः, परिपश्यन्ति धीराः ॥ २ तस्मिन् दृष्टे परावरे। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। यदात्मानमेवावेद॥ ३ को मोहः कः शोकः, एकत्वमनुपश्यतः। तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः ॥

तामैं अतिप्रसङ्ग भयो, सो वारण करत हैं । अथवा अविदित अतींद्रिय क्षेत्रज्ञतें अधिक है । अथवा अविदित कारण प्रधान महतत्त्वादिकतें अधिक है, इति । अथवा विदित लौकिक वद्धजीवतें भिन्न, अविदित मुक्तजीवतें अधिक है, क्योंकि दोऊको नियामक है । "प्रधान क्षेत्रज्ञको पति है, गुणनको नियंता है" इति श्रुति है । सोई कहत हैं । "जिस जनावनहार स्वतंत्रकरकै प्रेरित संते सर्व जानै है, ताके परतंत्र ज्ञाता जीव ताकों कैसें जानैं? ताके प्रसाद विना और जाननेको साधन नहीं । "भक्तिकरकै मोकों जानत है, मेरो भक्त याकों जानकै" इत्यादि भगवद्वचन है। यह ब्रह्म कैसो है ? अपूर्व अर्थात् पूर्व ज्येष्ठ जाके नहीं, जातें सबतें अधिक है । अनपर है, पर समान जाके नहीं, जातें अनुपमेय है । "ताके समान और अधिक नहीं" यह श्रुति है । "आपके सम कोऊ नहीं, तब अधिक कहांते होय" यह स्मृति है । अनन्तर है, अंतर अंतःकरण जाके नहीं । "प्राण और मन करकै शून्य है" यह श्रुति है । अवाह्य है । वाह्य जातें कछू नहीं, क्योंकि सब ताको आधेय और ब्रह्म सबको आधार है, आधेयकी आधारसे वाहर स्थिति नहीं होत

---

१ प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः ॥ २ भक्त्या मामभिजानाति । मद्भक्त एतद्विज्ञाय ॥ ३ न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ॥ ४ न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः ॥ ५ अप्राणो ह्यमनाः ॥

है ।"जामें सब प्रवेश करत हैं" यह श्रुति है । जो वस्तुको धर्मादितें विलक्षण देखत हो, सो कहो, यह अन्वय है । तामें धर्मादिपदको अर्थ ताको फल है, धर्मजन्यफल वैषयिक सुखतें विलक्षण है । और अधर्मजन्य पाप-फल दुःखतें भी ब्रह्म विलक्षणहै।कृत जो कार्य आकाशादि, अकृत कारण प्रधानादि, भूत जो अतीतकाल, भव्य जो भावी, चकारतें वर्त्तमान, द्वितीय चकारको अर्थ स्वभावादि तिन सबतें विलक्षण है । दोऊ चेतन और अचेतनको अंतर्यामी सर्वकारण एक ब्रह्मके निरंतर द्रष्टाकों शोक मोह कौण है, यह समुदायको अर्थ है । शोकादि तथा उनके कारणको स्वतंत्रता नहीं । तहां शंका "जाको मत नहीं ताको मत है, जाको विज्ञात नहीं ताको विज्ञात है, विज्ञाताको अविज्ञात है, द्रष्टाकी दृष्टिकों न देखत हूं, विज्ञाताको विज्ञात नहीं जानत हूं" इत्यादि श्रुतिकरके अज्ञातताको विस्तार है । यातें अनिर्मोक्षप्रसंग दोष नहीं, क्योंकि ब्रह्मज्ञानके अभावको ज्ञानकरके श्रुतिमें उपचार कर्यो है, तातें दोष नहीं, यह शंकाको तात्पर्य है इति । तहां समाधान

---

१ यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ॥ २ यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः । अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातमविजानताम् । न हि दृष्टेर्द्रष्टारं पश्ये। न हि विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयामित्यादिना ब्रह्मज्ञानाभाववतां ज्ञातृत्वप्रतिपादनान्नानिर्मोक्षप्रसंगो वाच्यः । तज्ज्ञानाभावस्यैव ज्ञानत्वेनोपचरितत्वात्, तेन मोक्षसम्भवादिति शंकातात्पर्यम् ॥

करतहैं । सो नहीं-ब्रह्मज्ञानको अभाव तो श्वान कीट-पर्यंत सबकों समान है, यातें सर्वको मुक्तिप्रसंग भयो, शास्त्र आचार्यको उपदेश व्यर्थ भयो । और जो कहो ब्रह्मस्वरूपादिकी इयत्ताको निषेध है, तो हमारी इष्टापत्ति है । सो हमने पूर्व प्रतिपादन करयो है, यह सिद्धांतीको भाव है।श्रुत्यर्थ[1] कहतहैं—जा पुरुषको देशादिपरिच्छेदकरके ब्रह्मस्वरूपादिक अमत हैं, ताहीको मत हैं । जाको परिच्छिन्नकरकै मत हैं, ताने जान्यो नहीं, क्योंकि वो परिच्छिन्नदर्शीहै। ताहीकों दृढ करतहैं श्रुत्यंतरकरकै।"परिच्छिन्नज्ञानवानूको अविज्ञात है, अपरिच्छिन्नज्ञाताकों विज्ञात है। " वाक्यांतरकी व्याख्या—दृष्टि नाम चक्षुजन्यवृत्ति कर्मभूतको द्रष्टा अपनी स्वाभाविक दृष्टिकरकै व्यापनहारो दृश्यमान लौकिक दृष्टिकरकै देखै नहीं । सो भगवान्ने श्रीमुखसे कह्यो है "मैं तोको दिव्य चक्षु देतहूं, मेरो योगैश्वर्य देख" इति । विज्ञाति निश्चयात्मकबुद्धिको विज्ञाता ताही बुद्धिकरकै भगवत्प्रसाद बिना

---

१ श्रुत्यर्थस्तु-यस्यामतमिति। यस्य पुंसो देशादिपरिच्छेदेनामतम् अज्ञातं, तस्य मतं ज्ञातं भवति । यस्य तु परिच्छेदेन मतं स न वेद, न जानाति।परिच्छिन्नदर्शित्वात् । तदेव द्रढयति—विजानतां परिच्छिन्नज्ञानवताम् अविज्ञातम् । परिच्छेदमविजानतां विज्ञातम् । वाक्यान्तरं व्याचष्टे—दृष्टेश्चक्षुर्जन्याया वृत्तेः कर्मभूताया द्रष्टारं स्वाभाविक्या दृष्ट्या व्याप्तारं दृश्यमानया दृष्ट्या न पश्येदित्यादिना मैत्रेयीं प्रति याज्ञवल्क्यवचनम् । तथा च भगवदुक्तेः—दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरमिति ।—

जानै नहीं, क्योंकि ताके प्रसादमात्रकरकै गम्य है।अथवा दृष्टि आदिक शब्दको अर्थ स्वाभाविक क्षेत्रज्ञकी दर्शनआदिक शक्ति है,"द्रष्टाकी दृष्टिको लोप नहीं, जातैं अविनाशी है"इत्यादिक श्रुति है! क्षेत्रज्ञकी स्वाभाविकी दृष्टिको द्रष्टा दर्शनशक्तिको द्रष्टा अंतर्यामीको ताको प्रयोज्य द्रष्टा मैं नहीं देखत हूं । भगवत्प्रसाद यावत् नहीं तावत् ताको संकोच है। ऐसैं आगै समझना। जिस प्रमाणकरकै शंका करी ताही प्रमाणकरकै अनुपपत्ति दिखावत हैं। विदिततैं अन्य या श्रुतिमें जैसैं वेदनके विषयको निषेध कह्यो, तैसैंही वाक्यशेषमैं अवेदनविषयहूको निषेध समान है । "धर्मतैं अन्य है " इत्यादिके वाक्यशेषमैं । " जो देखत हो, सो कहो" इति वेदन और दर्शन विषयहीको प्रश्नमें

—विज्ञातेर्बुद्धिवृत्तेर्निश्चयलक्षणाया विज्ञातारं तयैव वृत्त्या तत्प्रसादं विना विज्ञातारं न विजानीयाः । तत्प्रसादैकगम्यत्वात् । यद्वा दृष्टेरित्यादिना स्वाभाविकीनां क्षेत्रज्ञस्य शक्तीनामेव ग्रहणम् । नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वादित्यादिना श्रवणात् । तथा च क्षेत्रज्ञस्य स्वाभाविक्या दृष्टेर्दर्शनशक्तेरपि द्रष्टारं तस्या अप्यन्तर्यामिणं तत्प्रयोज्यद्रष्टृत्वं न पश्येः । यावद्भगवत्प्रसादं तस्याः संकोचात् । एवमग्रेऽप्यूह्यम् ॥१ किञ्च, अन्यदेव विदितादित्यत्र वेदननिषेधवत्, अथोऽविदितादधीत्यनेन वाक्यशेषेणावेदनस्यापि निषिद्धत्वात् । अन्यत्र धर्मादित्यत्रापि वाक्यशेषे, यद्वै पश्यसि तद्वदेति वेदनदर्शनादिविषयत्वेनैवोपसंहाराच्च । तस्मादुभयविधश्रुतीनां प्रामाण्यप्राबल्याविशेषात्तासां बाधनिरासार्थमुक्तैव गतिराश्रयणीया । समुद्रं पश्यामि, कियानित्येतन्न जानामि इति प्रतीतिवत्प्रकृतेऽपि उभयथा समञ्जसमेव ॥

उपसंहार कर्यो है । अन्यथा शून्यवादप्रसंग भयो । क्योंकि उभयश्रुति प्रबलप्रमाण हैं । तिनकी बाधानिरासार्थ कह्यो सिद्धांतही अंगीकार करनो । जैसें समुद्रका जल देखत हूं,कितनो है यह मैं जानत नहीं । याकी तुल्य प्रकृतहू जाणिये । अब ब्रह्मनिष्ठको प्रकृतिसंबंधनाशतैं पूर्व भी कृतार्थता वर्णन करत हैं श्रुति । जैसें लोकमैं सर्पनै छोडी कांचली बांबीमैं पडी मृतक रहत है, पूर्वके सम सर्प ताकों अपनपो करकै नहीं मानत है, ऐसैं ब्रह्मनिष्ठको शरीर पूर्वही आत्माभिमानकरकै त्याग्यो प्रकृतिवियोगपर्यंत प्रारब्धतें वर्त्तत है । त्वचा शरीरको विद्वान् और सर्पको साम्य कहकै दार्ष्टांत कहतहैं । जैसें त्यागी त्वचाको सर्प यह मैं हूं ऐसैं नहीं मानै है, तैसें विद्वान् देहमैं रहकै मैं देह हूं, ऐसैं अभिमान करत नहीं, किंतु अहंकार ममकारास्पद दोऊ परमेश्वरकी विभूतिकरकै निश्चयकरतहै,सो विद्वान् अशरीर है, शरीरसैं अभिमानशून्य है । याहीतें अमृत है, क्योंकि देहकृत प्रमादरहित है । सप्राण, प्राणसहित अप्राणतुल्य । ब्रह्मतेज है, ब्रह्मको आत्मीय अंश है । याकरकै स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीरको विवेकीके

---

१ तद्यथा निर्ल्वयनी वल्मीके मृतायास्ता शयीतैवमेवेदं शरीरं शेतेऽथायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मतेज एवेति, सचक्षुरचक्षुरिव, सकर्णोऽकर्ण इव, सवागवागिव, समना अमना इव, सप्राणोऽप्राण इवेति ।

अभिमान नहीं, यह कह्यो। अब सूक्ष्मदेहके अभिमान निषेधमैं प्रमाणांतर कहत हैं। चक्षुयुक्त है, परंतु ताको कार्य प्राकृतरूपमें आसक्तता ताके नहीं, तातैं अचक्षुकी समान है। श्रोत्रसहित है, किंतु ताको कार्य बाह्यशब्दमैं अभिनिवेशरहित है, तातैं अकर्णके समान है। वागिंद्रिय सहित है, किंतु ताको कार्थ वृथालाप परच्छिद्रकथन- शून्य है। तातें मूकसमान है। मनसहित है, किंतु ताको कार्य नानाकल्पनाहीन है, तातैं अमना है। प्राणसहित है तोभी ताको कार्य बल जनावनेकरकै शून्य है। तातैं अप्राणकी तुल्य है। चक्षुरादि इंद्रिय और तिनकी वृत्ति और तिनके विषय प्रयोजक नियंता श्रीपुरुषोत्तमके अधीन हैं। यातैं स्वतंत्र प्रवृत्तिकी सामर्थ्य काहूकें नहीं, ताके यह निश्चयज्ञान है, तातैं तामैं अभिमान करत नहीं। आपसहित सब चेतनाचेतनको हरिके अधीन जानत है। यह भाव है। या प्रकार स्थूल सूक्ष्मदेहमैं ज्ञानीको अभिमान नहीं, यह कहके अब ताकी कृतार्थता वर्णन करत है॥"आत्माको जो जानै है" यह संदेह वचन करकै विद्वान्की दुर्लभता दिखाई। भगवान्के निर्हेतुक कृपाकटाक्षकरकैं अनंतजीवनमैं जो कोई आत्माकों

---

१ आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

जानें अपने स्वरूपको निश्चय करै । कैसैं ? यह शंकामैं समाधान कहत हैं । यह मैं हूं । सर्वज्ञानंत अचिंत्यशक्ति श्रीभगवान्‌को अंशभूत, ब्रह्मात्मक, ताको नियम्य, ताको आत्मीय, चिदानंदरूप, साक्षात् मैं हूं । स्थूल सूक्ष्म देह दोऊमैं नहीं । ताको संबंधहू मोसों नहीं । यातें ताके गुणशोकादिको भागी मैं नहीं । तो कहा इच्छा करत है । ताकों स्वर्गादि फलकी इच्छा रही नहीं, ओर कौण कामके अर्थ पुत्रादि ऐहिक विषय-वासना ताके रही नहीं, तो शरीरको किमर्थ जरावै । यद्यपि शरीरसैं आपको संबंध रह्यो नहीं, ताको कस्यो संतापहू नहीं, केवल शरीरतापन निरभिमानीकी क्रिया है । जो कोई फलप्राप्ति रही होय, तो ताके उपायमैं प्रवृत्ति वनै, सो ताके है नहीं, किस अर्थ शरीर जरावणो। ताकों ऐहिक आमुष्मिक फलको प्रकृतिका कार्य करकै अनित्यता निश्चय है । "जैसैं या लोकमैं संचित कर्मफल[1] क्षीण होतहैं, तैसैं वा लोकमैं पुण्यसंचित लोक नाश होतहैं" यह श्रुति है । "क्षीणपुण्य मृत्युलोकमैं परत हैं"[2] यह स्मृति है । ओर ता फलको भोक्ता संसारी है । "सकामी गतागतको प्राप्त होत हैं"[3] यह स्मृति है । और आपको निरतिशयानंद ब्रह्मांशत्व, ताको आत्मीय,

१ यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ॥
२ क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥ ३ गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

तदात्मकत्व, निश्चय करकै समस्त पुरुषार्थकी इच्छा समाप्त भई । “ यह ब्रह्मको अंश है, जातैं नाना है ”[1] यह सूत्र है । श्रीमुखसों श्रीभगवान्‌ने कह्यो भी है “जीवलोकमैं जीव मेरो सनातन अंश है ।”[2] यामैं यह भाव है । लोकमैं वासनायुक्त अधिकारी है, जाकै फलको अर्थ है, और साधनकरनेको समर्थ है, और फल उपायको विद्वान् है । सो भगवान् जैमिनिने कह्यो है “ अर्थी और समर्थ और विद्वान् अधिकारी जाणिये” इति । ब्रह्मनिष्ठमैं अधिकारीको विशेषण बनै नहीं, यातें अधिकाराभाव है । उसको अर्थित्वभी बनै नहीं, क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ उभयलोकको तुच्छ जानत है । सामर्थ्यहू वाको नहीं, क्योंकि साध्य साधन कर्त्ता भोक्ताको भगवत्पराधीन जानत है । याहीतें विद्वान् हू कहिये नहीं, क्योंकि ताको ज्ञान भी भगवदधीन है । यद्यपि फलादिको ज्ञान वाके है, तथापि पराधीनताको निश्चय

---

१ अंशो नानाव्यपदेशात् । २ । ३ । ४२ ॥ २ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥ ३ अयं भावः । लोके तावद्वासनायुक्तस्य तत्साधनसम्पादनसमर्थस्य तदुपायफले विदुषश्च प्रवृत्तिदर्शनात् । तथा चाह भगवाञ्जैमिनिः “अर्थी समर्थो विद्वानधिकारी” । अस्य तु अधिकारिविशेषणाभावादधिकाराभावः । तथाहि । न तावत्तस्यार्थित्वसम्भवः । ऐहिकामुष्मिकयोस्तुच्छत्वनिश्चयात् । नापि सामर्थ्यवत्त्वम् । साध्यसाधनकर्तृभोक्तॄणां भगवत्पारतन्त्र्यज्ञानात् । फलविषयकविद्वत्त्वेऽपि पारतन्त्र्यनिश्चयादेव विद्वत्तारहित्यात् । प्रवृत्त्यधिकारिणः सकाशात् तस्यात्यन्तवैलक्षण्यमिति ॥

श्रीनिम्बार्कपदाम्भोजस्मरणोद्बुद्धबुद्धिना ॥
कचित्किशोरदासेन टिप्पण्यत्र निवेशिता ॥ १ ॥

ताके समान है। तातें अधिकारीको लक्षण तामैं बनै नहीं। तातें ब्रह्मनिष्ठ पुरुष अत्यंत विलक्षण है,इति। तहां शंका–कही श्रुति तो जीवन्मुक्तिविषयिका है, अन्यथा कैसे बनै इति। सो तुच्छ है। जीवन्मुक्तिको निरास हमने पूर्वमें विस्तारतें कर्यो है।तातें कह्यो सिद्धांत सोई श्रेष्ठ है।

सोरठा–ज्यों भाष्यो वेदांत, मंजूषा अरु सेतुका ॥
यथाबुद्धि सिद्धांत, सो भाषाकर मैं कह्यो॥ १ ॥
मंदनके उपकार, ज्ञानीके संतोष हित ॥
कह्यो उपनिषद सार, प्रीति अर्थ श्रीकृष्णकी॥ २ ॥

दोहा–याकर रीझौ गोपिका, मनहारी श्रीकांत ॥
कीजो मंगल जगतको, मंगल मंदिर शांत ॥ ३ ॥

कवित्त–श्रीश्रीनिवास सब वेद जाको गान करैं, जाके स्वरूपमैं न तर्कको प्रवेश है। शुद्धचित्त संतजन ध्यान कर देखैं जाहि, मुक्ति दाता श्रीमुकुंद जगतको नरेश है॥ जाके गुणरूपको न ब्रह्मादिक पावैं पार, नये नये नाम जाके रटत सदा शेष है। जगतके स्वामी और मुक्तनको गम्य हरि, ताकी शरण होहु यह वेदको निदेश है ॥ ४ ॥

हरि ॐतत्सत् इति श्रीश्रुतिसिद्धांतरत्नाकरे वृन्दावननिवासिपण्डित-श्रीकिशोरदासेन श्रुत्यादिटिप्पणीसंनिवेशनादिना परिवर्द्धिते फलनिरूपणं नाम चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः॥ ४ ॥

समाप्तश्चायं ग्रंथः।

श्रीमते भगवन्निम्बार्काय नमः ।

अथ श्रीनिम्बार्कस्तोत्रप्रारम्भः ।

श्रीमते सर्वविद्यानां प्रभवाय सुब्रह्मणे ॥ आचार्य्याय मुनींद्राय निम्बार्काय नमो नमः ॥ १ ॥ निम्बादित्याय देवाय जगज्जन्मादिकारिणे ॥ सुदर्शनावताराय नमस्ते चक्ररूपिणे ॥ २ ॥ नमः कल्याणरूपाय निर्दोषगुणशालिने ॥ प्रज्ञानघनरूपाय शुद्धसत्त्वाय ते नमः ॥ ३ ॥ सूर्यकोटिप्रकाशाय कोटींदुशीतलाय च ॥ शेषानिश्रित-तत्त्वाय तत्त्वरूपाय ते नमः ॥ ४ ॥ विदिताय विचित्राय नियमानन्दरूपिणे ॥ प्रवर्त्तकाय शास्त्राणां नमस्ते शास्त्रयोनये ॥५॥ वसतां नैमिषारण्ये मुनीनां कार्य्यकारिणे ॥ तन्मध्ये मुनिरूपेण वसते प्रभवे नमः ॥ ६ ॥ लीलां संपरस्यते नित्यं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ निम्बग्राम-निवासाय विश्वेशाय नमो नमः ॥७॥ स्थापिता द्वारवत्यां हि तप्तमुद्रा युगे युगे । निम्बार्काय नमस्तस्मै दुष्कृता-मन्तकारिणे ॥ ८ ॥ य इदं पठते स्तोत्रं निम्बादित्यस्य बुद्धिमान् ॥ तस्य क्वापि भयं नास्ति सूर्यस्य तमसेव तु॥९॥

इति श्रीऔदुम्बरऋषिप्रोक्तं श्रीभगवन्निम्बार्कस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ पञ्चधाटीस्तोत्रम् ।

पाषण्डवादपरिदाहकचण्डवह्निः श्रुत्यन्तपुष्करविकासनभानुरूपम् ॥ वादप्रगल्भगिरिखण्डनवज्रतुल्यं श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्य्यमीडे ॥१॥ संसारतापशमनाथ निजाश्रितानां रक्षाधिपं च करुणादिसुधाकरं वै ॥स्वापन्नकर्मभुजगस्य हि वैनतेयं श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्य्यमीडे ॥ २ ॥ वादः प्रगल्भमतवादिगजाधिपानां साक्षान्मृगेन्द्रसदृशं श्रुतिवादनादम् ॥ क्लेशाद्यपारजलधेर्घटयोनिमुग्रं श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्य्यमीडे ॥ ३ ॥ प्रह्लादभक्तपरितारणतत्परस्य दैत्याधिपस्य निजतर्कमहामदस्य । मायादिवादपरिदाहननारसिंहं श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्य्यमीडे ॥ ४ ॥ यो ब्रह्मेशसुरर्षिवंदितपदो वेदांतवेद्यो हरिस्तं वन्दे मनसा गिरा च शिरसा श्रीश्रीनिवासं गुरुम् ॥ कंठे यस्य चकास्ति कौस्तुभमणिर्वेदान्ततत्त्वात्मको भक्तेः श्रीर्हृदये शरण्यमगतेः कारुण्यसिन्धुं मुदा ॥ ५ ॥ यो ब्रह्मेशमहर्षिपूज्यचरणः श्रुत्यन्तगम्यो हरिर्वात्सल्यादिगुणाकरश्च जगतो जन्मादिहेतुः कविः ॥ तत्त्वातत्त्वविवेचकश्च परमो मुक्तोपसृप्यो गुरुस्तं हंसं मनसा गिरा च प्रणमे मुक्तिप्रदं माधवम् ॥ ६ ॥ शंखावतारः पुरुषोत्तमस्य यस्य ध्वनिः शास्त्रमचिंत्यशक्तिः ॥ यत्स्पर्शमात्राद्ध्रुव आप्तकामस्तं श्रीनिवासं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥

इति श्रीविश्वाचार्य्यविरचितं पञ्चधाटीस्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ द्वैताद्वैतविवरणं प्रारभ्यते ।

भोक्ता भोग्यं नियंतेति तत्त्वानां श्रुतिभिः पृथक् ॥ द्विधा ज्ञानं तु यत्तत्स्याद्द्वैतमित्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥ द्वाभ्यां चैव प्रकाराभ्यामितं तद्द्वीतमुच्यते ॥ द्वीतं तदेव द्वैतं स्याद्द्वैतं तु ततोऽन्यथा ॥ २ ॥ द्वैताद्वैतपदे ज्ञेयः समासः कर्मधारयः ॥ अत्यन्ताभेद एवास्ति भेद एवाथ केवलः ॥ ३ ॥ चिदचित्परतत्त्वानां ज्ञातव्यो हि विद्वरैः ॥ केवले भेदवादे तु व्यापकत्वं च नो भवेत् ॥ ४ ॥ सर्वं ब्रह्मेति वचसां बाधनं तु तथा भवेत् ॥ अभेदे तु स्वभावस्य सांकर्य्यं स्यात्त्रयस्य वै ॥ ५ ॥ तस्मात्तु चिदचिद्ब्रह्मतत्त्वानां श्रुतिभिः पृथक् । गुणशक्तिस्वभावैर्हि स्वरूपस्य विवेचनात् ॥ ६ ॥ भेद एव स्वरूपेण त्रयाणां प्रतिपद्यते॥अपि चिदचिद्वस्तु यत्सर्वं ब्रह्मात्मकं खलु ॥ ७ ॥ ब्रह्माभिन्नमतः प्रोक्तं श्रुतिसत्रार्थदर्शकैः ॥ तस्मात्स्वाभाविको भेदाभेद एव द्वयोस्तयोः ॥ ८ ॥ ब्रह्मणा सह मन्तव्यः श्रुतिसूत्रमतानुगैः । अभेदः केवलो भ्रांतिस्तथा भेदोऽपि केवलः ॥ ९ ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धत्वाद्विवेकिनामसंमतः ॥ इदमेव मतं श्रौतं विरुद्धं यदतोऽन्यथा ॥ १० ॥

श्रीगोपालाय नमः ।

अथ ब्रह्मचारिश्रीगिरिधारिदेवाष्टकम् ।

गोपालदेवचरणांबुजदत्तचित्तं गोपालदेवविनिवेदित-सर्ववित्तम् ॥ गोपालदेवकृपयाखिलदिक्षु वित्तं श्रीब्रह्म-चारिगिरिधारिणमाश्रयेऽहम् ॥ १ ॥ गोपालदेवदृढविश्व-सनं समस्तशस्तोद्यमं यमभिया वियुतं सुसिद्धम् ॥ राजाधिराजसुनिषेवितपादपद्मं श्रीब्रह्मचारिगिरिधारिण-माश्रयेऽहम् ॥ २ ॥ सद्भक्तचित्तमधुलिट्सुनिषेव्यमाण-पादारविंदयुगलं सुतपःप्रवृत्तम् ॥ सत्सूरिभूरिपरिपोषण दत्तचित्तं श्रीब्रह्मचारिगिरिधारिणमाश्रयेऽहम् ॥ ३ ॥ प्रत्यब्दमब्द इव वर्षति हर्षवर्षसिक्तः सुभागवतवेदिषु वित्तधाराम् ॥ यः शास्त्रसारसुविचारसुपक्वधीस्तं श्रीब्रह्म-चारिगिरिधारिणमाश्रयेऽहम् ॥ ४ ॥ सत्यप्रतिज्ञमति-यज्ञकृतं कृतज्ञं भक्तात्यभीष्टवरदं सुतरां शरण्यम् ॥ शास्त्रोक्तधर्मशुभकर्मकृतप्रमाणं श्रीब्रह्मचारिगिरिधारिण-माश्रयेऽहम् ॥ ५ ॥ पात्रानुमानकृतदानममानमानं रंकावनीश्वरवितीर्णसमानमानम् ॥ नानाविधात्यपरिपक्व-सदन्नदानं श्रीब्रह्मचारिगिरिधारिणमाश्रयेऽहम् ॥ ६ ॥ निंबार्कमार्गकमलैकविकाशभानुं संसारवारिधिबुडज्जन-

तावलम्बम् ॥ कालत्रयज्ञमतिविज्ञनिषेव्यमाणं श्री-ब्रह्मचारिगिरिधारिणमाश्रयेऽहम् ॥ ७ ॥ आजन्मसन्म-तिमतिप्रबलप्रतापं संसारतापरहितं सहितं सुखेन ॥ आनन्दवार्द्धिसुनिमग्नमतिप्रसन्नं श्रीब्रह्मचारिगिरिधारिण-माश्रयेऽहम् ॥ ८ ॥ श्लोकाष्टकं सकलकष्टविनष्टिहेतुं यो ना पठेत्प्रतिदिनं दृढभक्तियुक्तः ॥ संध्यात्रयं परपदं स समाप्नुयाद्वै भुक्त्वाऽतिभोगानिचयं नरदेहलभ्यम् ॥९॥

आनंदतुंदिलं नंदनंदनैकातिवंदनम् ॥ चंदनं चारु-चित्तानां वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ १ ॥ आमौञ्जीबंधनं ब्रह्मचारिणं धर्मकारिणम् ॥ वारिणं सर्वदुःखानां वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ २ ॥ गोपालबालविश्वासं श्रीगोपा-लसमर्चकम् ॥ गोपालध्याननिरतं वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ ३ ॥ गोपाललब्धसर्वस्वं गोपालाखिलवित्तदम् ॥ गो-पालदत्तसच्चित्तं वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ ४ ॥ श्रीभागवत-सप्ताहपाठप्रियमतिश्रियम् ॥ दयालुं हृदयालुं च वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ ५ ॥ गोब्राह्मणैकसत्पोषं नीरोषं सर्वदेहिषु ॥ पंडिताऽऽमंडितं सुज्ञं वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ ६ ॥ राजाधिराजमूर्द्धस्थमुकुटप्रकटश्रियम् ॥ निकट-स्थितगोपालं वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ ७ ॥ नित्यनैमि-त्तिकातिथ्यकारिणं शुभदेहिनम् ॥ सत्तपोनिष्ठमुत्कृष्टं

वंदे श्रीगिरिधारिणम् ॥ ८ ॥ अनुष्टुबष्टकमिदं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥ दृढभक्तिपरः सोऽतिशीघ्रं स्वाभीष्टमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

इतिब्रह्मचारिश्रीगिरिधारिशरणदेवाचार्याष्टकद्वयम् ॥



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, ७ खेतवाडी—बंबई.